Impact Factor : 7.834

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा पटियाला, श्रीगंगानगर व नेपाल से प्रसारित
साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

ISSN : 2321-8037
Nov.-December 2025
Volume 13, Issue 11-12

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Editor :
Dr. Rekha Soni

Chief-Editor :
Dr. Naresh Sihag Adv.

संस्थापक सम्पादिका :
स्मृति शेष
डॉ. विश्वकीर्ति

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

www.ginajournal.com

संस्थापक संरक्षक :
स्मृति शेष
श्री हरविन्द्र कमल चौधरी

वर्ष : 13 | अंक : 11–12 | नवम्बर–दिसम्बर : 2025 | आईएसएसएन : 2321–8037

सम्पादक :
डॉ. रेखा सोनी
शिक्षा विभाग, टांटिया वि.वि.,
श्रीगंगानगर–335001 (राज.)

प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सचिव, गीना देवी शोध संस्थान,
भिवानी (हरियाणा)

मार्गदर्शन :
डॉ. राजेन्द्र गोदारा
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. लक्ष्मी जोशी
त्रिभुवन वि.वि. काठमाण्डू।

डॉ. सृष्टि चौधरी
लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स
एंड कम्युनिकेशन,
सरकारी पॉलिटेक्निक कॉलेज फॉर
गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।

श्री श्रेष्ठ चौधरी,
सीनियर मैनेजर,
स्टेट बैंक ऑफ इंडिया,
साहिबजादा अजित सिंह नगर,
मोहाली, पंजाब।

कानूनी सलाहकार :
डॉ. रामफल दलाल एडवोकेट,
श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट

सलाहाकार समिति (Advisory Committee)

डॉ. सुलक्षणा अहलावत
अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
नूंह (हरियाणा)

डॉ. अरूणा अंचल
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. सुशीला
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी।

डॉ. अल्पना शर्मा
आईएएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर

डॉ. विजय महादेव गाडे
बाबा साहेब चितले महाविद्यालय
भिलवडी (महाराष्ट्र)

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कॉलेज
धारवाड़ (कर्नाटक)

डॉ. रीना कुमारी
दशमेश गर्ल्स कॉलेज,
अल्ला बक्श, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

श्री हेमराज न्यौपाने
नेपाल।

डॉ. ममता तनेजा
अबोहर, पंजाब।

डॉ. प्रियंका खंडेलवाल
बराण, राजस्थान।

डॉ. संदीप
ओम विश्वविद्यालय, हिसार।

प्रो. मधुबाला
राजकीय महिला महाविद्यालय, हिसार।

डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी
जगद्गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग
विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तरप्रदेश

डॉ. हवासिंह ढाका
राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत प्रवक्ता, शिक्षा विभाग हरियाणा

डॉ. राजेश शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मोहिनी दहिया
माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय,
सूरतगढ़ (राजस्थान)

डॉ. मुद्दस्सिर अहमद भट्ट
हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, कश्मीर

डॉ. सीहेच वी. महालक्ष्मी
सीहेच एसडीएसटी थेरेसा महिला
महाविद्यालय, एलुरू, आंध्र प्रदेश

डॉ. मोरवे रोशन के.
यूनाईटिड किंगडम।

डॉ. अनुपमा, पूर्व प्रोफेसर,
अंकारा विश्वविधालय, अंकारा, टर्की

डॉ. आर.के विश्वास
अध्यक्ष होम्योपैथिक, टांटिया, वि.वि.

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक **डॉ. नरेश सिहाग,** एडवोकेट ने **मनभावन प्रिन्टर्ज,** पुराना बस स्टैण्ड रोड़, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा) से जारी किया।

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

(Journal of Literature, Arts, Science, Commerece, Culture, Humanities and Social Sciences)

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्त्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा।
सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

Impact Factor : 7.834
ISSN : 2321-8037
Gina Shodh SANGAM
Peer Reviewed & Refereed Research Journal
International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)
Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

तालिका– 2

शैक्षणिक / शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसेः प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान / अभियांत्रिकी / कृषि / चिकित्सा / पशु–चिकित्सा विज्ञान संकाय	भाषा / मानविकी / कला / सामाजिक विज्ञान / पुस्तकालय / शिक्षा / शारीरिक शिक्षा / वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विधाएं
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान– अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. रेखा सोनी	07–07
2.	ज्ञान प्रकाश विवेक के उपन्यास डरी हुई लड़की में बदलते जीवन मूल्य	डॉ. मंजु पुरी	08–14
3.	AN ANALYSIS OF FACTORS RELATED TO MENSTRUAL HEALTH AND HYGIENE	Upma Sharma, Dr.Vishwas Deepak Bhatnagar	15-28
4.	राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान के सम्बन्ध में स्नातक स्तर एवं स्नातकोत्तर स्तर के छात्र-छात्राओं की बुद्धिमता का अध्ययन	काशीराम, डॉ. अनिल कुमार	29–35
5.	यौगिक ग्रंथों में वर्णित आहार का समीक्षात्मक अध्ययन (हठयोगप्रदीपिका, घेरण्ड संहिता एवं श्रीमद्भगवद्गीता के परिप्रेक्ष्य में)	डॉ. अर्पिता नेगी, गगन सिंह	36–52
6.	उदय प्रकाश की कहानियों में समकालीन समाज का यथार्थ चित्रण	स्मृति, डॉ० सुशील कुमार राय	53–56
7.	बनबसा क्षेत्र में होमस्टे पर्यटन : एक बेहतर सामाजिक-आर्थिक विकल्प (एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)	डॉ० रेनू बाला	57–63
8.	भारतीय दर्शन के आलोक में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की औपन्यासिक रचनाशीलता	डॉ. नवीना जे. नरितूक्किल	64–69
9.	प्रेमचंद की कहानियों में ग्रामीण किसान की स्थिति	सहला सरवर	70–73
10.	हिंदी आत्मकथा साहित्य में अस्मितामूलक विमर्श	डॉ. रंजना आप्पासाहेब कमलाकर	74–79
11.	प्रेमचंद के कथा साहित्य की प्रासंगिकता	डॉ. रंजना आप्पासाहेब कमलाकर	80–83
12.	वर्तमान युगीन 'स्त्रीवादी' सिद्धांत	डॉ. रंजना आप्पासाहेब कमलाकर	84–88
13.	आदिवासी जीवन का कथात्मक पुनर्पाठ : हिंदी उपन्यासों की दृष्टि से	डॉ. एकता	89–92
14.	छायावादोत्तर और प्रगतिवादी काव्य का सामाजिक तत्व	रघुनन्दन महापात्र	93–97
15.	THE STUDY OF RELEVANCE TO THE MODERN BUSINESS GENERATION	Pravin Ramesh Save	98-102
16.	THE IMPACT OF SOCIAL CLASS ON FAMILY LIFE	Alka Pradhan	103-108
17.	'अकाल में उत्सव' उपन्यास में कृषक जीवन का त्रासदीय यथार्थ	पूजा रानी	109–113
18.	'चारू चन्द्रलेख' में चित्रित सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश	मोनिका	114–118

19.	कवर्धा रियासत और आदिवासी समाज की भूमिका (विशेषकर बैगा- गोड़ समुदाय)	देवलाल उइके, डॉ. शशिकला सिन्हा	119–124
20.	**The Role of Bacterial Indole-3-Acetic Acid (IAA) in Modulating Root Branching : Molecular Mechanisms and Ecological Implications**	**Mrinalini, Dr. Payal Juneja**	**125-128**
21.	जशपुर जिले के कृषि विकास में पशुधन की स्थिति एवं महत्व का अध्ययन	डॉ. निरंजन कुजूर	129–134
22.	भौतिकवादी युग में श्रीमद्भगवद्गीता की प्रासंगिकता	डॉ. मुन्ना लाल चौधरी श्रीराम झारिया	135–140
23.	21वीं सदी के उपन्यास साहित्य में आदिवासी जीवन : हरिराम मीणा के विशेष संदर्भ में'	प्रीति राजू राठेड़	141–147
24.	**Design the Learning Experiences with the help of Technology**	**Dr. Anjali Sheokand, Dr. Dipti**	**148-154**
25.	**COOPERATIVE FEDERALISM AND PARADIPLOMACY : ENABLING INDIAN STATES FOR GLOBAL LEADERSHIP BY 2047**	**Shahzeen Shoaib Afsar, Dr. Pratibha Sharma**	**155-164**
26.	यामिनी कथा – रिश्तों में बिखरती नारी अस्मिता	डॉ. नीहारिका उमाकांत देशमुख	165–168
27.	**Industrial Revolution and Treatment of Children in selected novels of Charles Dicken's**	**Pankaj kumar, Kumar Pankaj**	**169-173**
28.	हिन्दी ग्रामीण कहानी प्रेरणा और प्रारंभ	डॉ जे. सेन्दामरै	174–176
29.	हरिराम मीणा का व्यक्तित्व व कृतित्व	प्रीति राजू राठेड़	177–184
30.	విశ్వనాధ కధా సాహిత్య వైభవం	డాక్టర్. అనిత మార్గరెట్ నేలటూరి	185–188
31.	मैला आंचल में राजनीतिक चेतना : नेतृत्व, भ्रष्टाचार और स्वतंत्रता-उत्तर भारत की राजनीति का विश्लेषण	डॉ० सीमा दुबे	189–192
32.	प्राथमिक स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का अध्ययन	डॉ. नवीनता रानी	193–201

सम्पादक की कलम से.....

वर्ष 2025 अपने अंतिम पड़ाव की ओर अग्रसर है। यह समय केवल कैलेंडर के पन्ने पलटने का नहीं, बल्कि बीते महीनों की बौद्धिक यात्रा का आत्ममंथन करने और आने वाले समय के लिए नई दृष्टि विकसित करने का भी अवसर है। आज जब समाज, संस्कृति और साहित्य एक साथ अनेक मोर्चों पर बदलाव देख रहे हैं, तब शोध–जगत के लिए यह और भी आवश्यक हो जाता है कि वह अपने कार्य की दिशा और गंतव्य दोनों पर पुनर्विचार करे।

'गीना शोध संगम' का यह नवंबर–दिसंबर 2025 अंक उसी चिंतन की परिणति है। इस अंक में सम्मिलित सभी आलेख, शोध–पत्र, समीक्षा और चिंतनपरक लेख हमारे समकालीन समाज के उन पहलुओं को स्पर्श करते हैं जो आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता हैं। सत्य की खोज, मूल्यबोध की पुर्नस्थापना और मानवीय संवेदना का पुनर्पाठ। हम ऐसे युग में प्रवेश कर चुके हैं जहाँ ज्ञान केवल पुस्तकों और ग्रंथों तक सीमित नहीं रहा। डिजिटल तकनीक ने सूचना को तत्काल उपलब्ध करा दिया है, लेकिन इस सहजता के साथ एक नई चुनौती भी उपस्थित हुई है– "मौलिकता और मानवीयता की रक्षा।" आज शोधार्थी के सामने सबसे बड़ी कसौटी यही है कि वह अपने अनुसंधान को तथ्यों के साथ–साथ मानवीय गहराई और संवेदना से भी जोड़े।

'गीना शोध संगम' का यह अंक इस दिशा में एक विनम्र प्रयास है। यहाँ प्रस्तुत लेख समाज, साहित्य और शिक्षा की विभिन्न धाराओं को एक संगम पर लाकर खड़ा करते हैंकृजहाँ परंपरा और आधुनिकता, भावना और तर्क, विचार और क्रियान्वयन एक साथ उपस्थित हैं। स्त्री विमर्श, पर्यावरणीय चेतना, नैतिक मूल्यों का पुनर्पाठ, ग्रामीण संस्कृति का पुर्नस्मरण, भाषा और तकनीक के नए रूपकृये सब विषय इस अंक में अपने विविध आयामों के साथ विद्यमान हैं।

आज का शोध केवल अतीत को देखने का माध्यम नहीं, बल्कि भविष्य के निर्माण का औजार बन चुका है। शोधार्थियों और विद्वानों का यह उत्तरदायित्व है कि वे अपने लेखन के माध्यम से समाज की दिशा को सकारात्मकता दें। इस अंक में सम्मिलित अनेक लेख न केवल इस उत्तरदायित्व को समझते हैं, बल्कि उसे निभाने का सार्थक उदाहरण भी प्रस्तुत करते हैं। हिन्दी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में देखें तो आज यह भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि चिंतन का भी आधार बन चुकी है। हिन्दी में हो रहा समकालीन शोध भारतीय समाज के भीतर पल रहे द्वंद्वों, आकांक्षाओं और संभावनाओं का गहन अध्ययन प्रस्तुत करता है। हमारे लेखक आज सिर्फ साहित्यकार नहीं, बल्कि यथार्थ के साक्षी हैं – वे बदलते समय को शब्दों में नहीं, संवेदनाओं में दर्ज कर रहे हैं। इस अंक में शामिल शोध लेख यह प्रमाणित करते हैं कि नई पीढ़ी के लेखक और शोधार्थी विषयों की गहराई को समझने और उन्हें सामाजिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करने की क्षमता रखते हैं। यही वह शक्ति है जो किसी भी समाज को जीवंत बनाती है।

वर्तमान युग "कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI)" और "डिजिटल शोध" का है। अब हर शोधार्थी के पास सूचना का अथाह भंडार उपलब्ध है, लेकिन प्रश्न यह है कि क्या यह सुविधा हमें और संवेदनशील बना रही है या केवल तथ्यों के उपभोक्ता में बदल रही है? हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि शोध का मूल उद्देश्य आंकड़ों का संकलन नहीं, बल्कि "सत्य की खोज" है। इस संदर्भ में 'गीना शोध संगम' निरंतर यह प्रयास कर रहा है कि प्रत्येक अंक में प्रकाशित सामग्री न केवल नवीनतम जानकारी दे, बल्कि विचारों की प्रामाणिकता और भावों की गहराई को भी स्पर्श करे। इस अंक में विविध विमर्श और सामाजिक चेतना पर लिखे लेख विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये न केवल समकालीन समाज की बदलती संवेदनाओं का दर्पण हैं, बल्कि यह भी बताते हैं कि शोध अब केवल अकादमिक अभ्यास नहीं रहा, बल्कि सामाजिक दायित्व का भी हिस्सा बन चुका है। इसी तरह भाषा और मीडिया पर लिखे आलेख यह दर्शाते हैं कि संप्रेषण के नए माध्यम किस प्रकार सामाजिक सरोकारों को प्रभावित कर रहे हैं।

'गीना शोध संगम' की यही विशेषता है कि यह केवल विषयवस्तु का संग्रह नहीं करता, बल्कि विचारों के प्रवाह को दिशा देता है। इस अंक के प्रत्येक लेख के पीछे शोधकर्ता की मेहनत, दृष्टि और समाज के प्रति उत्तरदायित्व झलकता है। यही भाव इस पत्रिका को अन्य शोध पत्रिकाओं से विशिष्ट बनाता है।

–सम्पादक

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 8–14

ज्ञान प्रकाश विवेक के उपन्यास डरी हुई लड़की में बदलते जीवन मूल्य

डॉ. मंजु पुरी
सह–आचार्य हिंदी विभाग
इंदिरा गाँधी विश्वविद्यालय मीरपुर, रेवाड़ी।

सारांश :-

मानव जीवन में मूल्यों का अतुलनीय योगदान है। मानव के अस्तित्व के बिना मूल्यों की और मूल्यों के बिना मानव की कल्पना करना असंभव है। मूल्य मानव जीवन के आदर्श से जुड़े, वे मानदंड हैं जो मनुष्य के अनुभवों, विचारों तथा चिंतन को संयमित करते हैं। मूल्य जीवन का दृष्टिकोण हैं और मानवीय जीवन इन्हीं मूल्यों के ताने–बाने से बनता है। मानव प्रतिदिन नए–नए मूल्यों की स्थापना करता है, नए मूल्यों का अर्जन करता है और प्राचीन को सहेजता है। मूल्यों के आधार पर ही वह सही और गलत का निर्धारण करता है। समय परिवर्तन के साथ भूमंडलीकरण के इस दौर तक आते–आते हम मूल्यों में हो रहे बदलाव को देखते हैं। समय के बदलाव का प्रभाव साहित्य और समाज पर भी पड़ता है। रचनाकार उस प्रभाव को देखता, जीता व अपनी रचना में अभिव्यक्त करता है। वैश्वीकरण और बाजारवादी संस्कृति में हम अपनी संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं। मानवीय संवेदनाएं लुप्त हो रही हैं। तकनीकी व अन्य संचार माध्यमों के प्रसारण से हमारे सोचने समझने के तरीके में भी बदलाव आ रहा है जिससे नैतिक मूल्यों में गिरावट आ रही है। इस शोध पत्र के माध्यम से मैंने 'डरी हुई लड़की' उपन्यास के माध्यम से मूल्यों का विघटन व सामूहिक बलात्कार की शिकार नंदिनी के चरित्र को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है।

बीज शब्द – संस्कृति, वैश्विकरण, बाजारवादी, मूल्य, न्यायशीलता, मानवीय मूल्य।

डरी हुई लड़की उपन्यास में बदलते जीवन मूल्य व नारी शोषण, अत्याचार व बलात्कार जैसे ज्वलंत मुद्दे को आधार बनाया गया है। सामूहिक बलात्कार की शिकार नंदिनी किस प्रकार महानगरीय जीवन में प्रवेश करती है और वहाँ की संस्कारहीन संस्कृति में शोषण का शिकार हो जाती है। विवेक जी ने इस उपन्यास के माध्यम से नंदिनी के मन में चलने वाली उधेड़बुन, क्षोभ, भय, चिंता, अवसाद आदि अंतर द्वन्दवों को सफल अभिव्यक्ति दी है।

सामूहिक बलात्कार से पीड़ित लड़की को किन मानसिक पीडा, सदमों व कटाक्षों से गुजरना पड़ता है, उपन्यासकार ने इस पक्ष का बखूबी निर्वहन किया है। वहीं वे राजन जैसे पुरुषों के माध्यम से यह भी दिखाना

चाहते हैं कि जहां पुरुष समाज के कारण नंदिनी को बलात्कार का शिकार होना पड़ा था, वही राजन की ही विवेकशील व सकारात्मक सोच के कारण दुष्कर्म से पीड़ित लड़की अपने अंदर की घुटन व तनाव से बाहर निकलने में सफल हो जाती है। उसमें पुनः जीवन जीने की जिजीविषा, आत्मविश्वास जाग उठता है। नंदिनी और राजन के माध्यम से उन्होंने एक ऐसे लोक का निर्माण किया है, जिसमें खामोशी है, सहानुभूति है –व्यक्ति ना होते हुए भी एक प्रेम विद्यमान है। बलात्कार जैसी घटना से जूझ रही नायिका के जीवन जीने की जिजीविषा और नायक की सकारात्मक सोच ही 'डरी हुई लड़की' उपन्यास को विशिष्ट बनाती है। महानगर की आदर्श विहीन संस्कृति में व्यक्ति का जीवन असंतोष, संघर्ष, प्रतिस्पर्धा से भर गया है। भोगवादी एवं धनी बनने की लालसा में व्यक्ति अपने परिवार, रिश्तेदारों से पृथक होकर अपने में ही केंद्रित हो गया है जिस कारण मनुष्य में व्यक्ति विघटन के चिह्न झलकने लगते हैं। कथाकार महीप जी के अनुसार– 'हमारे समय का मनुष्य एक जागरूक, संवेदनशील और बेहतरीन इंसान है। भूमंडलीकरण के कारण इंसान का दायरा सीमित नहीं रह गया है। उसका सम्बन्ध द्वेष और सीमाओं को लाँघकर बहुआयामी हो गया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि आज मनुष्य भौतिक समृद्धि की ओर तेजी से बढ़ रहा है। इसलिए वह कभी–कभी जीवन के उच्चतर मूल्यों की परवाह नहीं करता।'[1]

महानगरीय जीवन ऊपर से जितना सहज,1 सरल और सुखी दिखता है उतना ही कष्टप्रद है स इन विषम परिस्थितियों से अनजान लोग महानगरों की तरफ पलायन कर रहे हैं जो उनके लिए घातक सिद्ध होती है। झाड़ियों में गिरी हुई अनजान लड़की को देखकर राजन असमंजस में होता है कि वह क्या करें, क्या ना करें। क्योंकि उसकी अस्त–व्यस्त हालत से यह अनुमान लगाया जा सकता था कि उसके साथ बहुत बुरा हुआ है। उसके आसपास से वाहन फुर करके निकल रहे थे, क्योंकि मेट्रोमैन किसी के लिए नहीं रुकते, मेट्रोमैन इतने धैर्यवान होते हैं कि वह रेड लाइट पर रुकते हुए तनाव में आ जाते हैं। जिस भारतीय संस्कृति में नारी को पूजनीय बताया जाता है, नारी को देवी के समान पूजा जाता है। उसी नारी की देह को तार–तार करते हुए, अपने आप को आधुनिकता का वाहक मानने वाले समाज की सच्चाई को निम्नलिखित पंक्ति में दर्शाया गया है।

'एक सफेद कागज का टुकड़ा नजर आया, मैंने रुक कर उसे उठाया, शायद उस लड़की का हो कोई एड्रेस या फोन नंबर लिखा हो स फोल्ड किए गए उस टुकड़े को मैंने खोलकर पड़ा मैं स्तब्ध रह गया हूं, चेतना शून्य। अगले पल आक्रोश से भरा। कागज के टुकड़े पर सिर्फ दो ही शब्द लिखे–वी एंजोयेड 'दो शब्द किसी स्लोगन की तरह है। सभ्य समाज के मुंह पर थूकते। किसी कलंक की तरह स किसी अन्य के दुःख को पिकनिक में बदलते शब्द। शब्दों के पीछे दुर्भावना सहिंसा में मनोरंजन स दुष्कर्म में सुख।'[2]

बलात्कार की शिकार नंदिनी को जब राजन इलाज के लिए नर्सिंग होम ले जाता है, ताकि समय रहते उसका उचित इलाज करवाया जा सके। लेकिन नर्सिंग होम का प्रबंधक उसे इलाज करने से पहले पुलिस रिपोर्ट दर्ज करवाने और मीडिया को बुलाने की बात कहता है। क्योंकि वह इसी बहाने हॉस्पिटल की प्रसिद्धी चाहता है।

वह राजन को कहता है– 'हम मीडिया को बुलाएंगे। डोंट वरी। लड़की का फेस, फेड ऑफ कर देंगे स वह अपनी आवाज में आपबीती सुनाएगी।

मीडिया..... आपबीती?

'यस सर ! मीडिया'

'आप ऐसे कह रहे हैं जैसे लड़की स्वर्ण पदक जीत कर आई हो और उसे मीडिया के सामने बड़े गर्व के साथ अपना बयान देना हो।'[3]

यह पंक्तियां स्पष्ट करती हैं कि आज मनुष्य में नैतिक मूल्य एवं आदर्शों का पतन हो चुका है जहाँ मनुष्य की नैतिकता उसके व्यवहार का प्रतिबिम्ब होती है। वहीं इन पंक्तियों में उपन्यासकार स्पष्ट करना चाहता है कि किस प्रकार वर्तमान समय में मूल्यों का क्षरण हो रहा है। 'नैतिकता का संबंध मुख्य रूप से मानव के आचरण से है। नैतिकता समाज का मूलभूत आधार है।'[4] आज व्यक्ति इतना आत्मकेंद्रित और स्वार्थी बन गया है कि दूसरों के दुख दर्द से उसे कोई मतलब नहीं रह गया है। महानगरीय जीवन में व्यक्ति के बदलते जीवन मूल्य के संदर्भ में वी. एन. सिंह जन्मेजय जी कहते हैं –महानगर को संस्कृति का पुंज कहाँ जाता है। अनेक संस्कृतियाँ यहाँ आकर परस्पर घुल मिल जाती है। एक नई प्रगतिशील संस्कृति को गढ़ती है। इस नगरीय हाई ब्रीड संस्कृति से विभिन्न, जातियों, धर्मों व सम्प्रदायों के व्यक्तियों में अपनी अपनी संस्कृति व मूल्यों की रक्षा को ले चिंता ही नहीं उसमें जुड़े परम्परागत मूल्यों के विलुप्त होने का भय उन्हें आघात पहुँचाता है। अपनी इसी हाई ब्रीड संकीर्णतादी सोच के कारण नर्सिंग होम का प्रबंधक दर्द में जूझ रही मासूम सी नंदिनी के दुख को भी नहीं समझ पाता।

आज पुलिस स्टेशन, न्याय व्यवस्था और शांति का नहीं बल्कि भय का नाम बन चुका है। पुलिस द्वारा किए जाने वाले अपराध और अत्याचार से आम जनता का उस पर से विश्वास उठ गया है। इसी कारण नंदिनी अपने साथ हुए दुष्कर्म को पुलिस स्टेशन में रिपोर्ट दर्ज करवाने से डरती है क्योंकि वह जानती है कि पुलिस बेकसूर होते हुए भी तरह–तरह के सवाल पूछेगी, अनेक प्रकार के लांछन लगाएगी, हो सकता है कि उसे ही चरित्रहीन साबित कर दें और रिपोर्ट ही दर्ज ना कराएं जिससे उसकी स्त्री गरिमा को और अधिक ठेस पहुंचेगी। इसे मूल्यों का बिखराव नहीं कहेंगे तो क्या कहाँ जा सकता है जब आम आदमी की सुरक्षा के लिए बनाई गयी संस्थाए ही उसे सुरक्षा का अहसास ना करवा पाएं।

राजन नंदिनी की मनोव्यथा के बारे में सोच रहा है –

'पुलिस स्टेशन का नाम सुनकर वह डर गई है जैसे उसे एक जंगल से उठाकर दूसरे जंगल में रख आने की तैयारी हो मेरी। मैं घबरा रहा हूं। हमारे देश की आजादी का यह कैसा चेहरा है कि हम उन से डरने लगे हैं जिनके जिम्मे हमारी सुरक्षा सौंपी गयी।'[5]

आधुनिक पीढ़ी समस्त पुराने मूल्यों को त्यागकर नए मूल्यों को अपना रही है। शिक्षा का विस्तार एवं पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण हमारे समाज में नवीन मूल्यों का जन्म हो रहा है। मानव आज स्वार्थ में इतना लिप्त हो चुका है कि वह अपनी श्रेष्ठता बरकरार रखना चाहता है। दूसरों के दुख दर्द से उसका कोई नाता नहीं रह गया है। परिणाम स्वरूप परिवार बिखर रहे हैं और रिश्तो में कड़वाहट आ रही है। 'आज का युग परिवर्तन का युग है। समाज में नए आदर्श और मूल्यों की स्थापना हो रही है। इनके फलस्वरूप पारिवारिक संरचना और आदर्शो में परिवर्तन आ रहे हैं।'[6] टूटते बिखरते जीवन मूल्यों को 'डरी हुई लड़की' में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात मासूम सी लड़की नंदनी को किस प्रकार से अपनी मौसी के घर में यातना और अत्याचारों को सहन करना पड़ता है। वह कुछ शर्तों पर ही उसे घर में रखने के लिए

तैयार होती है जैसा की निम्नलिखित पंक्तियों में दर्शाया गया है :–

'उनकी पहली शर्त यह थी कि महेश नगर वाला मकान उनके नाम होगा। दूसरी शर्त यह थी कि बब्याल में आठ 10 बीघा जमीन भी उनकी हो जाएगी। तीसरी शर्त यह थी की वह घर के सब काम करेगी। उनकी शर्त यह भी थी कि घर के किसी सदस्य के आगे मैं मुँह नहीं खोलूंगी। यानी उस घर में मेरा दर्जा किसी देवदासी जैसा नहीं तो दासी जैसा जरूर था।'[7]

मासी जो माँ का ही प्रतिरूप है लेकिन लालच, स्वार्थ के कारण वो अपनी ही भतीजी के भविष्य के लिए चिंतित ना होकर, अपनी बहन और जीजा जी की मौत के पश्चात् उसकी जमीन व घर को हड़पने में व्यस्त है। जहाँ भारतीय संस्कृति हमें दूसरे के दुःख में दुखी होना सिखाती है, वहीं मूल्यों को दरकिनार कर उपन्यास में स्वार्थों वह अपनी श्रेष्ठता बरकरार रखना चाहता है। दूसरों के दुख दर्द से उसका कोई नाता नहीं रह गया है। परिणाम स्वरूप परिवार बिखर रहे हैं और रिश्तो में कड़वाहट आ रही है। 'आज का युग परिवर्तन का युग है। समाज में नए आदर्श और मूल्यों की स्थापना हो रही है। इनके फलस्वरूप पारिवारिक संरचना और आदर्शो में परिवर्तन आ रहे हैं।'[6] टूटते बिखरते जीवन मूल्यों को 'डरी हुई लड़की' में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात मासूम सी लड़की नंदनी को किस प्रकार से अपनी मौसी के घर में यातना और अत्याचारों को सहन करना पड़ता है। वह कुछ शर्तों पर ही उसे घर में रखने के लिए तैयार होती है जैसा की निम्नलिखित पंक्तियों में दर्शाया गया है :–

'उनकी पहली शर्त यह थी कि महेश नगर वाला मकान उनके नाम होगा। दूसरी शर्त यह थी कि बब्याल में आठ 10 बीघा जमीन भी उनकी हो जाएगी। तीसरी शर्त यह थी की वह घर के सब काम करेगी। उनकी शर्त यह भी थी कि घर के किसी सदस्य के आगे मैं मुँह नहीं खोलूंगी। यानी उस घर में मेरा दर्जा किसी देवदासी जैसा नहीं तो दासी जैसा जरूर था।'[7]

मासी जो माँ का ही प्रतिरूप है लेकिन लालच, स्वार्थ के कारण वो अपनी ही भतीजी के भविष्य के लिए चिंतित ना होकर, अपनी बहन और जीजा जी की मौत के पश्चात् उसकी जमीन व घर को हड़पने में व्यस्त है। जहाँ भारतीय संस्कृति हमें दूसरे के दुःख में दुखी होना सिखाती है, वहीं मूल्यों को दरकिनार कर उपन्यास में स्वार्थों का हावी होना ज्यादा दिखाई देता है।

न्यायशीलता मानवीय समाज का वह मूल्य है जिसमें व्यक्ति सत्योनमुखी होकर समाज के अनौचित्यपूर्ण आचरण, पक्षपात अन्याय पूर्ण व्यवहार को स्वीकार नहीं करता। जो मूल्य मनुष्य के जीवन के नीतियुक्त तथा न्याय अनुसारी पक्ष से जुड़े होते हैं वह नैतिक तथा न्यायिक मूल्य कहलाते हैं।

मानव जीवन में न्याय जैसे मूल्य का होना परम आवश्यक है इसके बिना मूल्यों का विकास नहीं हो सकता इससे समानता की भावना का विकास होता है। आज के युग में न्याय को सबसे ऊपर रखा गया है और प्रत्येक मनुष्य को यह हक है कि वह अपने ऊपर हो रहे अन्याय के विरुद्ध आवाज उठा सकता है लेकिन वर्तमान समय में देश की न्याय व्यवस्था कितनी असंवेदनशील और अंधी है। बलात्कार जैसे जघन्य कृत्य के लिए भी स्त्री को कटघरे में इंसाफ के लिए खड़ा होना पड़ता है और उसकी अस्मिता छीन कर निरीह बनाने की कोशिश और दुराचारी को बिना किसी दंड दिए ही छोड़ दिया जाता है। हमारे देश में स्त्रियां हर जगह, हर समय और असुरक्षा के घेरे में घिरी हुई हैं। प्रतिदिन दुष्कर्म की खबरें समाचार पत्र में आती रहती है लेकिन फिर भी पीड़िता

को इंसाफ के लिए तड़पना पड़ता है। ऐसी खोखली न्याय व्यवस्था के बारे में नंदिनी राजन से कहती है 'मैंने एक मैगजीन में ही पढ़ा था कि उन्नीसवीं मिनट में एक रेप होता है यह भी एक क्रूर मजाक की तरह ही है जो एनसीआर रिपोर्ट के अनुसार 2001 से 2016 तक एक लाख चालीस हजार तक ऐसे मामलों में एक लाख अभियुक्तों को सबूतों के अभाव में निर्दोष करार कर दिया। बेचारी स्त्री! दुष्कर्म के दौरान सबूत भी अपने साथ रखें जैसे दुष्कर्म कोई सर्कस हो और कई सारे दशक वहां..... घटनास्थल पर मौजूद हों।'[8] आज हमारी न्याय व्यवस्था, राजनीतिज्ञ के हाथों की कठपुतली बन चुकी है। न्यायाधीश न्याय को अपनी मुट्ठी में लिए घूमते हैं जिसके परिणाम स्वरूप एक दुष्कर्म पीड़िता को न्याय नहीं मिल पाता और अपराधी पूरी आजादी के साथ घूमता रहता है। लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ, जिसे आम आदमी की आवाज माना जाता है। जब वह अपनी स्वतंत्रता की सीमा लाँघ दें और उच्च श्रृंखला बन जाए। अधिक से अधिक पैसा कमाने और नंबर वन बनने की होड़ में मीडिया अपने मूल्यों को पीछे छोड़ता जा रहा है। समाचार पत्र रोजाना दुष्कर्म की खबरों से भरे पड़े होते हैं। टीवी इससे भी चार कदम आगे जा रहा है। हर किसी का ध्येय होता है ऊंची टीआरपी यानी कि अधिक से अधिक धन कमाना तथा आम जनता को बेवकूफ बनाना। वर्तमान में मीडिया सही दिशानिर्देशों के अभाव में अपने कर्तव्य बोध से भटक रहा है। आज मीडिया की विश्वसनीयता पर एक प्रश्न चिन्ह लग गया है। मीडिया की निसंगता मुझे अचानक याद आ गई है। पटियाला की राजीव पराठा यूनियन का प्रधान–गोपाल किशन। जिसने सिस्टम के विरोध में आत्मदाह कर लिया। चैनलों की कैमरा टीमें उसे जलता हुआ देखती रही। 'लाइव दृश्य' कैमरे में कैद होते रहे। वह जलता रहा। कैमरे चलते रहे। ऐतिहासिक क्षण। मीडिया कर्मी उसे बचाते नहीं, जलता हुआ कवर करते हैं।'[9] अतः कहा जा सकता है कि मीडिया जिसे समाज की आवाज का प्रतिनिधि कहां जाता है। वही मीडिया आज कितना असंवेदनशील और क्रूर बन गया है। जिसे जनमानस की दुख तकलीफ से कोई मतलब नहीं रह गया। जलते हुए इंसान को जलता हुआ देखते रहिए ताकि उन्हें सनसनी खबर मिल जाए! भारतीय संस्कृति में जहां कृष्ण सुदामा की मित्रता का उदाहरण देकर प्रत्येक समाज में मूल्यों की नींव मजबूत की जाती है ताकि आने वाली पीढ़ी इन मूल्यों का महत्व जानकर अपनी सभ्यता व संस्कृति पर गर्व करें, लेकिन नंदिनी के मित्र दीपक के कहकर भी न आने और उस अनजान शहर में अपने साथ हुए हादसों के बारे में व मित्रता के बदल रहें स्वरूप को सोचती है।

'मैं दीपक का इंतजार करने लगी आधा घंटा..... एक घंटा..... डेढ़ घंटा..... दो–तीन घंटे। मैं भूखी प्यासी, घबराई हुई। अनजान शहर। अजनबी लड़की। हर क्षण बाद कमजोर पड़ती उम्मीद। हर क्षण बाद ढलता हुआ दिन! उस दिन मैंने जाना कि हमारे समय की मित्रता कितनी कामचलाऊ, खोखली, निकृष्ट और स्वार्थ से भरी होती हैं। मित्रता के पीछे लाभ–हानि का गणित होता है। न शारदा को कोई लाभ होना था मुझसे और ना दीपक को। कोई भी नहीं आया था। उन्होंने यह भी नहीं सोचा कि मेरा क्या होगा?'[10]

प्राचीन समय में जिन मूल्यों को सर्वोपरि माना जाता था जो मनुष्य को उसकी पहचान दिलाने में सहायक थे उन्हीं मानवीय मूल्यों के प्रति आज मनुष्य का मोह कम होता जा रहा है। नए और पुराने मूल्यों के बीच के संघर्ष ने मानव की मर्यादा की सीमा को लाँघ दिया है। हमारा सभ्य समाज सिर्फ इतना ही सभ्य है कि जब मूल्यों को बनाए रखने की बात उस पर आती है तब वह उनसे दूर भागना चाहता है जब राजन को लगता है कि नंदिनी की तबीयत अधिक खराब हो रही है तो वह घबराकर डॉक्टर सरिता नागपाल जो कि उसकी दोस्त की

मां है उसको फोन करता है। ऐसी स्थिति में जब एक डॉक्टर का यह दायित्व होता है कि वह यह जाने बिना की उसका मरीज कौन है..... निःस्वार्थ भाव से अपने मरीज की रक्षा करें। लेकिन यहाँ भी हमें मूल्यों का बिखराव निम्नलिखित पंक्तियों में दिखाई देता है – 'यू, नो राजन, दिल्ली इज 'रेप कैपिटल'। रोजाना 10 रेप होते हैं। किस–किस विक्टिम को तू अपने घर पनाह देगा? समाज सुधारक मत बन। इतना समझदार यंगमैन है तू और ऐसी फुलिशनेस।'[11]

सेवा, त्याग, ममता और अपनापन जैसे भाव जो किसी भी असहाय को उसकी विकट परिस्थिति में सहारा देने के लिए काफी होते हैं उनका बिखराव हमें यहां दिखाई देता है।

यदि अर्थ के आधार पर देखें तो नंदिनी किस प्रकार से अपने आप को असहाय महसूस करती है। जब राजन नंदिनी को कॉर्पोरेट दुनिया के बारे में बताता है, तब वह बहुत हैरान होती है कि किस प्रकार से धन प्राप्ति के कारण इंसान प्रतिस्पर्धा के इस युग में एक दूसरे से आगे निकलना चाहता है।

'यह जो कॉर्पोरेट दुनिया है, बहुत भव्य है। लेकिन वह पतली गली की तरह है। गली इतनी पतली है कि उसमें से सिर्फ एक बंदा नहीं निकल सकता है। लेकिन निकलना होता है कईयों को। सब आगे बढ़ना चाहते हैं। निकलने का रास्ता एक का है यहीं से बिल्कुल यही से जाने–अनजाने चेंज शुरू होती है। प्रतिस्पर्धा के पूरे खेल भी यहीं से शुरू होते हैं। लोग एक साथ निकलते हैं एक दूसरे से आगे बढ़ने की कोशिश में। एक दूसरे का कंधा चीरते हुए। अफसोस इस बात का है नंदिनी, इस गेम को सब इंजॉय करते हैं।'[12]

वर्तमान समय में मूल्य इतनी तेजी से बदल रहे हैं कि धन की लालसा के लिए, आगे बढ़ने की प्रतिस्पर्धा के कारण इंसान अपने मानवीय मूल्यों का हनन कर रहा है। जहाँ हमारे देश के युवा से यह आशा की जाती है कि वह देश निर्माण में अपना योगदान दें क्योंकि वह देश का भविष्य है, देश का कर्णधार है। लेकिन जब यही कर्णधार, देश का भविष्य, देश की ही इज्जत के साथ खिलवाड़ करना शुरू कर दें तो उस देश की स्थिति, देश की संस्कृति की मजबूती का अंदाजा निम्नलिखित पंक्तियों से लगाया जा सकता है जिसमें मानव मूल्यों को तार–तार कर दिया गया है।

'वह मनुष्य नहीं थे। हिंसक पशु थे। जंगली जानवर को शराब पीते रहे। मुझे खदेड़ खदेड़ते रहे। गंदी गालियां अश्लील हसी, रक्त.... थूक.... वीर्य..... तेजाब..... चाकू रिवाल्वर और मैं। पिछली सीट पर निर्वस्त्र! उन्होंने सारी रात मुझे होगा और फिर व्यर्थ समझ कर लगभग लाश बनाकर झाड़ियों में फेंक गये।'[13]

पूंजीवाद के प्रभाव से मनुष्य संबंधों का आधार परस्पर प्रेम एवं सहयोग समाप्त हो गया है। 'ईश्वर के स्थान पर मशीनें आ गई और प्रेम के स्थान पर धन। इससे परस्पर सहयोग और सहानुभूति तो समाप्त हुई ही, मनुष्य की पाश्विकता प्रबल हो गई।'[14]

उपन्यास में यह प्रश्न भी उठता है कि आखिर नंदिनी अपने शहर को छोड़कर इस महानगर में क्यों प्रवेश करती हैं? यदि वह इस महानगर में नहीं आती, अपने घर को नहीं छोड़ती तो उसे इस सामूहिक बलात्कार का शिकार ना होना पड़ता। लेकिन यदि हम नंदिनी की दृष्टिकोण से देखें तो वह असहाय लड़की, जिसके माता–पिता की मृत्यु हो गई है और जिसे उसकी मासी इसलिए घर में रखती है ताकि वह उसकी जमीन को हड़प सके। उसके बच्चे उसे ऑर्फन कहकर चिढ़ाते हैं और वह कहते हैं कि वह शुभ दिन कब आएगा जब तुम इस घर को छोड़कर चली जाओगी यदि इस प्रकार का व्यवहार किसी भी बच्चे के साथ किया जाए तो वह

उपेक्षित होकर घर से भागने के लिए मजबूर हो ही जाएगा और फिर उसके साथ बुरा यह होता है कि उसके दोस्त भी समय पर उसके काम नहीं आते जैसे शारदा और दीपक उसको बुलाकर भी उसका साथ नहीं देते और वह गलती से उन लोगों की गाड़ी में बैठ जाती है जो कि उसके उसके लिए राक्षस साबित होते हैं। यहां पर हमें मूल्यों की गिरावट स्थान–स्थान पर दिखाई देती है। आज व्यक्ति की सोच और विचारों में बहुत परिवर्तन आ चुका है। मनुष्य मनुष्य का दर्द समझने में असमर्थ हो गया है। समय के साथ–साथ आज मनुष्य की सोच बदल चुकी है इसका स्थान संकीर्ण मानसिकता ने ले लिया है। व्यक्ति आज अपने तक सिमटकर रह गया है जिससे मानवीय मूल्यों का नाश हो रहा है। स्पष्ट है कि ज्ञानप्रकाश विवेक ने इस उपन्यास के माध्यम से वर्तमान समाज की ज्वलंत समस्या को उठाने के साथ–साथ मानवीय मूल्यों के ह्रास को अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अहा! जिंदगी, जनवरी 2011, पृष्ठ 16
2. ज्ञानप्रकाश विवेक, डरी हुई लड़की, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2016, पृष्ठ 23
3. वही, पृष्ठ 30
4. हरीश कुमार सेठी, जीवन मूल्य–विमर्श, संजय प्रकाशन नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ 44
5. ज्ञानप्रकाश विवेक, डरी हुई लड़की, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2016, पृष्ठ 24
6. प्रकाश नारायण एवं ज्योति गौतम, लिंग एवं समाज, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर 2005, पृष्ठ 1
7. ज्ञानप्रकाश विवेक, डरी हुई लड़की, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2016, पृष्ठ 164
8. ज्ञानप्रकाश विवेक, डरी हुई लड़की, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2016, पृष्ठ 169
9. वही, पृष्ठ 165
10. वही, पृष्ठ 165
11. वही, पृष्ठ 167
12. वही, पृष्ठ 83
13. वही, पृष्ठ 174
14. वही, पृष्ठ 167

hindimonika07@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 15–28

AN ANALYSIS OF FACTORS RELATED TO MENSTRUAL HEALTH AND HYGIENE

Upma Sharma
Research Scholar, Department of Law
Sangam University, Bhilwara, Rajasthan, India
Dr. Vishwas Deepak Bhatnagar
Emeritus professor in law
School Of Legal Studies - Bhilwara, Sangam University Bhilwara, Rajasthan, India.

Abstract :

Numerous cultural, religious, and social taboos around menstruation and menstrual customs persist, making it difficult to manage cleanliness during menstruation. Girls confront numerous challenges in their personal lives, academic pursuits, and professional careers due to the fact that they are often unprepared for and unaware of their periods. This is particularly true in rural areas of the nation. Some crucial enabling factors in menstrual hygiene management. A number of factors, including availability of water, privacy concerns, social and cultural norms, and economic considerations, influence product usage. Achieving gender parity and empowering women are cornerstones of the SDGs. Managing one's menstrual cycle is an ongoing and unique concern for women, who make up half of the global population. When it comes to controlling their period bleeding, girls and women employ a variety of solutions that cater to their specific needs and budgets. They are (a) disposable—one-time use items such as disposable pads, tampons, and (b) reusable products—reusable products such as cloth, washable and reusable cloth pads, menstrual cups, and period panties.

Few research have examined the effects of menstruation products on women's health and the environment, as shown in the literature search. After a quick literature search, we know what influences women to choose certain menstruation products, how such products make them feel, and what effects they have on people's health and the environment. The study highlights the importance of studying women's preferred menstrual products using appropriate variables. It also suggests further investigation into menstrual hygiene management, infrastructure for teenage girls, affordable sanitary products,

gender equity, and raising awareness about sustainable and reusable products.

Key words : Menstruation, Menstruation health, Menstruation hygine management.

1. Background :

Physiological menstruation occurs in young women and those who are not yet in menopause. The shedding of the uterine lining, which occurs regularly from the onset of adolescence until menopause, causes blood to flow regularly from the uterus into the vagina. Hormones trigger the menstrual cycle, which typically lasts between 21 and 35 days [1]. The two main parts of a woman's menstrual cycle are the secretory (or luteal) and proliferative (or follicular) phases. Menstrual cycles are defined as the time it takes for a woman's periods to progress from the beginning of one cycle to the beginning of the next [2].

A woman's menstrual cycle is the single most important factor influencing her reproductive health. Menarche is a major life event for teenage females and a noticeable marker of puberty. One of the most common reasons teenagers seek medical attention is for menstrual problems, which are common and commonplace. Therefore, cultural and societal factors may contribute to girls' limited knowledge of reproductive health, which includes menstruation. Teenage females in India often lack knowledge about sexuality, fertility, and menstruation. Many cultural misunderstandings and prohibitions stem from the fact that menstruation is still seen as taboo.

Poor personal hygiene and hazardous sanitary conditions increase the risk of reproductive tract infections (RTIs) and gynaecological disorders during menstruation [3]. In the years after menarche, it is normal for cycles to be irregular and long. Most often seen menstruation problems are polymenorrhagia, oligomenorrhea, and dysmenorrhea. Period irregularities are more prevalent in the early years of menstruation but decrease in frequency during the first three to five years after menarche. Period hygiene practices are especially important for women since they may make them more vulnerable to RTIs. A major contributor to the high incidence of RTIs in the nation is the widespread lack of proper menstrual hygiene, which in turn contributes to the high rate of female morbidity [4]. Due to ignorance, menstruation and associated concepts, such as myths and taboos, go unnoticed. Lack of access to menstrual hygiene services causes many girls in India, aged 10 to 18, to drop out of school [5].

Many factors contribute to this situation, including low socioeconomic level, limited resources, and the stigmatization of menstruation women. There has been a significant denial of education for many females due to the shame associated with menstrual issues. Some of the many negative outcomes include an increase in discrimination, misconceptions about menstruation, and illiteracy. The majority of menstrual health problems and lack of access to care affect women living

in rural and impoverished areas of the country. There must be an effort to educate the public about menstruation [5].

2. Literature Review :

The Period Hygiene Knowledge and Practices of Adolescent Girls in Urban Slums of Dibrugarh Town were examined in a cross-sectional research by Pranjal Sonowal and Kaushik Talukdar (2019). Prior to reaching puberty, half of the females had no idea what menstruation was. A lot of young women didn't know what menstruation was or where it came from. The study's takeaway was the critical need of raising awareness about the necessity of menstruation health education. The development of a system to ensure that teenage girls have access to menstrual hygiene products and services is of the utmost importance. Researchers Dr. Deshpande TN et al. (2018) looked at menstrual hygiene practices among urban slum schoolgirls. According to them, there were a number of limitations. They found that teenage females' menstrual hygiene practices were lacking. Consequently, it is important to teach females about menstruation and how to properly care for themselves during this time. Some young women in urban India still see menstruation as a divine punishment, according to research by Reena v. Wagh et al. (2018) on menstrual hygiene behaviors among this demographic. Some females, according to the study, just toss their used sanitary pads on the side of the road.

Almost all females (almost 96%) do not attend religious services. Most of the females also stay away from the kitchen and family gatherings, and half of them won't even touch certain household items. The study's author came to the conclusion that menstrual hygiene education should focus on dispelling myths and educating young girls about the dangers of STIs. Good menstrual hygiene increases women's health, confidence, and self-esteem and is connected to gender equality and fundamental human rights, according to a research by Rabindra nath Sinha and Bobby Paul (2018) on menstrual hygiene management in India. The current state of menstrual hygiene in India has to be changed immediately and severely by all parties involved if this is to be a priority on the developmental agenda for women and girls. To gauge the level of success in MHM in India, new indicators are required to be developed in accordance with the Swachh Bharat Mission Guidelines. In addition, it would be a great step toward ensuring that women and girls had access to reproductive health care and basic hygiene products if attainable, time-bound goals were established to demonstrate the effective execution of current policies and programs. A descriptive research was carried out by Anjali Mahajan and Kanika Kaushal (2017) to evaluate the menstrual hygiene knowledge and practice of teenage girls attending a government school in Simala, Himachal Pradesh. The study's author postulated that teenage females lacked knowledge on menstrual hygiene. So, it's best to study menstruation and menstrual hygiene in their own right. Various reproductive tract diseases may be avoided if teenage females are educated

early on the need of menstrual cleanliness. In order to gauge teenage girls' familiarity with menstrual hygiene practices, Sasmita Ghimire (2017) used a descriptive cross-sectional design and a quantitative methodology. Formal and informal communication channels should make an effort to disseminate information on menstrual hygiene, since her research found that teenage females had average understanding of the topic. In order to improve the health of the community's beneficiaries, health institutions and organizations should work to increase health and nutrition care services. Among teenage girls in low- and middle-income countries, Chandra Mouli and Patel S.V.(2017) mapped their knowledge and comprehension of menarche, menstrual hygiene, and menstrual health. According to their findings, many girls in nations with low or medium economic levels are unaware of menstruation and unprepared for it. Preparation and knowledge gaps impact teenage females' educational opportunities, self-esteem, and personal growth. Teenage girls in rural Pondicherry were the subjects of a study by Hema Priya et al. (2017) that looked at their period hygiene practices and other personal hygiene habits. Researchers in Pondicherry's rural field practice region performed a descriptive cross-sectional research based on data collected from local residents. Further emphasis on menstrual hygiene education among teenage girls is required since, despite a high rate of sanitary pad usage, unsanitary habits were noted. The factors that influence menstrual hygiene practices among rural West Bengali schoolgirls were investigated by Ishita Sarkar (2017). According to her findings, teenage girls whose moms have completed some kind of formal education tend to practice proper menstrual hygiene. She concluded by saying that teenage girls' menstrual hygiene habits are bad and that raising the educational level of mothers is the key to improving these behaviors. Public boarding secondary school girls' period hygiene practices were studied by Alfred Francis Murye and Sambulo Revelation Mamba (2017). It is concluded that boarding secondary school girls do not adequately manage their menstrual hygiene. The current method of handling these wastes puts both the girls and the people handling them at risk of blood-borne diseases. Additionally, the air is polluted due to open burning, and surface water sources are threatened because the blood is wet, which could lead to incomplete burning. The government should make menstrual hygiene a part of water, sanitation, and hygiene (WASH) programs in schools and ban the practice of open burning of menstrual waste in favor of sanitary landfills or incineration. Research on menstrual hygiene behaviors among Jabalpur District's urban teenage females was conducted by Shubhangi Nayak et al. (2016). A whopping 70.2% of the females surveyed admitted to wearing and reusing clothes without cleaning them beforehand.

The research also revealed that some teenage females lacked proper knowledge on menstrual hygiene practices, according to their conclusions. According to their findings, a large number of females have symptoms of premenstrual syndrome, including nausea, backache, breast tenderness,

and extreme fatigue just before their period begins. A cross-sectional research was conducted by Dudeja p et al. (2016) to determine the level of menstrual awareness among teenage girls residing in an urban slum in western Maharashtra. During menstruation, 90% of females have physical and health issues. A large portion of the participants also face limitations due to their faith, which are followed by limitations related to their physical and social lives. The restrooms and hand-washing stations at the schools did not meet the needs of the females. Concerning menstrual hygiene, Sangeeta Kansal et al. (2016) conducted a community survey among Varanasi's rural teenage females. They found that rural regions still had low levels of premenstrual awareness. The study's author came to the conclusion that students' instructors had a unique opportunity to educate them about menstruation and other adolescent health concerns. According to this research, the most common informants were moms and sisters. Consequently, parents should also have access to all-encompassing family life education.

A cross-sectional research on teenage girls' menstrual hygiene behaviors and patterns was conducted by Hemlata Rokade and Anjali Kumavat (2016). The goals of this research were to (1) determine the extent to which teenage girls in slum and non-slum areas are aware of menstruation and its source; (2) compare the menstrual hygiene practices and patterns of adolescent girls in these two areas; and (3) identify socio-demographic factors that influence menstrual hygiene practices. Findings suggest that menstrual hygiene is a problem that all adolescents, especially those living in urban slums, require help with. Proper menstrual hygiene habits may be achieved if there is a greater focus on increasing teenage literacy. In 2015, Anna Maria Van Eijk conducted a meta-analysis and systematic review on the topic of menstrual hygiene management among Indian teenage girls. They discovered that compared to rural females, urban girls were more likely to utilize commercial pads.

However, all females often disposed of things inappropriately. Their research led them to the conclusion that menstrual hygiene management programs in India need improvement. Emphasizing the need of menstrual hygiene education, providing access to sanitary absorbents, and proper disposal of these products are all crucial. Researchers Baisakhi Paria et al. (2014) compared menstrual hygiene practices among teenage girls in West Bengal who lived in urban areas with those who lived in rural areas. Teenage girls from urban and rural areas had their perspectives on menstruation hygiene contrasted. Compared to urban regions, they found that rural areas had less desirable menstrual hygiene behaviors. Every teenage girl has to be taught on the need of good hygiene and helped to overcome the stigma, discrimination, and misunderstanding that surrounds menstruation. Ninety percent of the girls surveyed in a community-based research on menstrual hygiene habits in rural Gujarat by Shobha P. Shah et al. (2013) said they used old clothes instead of sanitary napkins. The study aimed to improve the quality of life of these girls. Because they are more accessible, less complicated, and less expensive

than sanitary pads, the cloths were considered culturally acceptable. They also said that a new program by the Indian government is providing subsidized sanitary pads to girls in rural areas, but that 68 percent of those girls would rather use rags. The Auroville Village Action Group conducted research on menstrual hygiene management in rural areas of the Villipuram District in Tamil Nadu in January 2011. The study found that 95% of women had ever felt pressured to limit their periods because they were ashamed of their perceived inadequacy. Due to cultural norms and beliefs, the high expense, and the fact that most women preferred to use cloths, sanitary napkins were not widely used. Factors impacting menstrual hygiene behaviors among southern Indian females were the subject of a cross-sectional research by Shabnam Omidvar and Khyrunissa Begam (2010). The age and socioeconomic status of the girls who participated in the study had an effect on the products they used, how they stored them, how often they changed them (during the day and at night), and how often they were washed. Hygienic habits were better among the older females as compared to the younger ones. The majority of participants (76%) wanted further knowledge on menstruation and personal hygiene.

They came to the conclusion that menstruation habits may be influenced by a number of variables, with age and socioeconomic status being the most significant. More and more young women are becoming aware of the need of learning about good menstruation habits. The introduction of a system to educate women on menstrual hygiene and self-care is very likely. Research on the Level of Knowledge About Safe and Hygienic Practices Among Rural School-Going Girls in India's Wardha District was conducted by Abhay Mudey et al. (2010). Their findings show that the majority of females (87%) do not attend religious events while they are menstruating. Among the most common menstrual symptoms described by teenage females, 67% experienced abdominal pain, 25.67% headache or discomfort, 12.67% lack of appetite, 10.33% leg cramps, and 17.67% excessive bleeding. The research, which was headed by Linda Scott (2010), included around 180 girls from four isolated communities in Ghana. Periods, she notes, are often taboo topics. Negligible hygiene practices may have devastating effects on a girl's health. A large number of the females just give up and stop trying in school. Plus, there's a real danger to their physical safety. There is sexism in Africa when a female reaches menarche. A lot of females' educations can come to an end because of it. Girls will be less likely to skip school, help out around the home, and participate in socialist activities if they had access to free sanitary products, according to the research. A research was carried out by Rajani Dingra et al. (2009) to evaluate the menstrual knowledge and behaviors of tribal (Gujjar) teenage females. The scientists gathered their samples from all around the Jammu District in the state of Jammu and Kashmir.

According to the results, the majority of survey participants (83%), when asked about menstruation, said they usually ask their friends. Nearly all of the girls surveyed (98%) felt that

taking a bath during a woman's period was inappropriate. Experts working to enhance reproductive health among adolescents should take note of these findings. A descriptive and cross-sectional research on teenage girls' menstrual hygiene was carried out by Dasgupta A and Sarkar M (2008). They said that one major risk factor for STIs is not practicing good hygiene when menstruating. It is crucial to provide teenage females with health education. An essential role in communicating the need of menstruation hygiene to teenage girls is played by educational television programs, parent education, inspired educators, and qualified school nurses, according to their findings. An investigation on menstrual hygiene, "Breaking the silence," was conducted by Ahmed and Yesmin (2008). The majority of rural women in Nepal, Bangladesh, and India use reusable towels to absorb menstrual blood, according to the investigator. These are often called "nekra" in Bangladesh and are typically ripped from old saris. Washing clothes with soap and drying them in sunshine kills germs that may cause infections. Many women and girls have nowhere to change clothes and are unable to wash themselves frequently due to a lack of amenities, including safe water and clean, private restrooms, as well as the stigma and shame associated with menstruation. Many people have no way to properly wash their clothes and no space to dry them, so they have to find hidden, dark spots to keep them clean. Research on the menstrual experiences and interest in menstruation suppression among military women during deployment was conducted by Lori L. Trego (2007). Seven themes emerged from the research, including: the severity of menstruation increases while deployment, the difficulty of maintaining personal hygiene while on deployment, and the inconveniences of dealing with heat, filth, and port-a-potties. Period suppression, dealing with menstruation during deployment, and the negative elements of menstruation outweigh the beneficial. She came to the conclusion that participants showed interest in menstrual suppression and that menstruation is a concern during deployment. However, participants' usage of this medication was restricted due to concerns regarding the safety and adverse effects of continuous oral contraception. Before being deployed, women should get education on menstrual hygiene and strategies of controlling their periods.

According to El-Gilany et al. (2007), poor personal hygiene was seen in several areas, including irregular or nighttime pad changes, absence of washing during menstruation, and an essential issue of lack of privacy. Perhaps as a result of their lack of knowledge and incorrect assumptions about menstruation, the majority of the girls in our research adhered to various limitations. The commencement of menstruation (menarche) may have a significant psychological influence, as discussed in this work by Carol Dashiff (2006). Despite the fact that menarche is a turning point in every girl's life, studies on the subject are few and flawed in both idea and methodology. This research examines the perspectives of pubertal females on menarche and the traits that define them as

individuals. Menarche is a major life transition for females, according to the research. Although many people see menarche unfavorably, it really has both beneficial and bad outcomes. Age at first period, social variables, level of preparation, and cultural factors all play a role in how menarche affects a person's mental health. The report offers recommendations for further study and focuses on issues with existing studies. Implications for nursing administration, practice, research, and education were proposed by Aggarwal (2006). Health care providers should be actively involved in helping preteen females become ready for menstruation. Adolescent girls may benefit from health education programs that teach them how to properly manage their periods. In a research on the topic, Jams (2006) found that teenage females in school do not often have enough information on menstruation hygiene. Therefore, the purpose of this research was to design and assess a menstrual hygiene education program for pre-teen girls by determining their specific learning requirements. It will assist individuals in becoming more self-reliant and in maintaining proper menstrual hygiene practices. According to Singh (2006), India is a land of powerful magic and evil-eyes. Rural Indian women revere the fabric, rag, or pad they use to absorb their period as a sacred thing, fearing that it may be used for evil or sorcery. It is often believed in the research region that women sometimes toss their "used" rag or pad at road crossings in an effort to cast ill spells or sorcery on others. Anyone who walks on this tossed pad or rag is said to be cursed by bad spirits. For Indian women, the disposal of this piece of fabric takes on added importance since it is seen as a key component of their private life. As a result, they go to great lengths to conceal it. Nearly 70% of those surveyed by Khanna et al. (2005) did not consider menstruation to be a normal part of a woman's body. Unfortunately, this survey found that over half of the girls did not know that they should wear sanitary pads while they were menstruating, and that the majority of the girls did not know where their period blood comes from. Possible causes for the aforementioned findings include moms' low levels of education or a lack of school-based health education programs that specifically target menstrual hygiene for girls. When the girls' periods came around, 3/4 of them used old clothes instead of premade sanitary pads. It was noted that after each usage, the cloth was often washed with detergent and stored incognito until the following menstrual cycle. These were occasionally stashed in unsanitary areas to shield the fabric from curious onlookers.

Proper menstrual hygiene requires privacy while changing, cleaning, or washing, however in this research, over half of the participants did not have access to a covered bathroom, therefore this was a major issue. The majority of the girls (73.75%) recycled or repurposed the wasted fabric, while 57.5% disposed of it in an appropriate manner. That urban dwellers belong to the upper and middle classes was shown by Abdel-Hady et al. (2005). While sanitary pad use is on the rise, it is not among rural and low-income girls, who also tend to have poor personal hygiene practices include not

changing their pads often or at night and skipping baths while they are menstruating. There was a serious issue with insufficient privacy. The majority of girls said that they required more education regarding menstruation hygiene, but moms and the media were the primary sources of information. Period hygiene instruction should be a part of a larger school health education initiative. We need to make sanitary pads more accessible and provide a supportive atmosphere at home and school for menstrual hygiene. The majority of girls experienced dread or worry during the first episode of bleeding, according to Joshi et al. (2004). Adolescent females need to have this anxiety gently alleviated so that they may approach their reproductive years with a healthy and balanced perspective. Therefore, it is important to educate the ladies of our research area, especially the young girls, on how to have good family lives. It is possible to create a suitable curriculum for female students. Mahila Mandals and Anganwadi centers provide opportunities for education for girls who do not attend school. Mass media may also be leveraged to enhance menstrual hygiene among teens. These issues should be kept in mind in planning any intervention, educational or otherwise, related reproductive health of women.

In terms of depressive symptoms, the abrupt onset of menarche has a negative impact on the psychological health of teenage girls, according to Corina (2004). Conversely, voicechange as a marker of pubertal change in Mexican boys had a beneficial impact on bodyimage and did not seem to negatively impact psychological well-being beyond a nonsignificant limited and temporary adjustments. The findings imply that the impact of pubertal changes may be mitigated by factors such as menstruation attitudes, perceived parental control, and previous social-emotional adjustment. According to Rakesh (2004), parents, particularly mothers, fail to inform their girls about menstruation and its many facets, including when it begins, how long it lasts, and how to stay healthy while it's happening. The females lack the enthusiasm to treat the occasion casually. So, teenage girls' thoughts are filled with bad attitudes, excessive dread, and anxiety owing to a lack of information, misunderstanding, and incorrect beliefs. In order to educate young teenage girls about healthy practices for menstruation, the studies suggest a planned educational program. Breast development is the first indicator of puberty in girls, according to Mul et al. (2003). This typically happens at around 10 and a half years of age. The process starts with breast budding, which is defined as the development of tiny nodules or lumps beneath the nipples. At first, these growths might be of varying sizes and feel tender. Typically, this marks the start of their period of rapid development. After that, axillary hair starts to grow in about six months, and then pubic hair emerges (adrenarche), while in some children, pubic hair is the first symptom of puberty. During the next several years, a girl's breast size will keep growing, her pubic hair will start to grow in and her external genitalia will become more prominent. Eventually, at around 12 1/2 to 13 years old, she will have her first period, also known as menarche. This is typically around

two years after puberty starts and around the same time as her peak height velocity. In the three to four years after menarche, a woman reaches her full adult height, matures her pubic hair pattern, and reaches the size of her adult breasts and areola. Research on teenage menstruation in Jaipur was carried out by Drs. Jaimala and Hitesh Gupta in 2001. According to their findings, shock and anxiety were the most prevalent emotions in the first cycle. The majority of the youths had stigmatizing views and misunderstandings about menstruation. Typically, the belief that menstrual blood is dirty and a curse upon all women was passed down from mothers or older female relatives to the daughters. The majority of females (77%) associate menstruation with the urinary system. THE ISSUE At the onset of menstruation, females do not pay much attention to the topic. In rural and tribal areas, teenage girls face additional barriers to accessing accurate information due to social restrictions and poor attitudes towards freely addressing such topics among parents and instructors. The issue of inadequate menstruation hygiene in underdeveloped nations has received little attention until recently. Since menstruation makes women more susceptible to illness, it is crucial that they adhere to hygiene standards at this time. Also there is a significant unmet perceived need in the field of reproductive health of teenage females in Ashram schools. Hence researcher has selected the subject "Impact of knowledge package regarding menstrual hygiene practices among adolescent girls of Ashram Schools of Western Maharashtra". So that it empowers and empower Ashram Schools teenage girls with information which boosts their self confidence and academic performance and preserving healthy reproductive health.

3. Using an unsanitary method while menstruating :

Changing washing habits or utilizing dirty items to absorb blood are examples of unhygienic behaviors that have been reported to occur during menstruation [6]. Some women in remote places either don't have access to sanitary items, don't understand their applications, or can't afford the expensive ones. This means that washable and reusable pads are their go-to [7]. Clothes have long been used to soak up menstrual flow since they are both inexpensive and kind on the environment. Nonetheless, pads are gradually displacing cloths, especially in metropolitan settings. If a woman need a place to dry her clothes, privacy, and water, she may find it difficult to clean and store her clothing [8]. Reusable materials cannot be properly sterilized because washing is done without soap and with dirty water and because drying is done inside, away from sunshine and open air, because of societal taboos. In rural areas and among lower-class women and girls, unclean washing practices are more common.

Menstrual flow because they are more eco-friendly and cheaper. But, particularly in urban locations, pads are slowly replacing them. Cleaning and drying garments may be a challenge for

women who need access to water, seclusion, or a drying room [9]. A woman's ability to manage her period hygiene may be affected by environmental circumstances, such as the availability of private spaces where she may clean up after herself. Water, hygiene, and sanitation facilities are factors that affect these variables in the area. It's possible that women whose menstrual hygiene is not well-managed are more prone to RTIs. Bacteroide vaginosis is more common in women who manage their menstruation in an unhygienic way [9].

4. Efforts made to improve menstrual hygiene :

Because sanitary napkins are becoming more expensive, some teens choose to wait until their period is over before going outside. This demonstrates that many individuals in India lack access to affordable, hygienic menstruation products [10]. The estimated 90% plastic content of a pad makes one pack of monthly pads equal to four plastic bags. Also made of plastic are tampons, string, and polyethene/polypropylene applicators. A considerable carbon footprint is left behind by the feminine hygiene product. An individual sanitary pad may last anywhere from 500 to 800 years, according to the Menstrual Health Alliance India, since landfills produce gasses that are harmful to both humans and the environment because the plastic used is not biodegradable. When making sanitary pads, most companies don't think about the environmental impact of their disposal [11]. Hence, it is critical to replace high-priced, non-biodegradable tampons with accessible, inexpensive, biodegradable alternatives for all women in India, whether they live in the city or the countryside. A number of initiatives are now under way to enhance menstrual hygiene practices; one of them will investigate the prevalence of sanitary pad materials composed of biodegradable natural fibers. Billions of women in low- and middle-income countries may have easier access to menstrual hygiene management [12].

a) A Sanitary Pad Made from Plants :

Jute, a long, silky, and shiny vegetable fiber, may be spun into strong, long-lasting threads. Along with cotton, it is one of the most cost-effective natural fibers for use in production and other uses. The majority of jute's fibers are composed of plant components, namely cellulose and lignin. The "golden fibre" moniker comes from the material's high monetary value and unique golden hue. Jute fiber, which has a small carbon footprint and makes very sustainable sanitary items, may replace petroleum-based raw materials with more environmentally friendly ones. The extensive use of jute fiber in personal care products will lead to a more environmentally conscious world [13].

Bamboo fiber or bamboo fabric is another material that is very absorbent. Also, bamboo fiber soaks up more water than cotton. The absorption capacity of a bamboo cotton mixture is greater than that of pure cotton, and the antibacterial effect of pure bamboo is the greatest. There are many microscopic holes and gaps in the bamboo fibber's cross-section. These fibers' cellulose differs

from other natural materials in that it is structured hierarchically and crystalline [14]. As an added bonus, bamboo possesses a unique bio-agent called "Bamboo Kun" that acts as an antibacterial and growth inhibitor for germs. This fiber is ideal for hygienic products as it does not retain germs as much as other choices, even after being worn for long periods of time. A fantastic hygienic substitute, it is recyclable, has excellent airflow, is very absorbent, and has various antibacterial properties. The best material for clean objects is bamboo wadding since it is biodegradable, lightweight, very absorbent, cheap, and almost twice as absorbent as a commercial sanitary pad. Neither the user nor the environment are negatively affected by it [15].

Water hyacinths, which are floating aquatic plants, are invasive in many regions. Stalons allow this plant to reproduce asexually, creating new plants with interconnected root systems. Its doubling period is around two weeks, and it grows very quickly. Water hyacinths are able to adapt to environments with floating obstacles because of this. Water hyacinths deplete water oxygen levels and crowd out local plant species, two ways in which they negatively impact aquatic life when populations get too big. Not only does water hyacinth inhibit marine life, but it also limits or eliminates recreational opportunities in the water.

Sanitary goods have historically made use of fibers derived from water hyacinths. Its cellulose composition, natural degradation, and human safety make it an excellent alternative to plastic-based pads [16].

Manufacturing the Saathi Pad, the local banana and bamboo fiber suppliers are Saathi. Menstruating ladies from all around the world may buy this pad, even though it was created in Gujarat, India. These pads are chemical-free and biodegradable since they include solely plant-based components. Compared to plastic pads, they pose less of a threat to both human and environmental health because of this. The pad promotes menstrual education and increases access to pads for women in India [17]. By hiring women, it is changing the cultural and economic landscape of the area and promoting gender equality. By purchasing ingredients from local farmers and selling pads at a very affordable price, it also helps the local economy and makes sanitary napkins more accessible. At long last, safe has created a reusable, biodegradable pad to address the environmental and social issues related to menstruation and basic menstrual hygiene. The reusable pad encourages menstruation women in India to maintain proper personal hygiene. Polyurethane lamination, banana fiber, and cotton piling were its constituent parts. These pads are made more cheap for women by reducing manufacturing and market expenses with the use of banana fibers [18].

Conclusion :

The quality of menstrual hygiene depends on a number of factors, including the product used,

the frequency of replacement, the frequency of washing, the cleanliness of the intimate region, and the safe disposal of spent goods. Intimate area cleaning with water, using clean materials, changing pads at least twice or thrice a day, and bathing everyday are all instances of proper hygiene habits. Period products have come a long way since their inception.

Among these consumables are tampons, menstrual cups, and sanitary napkins. Among menstrual products, sanitary napkins are the most common. Several reusable napkins that are kind to the environment are currently on the market. Every member of society must have a fundamental knowledge of this, even though menstruation is a biological process that only women experience. A number of perspectives, such as gender parity, reproductive health, educational opportunities, public health, and sanitation, hygiene, and water supply, are beginning to shine a light on the critical problem of menstrual hygiene, which has only just begun to get the attention it deserves. Because of its effects on national economies, financial markets, the state of the environment, and employment rates generally, this has come to pass. Furthermore, it impacts the well-being, education, family, and safety of the female kid. Through seminars and the addition of a chapter to course materials that focuses on improving lifestyle and related variable elements, we will raise girls' necessary knowledge about the physiological aspects of menstruation, the connection between menstruation diseases, symptoms, and hormonal fluctuations, and the contributing factors. Under these conditions, it's wise to push for the production of all-natural, perfectly safe tampons. Sanitary napkins made from banana, cotton, hyacinth, bamboo, or oil cloth are completely natural, won't irritate skin or cause a rash or redness, are gentle, biodegradable, and antibacterial and antifungal. We should encourage their usage.

References :

1. Kpodo L, Aberese-Ako M, Axame WK, Adjuik M, Gyapong M: Socio-cultural factors associated with knowledge, attitudes and menstrual hygiene practices among Junior High School adolescent girls in the Kpando district of Ghana: a mixed method study. PLoS One. 2022, 17:e0275583. 10.1371/journal.pone.0275583
2. Mihm M, Gangooly S, Muttukrishna S: The normal menstrual cycle in women . Anim Reprod Sci. 2011, 124:229-36. 10.1016/j.anireprosci.2010.08.030
3. Dar MA, Maqbool M, Gani I, Ara I: Menstruation hygiene and related issues in adolescent girls: a brief commentary. Int J Curr Res Physiol Pharmacol. 2023, 1:5.
4. Singh AJ: Place of menstruation in the reproductive lives of women of rural North India . Indian J Community Med. 2006, 31:10.
5. Ramteke R: Menstruation awareness. Indian J Community Med. 2022, 3:581-4. 10.4103/0970-0218.54923

6. Ali TS, Sami N, Khuwaja AK: Are unhygienic practices during the menstrual, partum and postpartum periods risk factors for secondary infertility?. J Health Popul Nutr. 2007, 25:189-94.
7. Kaur R, Kaur K, Kaur R: Menstrual hygiene, management, and waste disposal: practices and challenges faced by girls/women of developing countries. J Environ Public Health. 2018, 2018:1730964. 10.1155/2018/1730964
8. Kumar A, Srivastava K: Cultural and social practices regarding menstruation among adolescent girls. Soc Work Public Health. 2011, 26:594-604. 10.1080/19371918.2010.525144
9. Garg S, Anand T: Menstruation related myths in India: strategies for combating it . J Family Med Prim Care. 2015, 4:184-6. 10.4103/2249-4863.154627
10. Asumah MN, Iddrisu OA, Yariga FY, Atuga AA, Abdulai AM: The increasing cost of sanitary products and the potential impact on menstrual hygiene management practices in Ghana. Asian J Med Health. 2023, 21:20-2. 10.9734/ajmah/2023/v21i5810
11. Ghosh I, Rakholia D, Shah K, Bhatt D, Das M: Environmental perspective on menstrual hygiene management along with the movement towards biodegradability: a mini-review. J Biomed Res Environ Sci. 2020, 1:122-6. 10.37871/jels1129
12. Sivakami M, Maria van Eijk A, Thakur H, et al.: Effect of menstruation on girls and their schooling, and facilitators of menstrual hygiene management in schools: surveys in government schools in three states in India, 2015. J Glob Health. 2019, 9:010408. 10.7189/jogh.09.010408
13. Agbaku CA, Yahaya AS, Junhua F, Chengqi S, Linda W: Jute plant - a bio-degradable material in making sanitary pad for sustainable development. Int J Sci Res Manag. 2020, 8:162-70. 10.18535/ijsrm/v8i06.fe01
14. Foster J, Montgomery P: A study of environmentally friendly menstrual absorbents in the context of social change for adolescent girls in low- and middle-income countries. Int J Environ Res Public Health. 2021, 18:9766. 10.3390/ijerph18189766
15. Barman A, Katkar PM, Asagekar SD: Natural and sustainable raw materials for sanitary napkin. J Textile Sci Eng. 2017, 7:3. 10.4172/2165-8064.1000308
16. Kipchumba BB, Kulei AK, Mwasiagi JI: The study and optimization of the hygroscopic properties of selected natural products with an aim of designing a sanitary pad suitable for low-and middle-income population. Cogent Eng. 2023, 10:2196812. 10.1080/23311916.2023.2196812
17. Tudu PN: Saathi sanitary pads: eco-friendly pads which will make you go bananas! . J Philanthr Mark. 2020, 25:e1167. 10.1002/nvsm.1667
18. Peter A, Abhitha K: Menstrual cup: a replacement to sanitary pads for a plastic free periods . Mater Today Proc. 2021, 47:5199-202. 10.1016/j.matpr.2021.05.527

Email: upma.research@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 29–35

राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान के सम्बन्ध में स्नातक स्तर एवं स्नातकोत्तर स्तर के छात्र–छात्राओं की बुद्धिमता का अध्ययन

काशीराम, शोधकर्ता
डॉ. अनिल कुमार, शोध निर्देशक

राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान (रूसा) मानव संसाधन विकास मंत्रालय की केन्द्र प्रायोजित योजना है, जिसका उद्देश्य राज्य उच्चतर शिक्षा विभागों एवं संसाधनों को कार्य समानता नीतिक केन्द्रीय वित पोषण उपलब्ध कराना है तथा पहुँच समानता उत्कृष्टता के व्यापक लक्ष्यों को अर्जित करना है। राज्य उच्चतर शिक्षा विभाग एवं संस्थान राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा विभाग एवं संस्थान अनुदानों के लिए हकदार होने की एक पूर्व शर्त के रूप में कुछ विशेष संचालन संबंधी शैक्षिक एवं प्रशासनिक सुधार आरम्भ करते है। राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान का कार्यान्वयन का सच्ची तत्परता के साथ मई 2014 के बाद आरम्भ हुआ। राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान एक केन्द्र प्रायोजित एक नई योजना है। जो मुख्यतः राज्यों के शिक्षण संस्थानो पर जोर देती है। देश की बढ़ती जनसंख्या और शिक्षण व्यवस्था में सुधार लाने के लिए इसकी आवश्यकता पड़ी ताकि इससे देश में शिक्षा के क्षेत्र में अधिक से अधिक विस्तार करके शिक्षा को बढ़ावा दिया जा सकें।

बुद्धिमत्ता –

बुद्धि किसी भी व्यक्ति की एक योग्यता है। इसमें अनेक मानसिक क्षमताएं समन्वति रूप से शामिल है। बुद्धि द्वारा किसी भी व्यक्ति को अपने व्यवहारिक जीवन में सफलता हासिल करने में भी मदद मिलती है। यह नई–नई परिस्थितियों में व्यक्ति का समायोजन बनाए रखने में विशेष रूप से गतिशील रहती है। इसका संबंध अनुभवों के विश्लेषण एवं जरूरतों की योजना तथा पुर्ननिर्माण से होता है। 'बुद्धि' शब्द एक विशेषण है संज्ञा नहीं। यह एक अमूर्त सप्रत्यय है जिसे व्यक्ति के परिस्थिति के अनुसार किए गए व्यवहार के द्वारा समझा जा सकता है।

बुद्धि व्यक्ति की यह संयुक्त और समग्र क्षमता है। जिसके द्वारा वह उद्देश्यपूर्ण कार्य करता है। विवेकपूर्ण चिन्तन करता है। और अपने वातावरण का प्रभावशाली ढंग से सामना करता है। बुद्धि में व्यक्ति की वे मानसिक व ज्ञानात्मक योग्यतायें सम्मिलित हैं जो उसे जीवन की वास्तविक समस्याओं कों सुलझाने में सहायता देती हैं और उसके आनन्दपूर्ण संतुष्ट जीवन यापन में सहायक होती है। बुद्धि एक परिकल्पनात्मक शक्ति है। बुद्धि को

प्रत्यक्ष रूप से देखा नहीं जा सकता, बल्कि उसके द्वारा लिए गए निर्यणों के प्रभावों को ही देखा जा सकता है। अतः बुद्धि एक अमूर्त चिन्तन की क्षमता है।

न्यादर्श –

प्रस्तुत शोध कार्य के दत्त संकलन कार्य हेतु शोधकर्ता द्वारा राजस्थान राज्य के हनुमानगढ़ जिले के डिग्री महाविद्यालय के स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर के कुल 600 विद्यार्थियों को शामिल किया गया है, जिनमें से 300 स्नातक स्तर के विद्यार्थी (150 छात्र + 150 छात्राएं) तथा 300 स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थी (150 छात्र + 150 छात्राएं) (कुल 600) विद्यार्थियों का चयन किया गया।

विधि –

इस शोध अध्ययन में शोधकर्ता ने सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया।

उपकरण –

इस हेतु शोधकर्ता द्वारा मानकीकृत उपकरण के रूप में बुद्धिमता हेतु जलोटा द्वारा निर्मित 'मानसिक परीक्षण योग्यता परीक्षा' का प्रयोग किया गया।

सांख्यिकी –

शोध कार्य हेतु शोधकर्ता द्वारा सांख्यिकी के रूप में मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–टेस्ट का प्रयोग किया गया।

शोध के उद्देश्य –

1. राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान के सम्बन्ध में स्नातक स्तर एवं स्नातकोत्तर स्तर के छात्र–छात्राओं की बुद्धिमता का अध्ययन करना।

विश्लेषण –

सारणी संख्या–1 (स्नातक स्तर)

समूह (विद्यार्थी)	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	स्वतंत्रता की कोटि	टी मूल्य	सार्थकता स्तर
छात्र	150	80.93	6.34	298	0.25	असार्थक
छात्राएं	150	81.11	6.27			

0.01 व 0.05 सार्थकता स्तर

परिणाम एवं व्याख्या –

सारणी संख्या 1 के अनुसार राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान के सम्बन्ध में स्नातक स्तर के छात्र–छात्राओं की बुद्धिमता का मध्यमान क्रमशः 80.93 तथा 81.11 है। इन दोनों समूहों का प्रमाप विचलन क्रमशः 6.34 व 6. 27 हैं। अतः दोनों के मध्यमानों के अंतर का टी मूल्य 0.25 है। ये मूल्य 298 स्वतंत्रता की कोटि हेतु 0.05 स्तर पर विश्वास मूल्य 1.96 तथा 0.01 के विश्वास मूल्य 2.59 से कम है। अतः दोनों स्तरों पर सार्थक अंतर नहीं है। राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान के सम्बन्ध में स्नातक स्तर के छात्र–छात्राओं की बुद्धिमत्ता में कोई अंतर प्राप्त

नहीं हुआ है जैसा कि लेखाचित्र से भी स्पष्ट हो रहा है :–

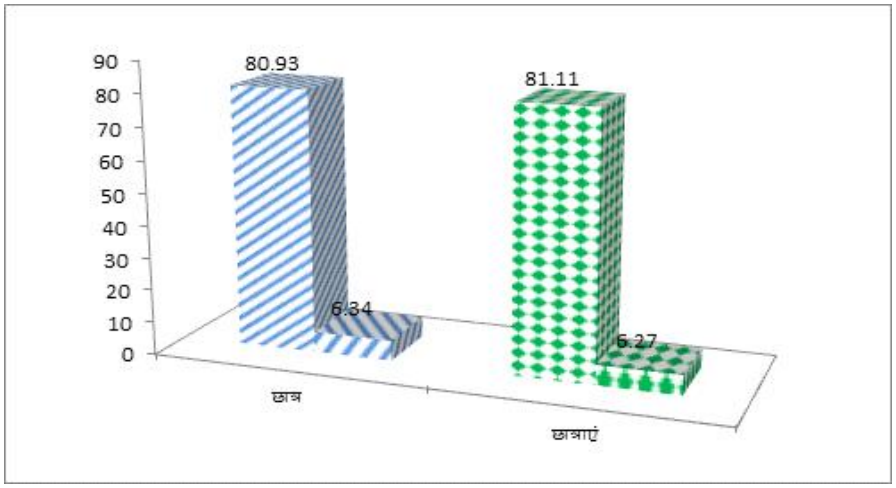

सारणी संख्या–2 (स्नातकोत्तर स्तर)

समूह (विद्यार्थी)	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	स्वतंत्रता की कोटि	टी मूल्य	सार्थकता स्तर
छात्र	150	84.37	6.92	298	0.73	असार्थक
छात्राएं	150	84.91	5.93			

परिणाम एवं व्याख्या –

सारणी संख्या 2 के अनुसार राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान के सम्बन्ध में स्नातकोत्तर स्तर के छात्र–छात्राओं की बुद्धिमता का मध्यमान क्रमशः 84.37 तथा 84.91 है। इन दोनों समूहों का प्रमाप विचलन क्रमशः 6.92 व 5.93 हैं। अतः दोनों के मध्यमानों के अंतर का टी मूल्य 0.73 है। ये मूल्य 298 स्वतंत्रता की कोटि हेतु 0.05 स्तर पर विश्वास मूल्य 1.96 तथा 0.01 के विश्वास मूल्य 2.59 से कम है। अतः दोनों स्तरों पर सार्थक अंतर नहीं है।

राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान के सम्बन्ध में स्नातकोत्तर स्तर के छात्र–छात्राओं की बुद्धिमत्ता में कोई अंतर प्राप्त नहीं हुआ है जैसा कि लेखाचित्र से भी स्पष्ट हो रहा है–

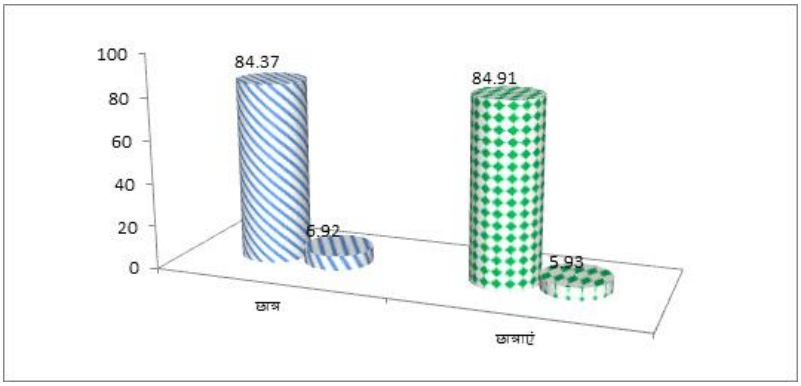

अतः निर्धारित परिकल्पना 'राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान के सम्बन्ध में स्नातक स्तर के छात्र–छात्राओं की बुद्धिमत्ता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है' को पूर्णतः स्वीकृत किया जाता है।

सारांश –

अध्ययन के परिणाम से राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान (रूसा) में डिग्री महाविद्यालय के विद्यार्थियों की बुद्धिमता का अध्ययन पर प्रकाश डालने में मदद मिलेगी। यह शोध स्नातक और स्नातकोत्तर डिग्री महाविद्यालयों के कला संकाय व विज्ञान संकाय के विद्यार्थियों की बुद्धिमता का अध्ययन करने में भी मदद करेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. अग्रवाल, जे.सी. (1966), एज्यूकेशनल रिसर्च इन इन्ट्रोडक्शन. नई दिल्ली, आर्य बुक डिपो।
2. अरोड़ा डॉ. रीता, मारवाह डॉ. सुदेश (2004–05), शिक्षण एवं अधिगम के मनोसामाजिक आधार, जयपुरः शिक्षा प्रकाशन।
3. उपाध्याय प्रतीक (2006), 'संवेगात्मक बुद्धिमता के संदर्भ में विद्यार्थी एवं अध्यापकों के शैक्षिक दुश्चिन्ता, व्यक्तित्व गुण एवं शैक्षिक प्रेरणा विषय पर अध्ययन' पीएच.डी. स्तरीय शोधकार्य।
4. एंडरसन एवं अन्य (1983), जर्नल ऑफ साइक्लोजी, वाल्यूम 115, पृष्ठ 185–191.
5. एडानुर, श्रीकला (2010), 'शिक्षा महाविद्यालयों के अध्यापकों की संवेगात्मक बौद्धिकता का अध्ययन' एक शोधकार्य।
6. कँवर, सुमित्रा (2012), 'बी.एड. विद्यार्थियों की बुद्धिलब्धि व दुश्चिन्ता स्तर में सहसंबंध' एक शोधकार्य।
7. कुमारी, ऊषा (2012), 'प्रतिभाशाली व मंद बुद्धि विद्यार्थियों की बुद्धिलब्धि का उनके व्यक्तित्व पर पड़ने वाले प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन' एक शोधकार्य।
8. कुशवाह आरती (2003), किशोर अभिभावक संबन्ध, संवेगात्मक परिपक्वता एवं बौद्धिक विकास का समायोजन पर प्रभाव का अध्ययन, पीएच.डी. शोध प्रबन्ध, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर।
9. गुप्ता, आर.पी. (2004), ''अध्यापकीय वृत्तिक समायोजन प्रश्नावली के समानान्तर प्रारूप का विकास'' प्रयोजनात्मक प्रश्नावली।
10. गौड़, अनिता (2005), बच्चों की प्रतिभा कैसे निखारे. नई दिल्लीः राज पाकेटबुक्स. पृष्ठ संख्या–14.
11. चन्द्रशेखर एवं पाधी सम्बित कुमार (2009), ''अध्यापकों की वैयक्तिक समस्याएं और सांवेगिक समायोजन : कारण और उपचार'' प्रयोजनात्मक शोधकार्य।
12. ढाका, सुरेश (2016), ''शिक्षा, चिकित्सा एवं अभियान्त्रिकी पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मूल्यों, सृजनात्मकता व समायोजन पर उनकी शैक्षिक उपलब्धि के प्रभाव का अध्ययन'' पीएच.डी. स्तरीय शोधकार्य।
13. ढोढियाल, एस. पाठक (1990), शैक्षिक अनुसंधान का विधिशास्त्र. जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी. पृष्ठ संख्या–51.
14. तिनगुजंम, नूतन कुमार एस. (2011), 'सांवेगिक बुद्धिमता और जीवन सन्तुष्टिः भारत में व्यक्तित्व और प्रभावशीलता की भूमिका मध्यस्थता और लिंक का पुनः परीक्षण' पुणे विश्वविद्यालय, पीएच.डी. स्तरीय

शोधकार्य।

15. दुबे, रूचि (2007), 'स्नातक स्तर के विद्यार्थियों में सांवेगिक बौद्धिकता एवं शैक्षिक निष्पति में संबंध' पी. एच.डी. स्तरीय शोधकार्य।
16. पटेल, हेतल टी. (2013), '9वीं कक्षा के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धिमता और समायोजन का अध्ययन' शोध–पत्र।
17. पथिक, अरूणा (2011), 'गुड़गांव (हरियाणा) जिले के विज्ञान व कला संकाय के बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों का उनके विभिन्न बौद्धिक स्तरों पर मूल्यों का अध्ययन' एक शोधकार्य।
18. पाठक, पी.डी. (2007), शिक्षा मनोविज्ञान. आगराः विनोद पुस्तक मन्दिर. पृ.सं. 245, 552, 450.
19. पारीक, प्रो. मथुरेश्वर (2005), उदीयमान भारतीय समाज एवं शिक्षा.जयपुर : शिक्षा प्रकाशन. पेज 22.
20. फारुक, अम्बर (2003), ''किशोर विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पादन पर संवेगात्मक बौद्धिकता के प्रभाव का अध्ययन'' पीएच.डी. स्तरीय शोधकार्य।
21. भार्गव, ऊषा (1993), किशोर मनोविज्ञान. जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी. पृष्ठ संख्या–99.
22. मदनाकर, आर.आर. (2012), 'शिक्षक प्रशिक्षकों में संवेगात्मक बुद्धि और डाईट के प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रति अभिवृत्ति' कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़, एक प्रयोजनात्मक शोधकार्य।
23. मानसिंह (2011), ''शिक्षित एवं अशिक्षित अभिभावकों के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति एवं मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन'' एक शोधकार्य।
24. माली राजकुमार (2004), 'सवर्ण एवं आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों की तक योग्यता, बौद्धिक योग्यता, समायोजन क्षमता एवं विद्यालयी निष्पति का तुलनात्मक अध्ययन' एक शोधकार्य।
25. मित्तल, एम. एन. (2005), शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार. मेरठ : इन्टरनेशल पब्लिशिंग हाऊस. पृ. स.–293–296.
26. मेरिल वॉशिंगटन, विक्टोरिया (2008), 'संवेगात्मक बुद्धि बहुसांस्कृतिक ज्ञान और जागरूकता व विद्यालय परामर्शदाताओं की प्रभावोत्पादकता में नैतिक ताप' एक शोधकार्य।
27. मेहता, वी. आर. (2006), उभरते भारतीय समाज में अध्यापक एवं शिक्षा, कोटा बीई. प्रथम कोटा खुला विश्वविद्यालय. पृष्ठ संख्या–71.
28. मेहता, वी. आर. (2006), अध्ययन पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति : मूल्यपरक शिक्षा कोटा : कोटा खुला विश्वविद्यालय. पृष्ठ संख्या–70.
29. यादव, एम.आर. अनुसंधान परिचय. आगराः विनोद पुस्तक मंदिर. पृ.सं. 74.
30. रामवीर (2007), 'महाविद्यालय में अध्ययनरत सामान्य दृष्टि व दृष्टि बाधित विद्यार्थियों की संवेगात्मक बौद्धिकता के संबंध में असंतोष, तनाव व मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन' एक शोधकार्य।
31. राय, पारसनाथ, 'शैक्षिक प्रशासन एवं विद्यालय संगठन' (लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा)
32. राय, पी.एन. (1981), अनुसंधान परिचय. चतुर्थ संस्करण. आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर पृष्ठ संख्या–63.
33. रेणा, विनोद (2008), सार्वभौम शिक्षा की दिशा में उठे कदम. नई दिल्ली : मासू.प्र.मं. वर्ष–52, अंक–11, पृ.सं.7.

34. व्यास, हरिशचन्द्र. (2001), हम और हमारी शिक्षा, जयपुरः पंचशील प्रकाशन चौड़ा रास्ता. पृ.सं. 17.
35. वादवानि, पुष्पा (2003), सुखद भविष्य की ओर पारिवारिक जीवन शिक्षा, राजस्थान : आई.ई.सी. ब्यूरो स्वास्थ्य विभाग. पृष्ठ संख्या–33.
36. वर्मा, सुमन (2012), 'बी.एड. एवं एम.एड. विद्यार्थियों की सामान्य बुद्धि और भावात्मक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन' शोधकार्य।
37. वर्मा, रचनामोहन (2004), ''ग्रामीण और शहरी विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विशेषक और समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन'' पीएच.डी. स्तरीय शोध कार्य।
38. सचदेव, डी. आर. व विद्याभूषण (2004), समाजशास्त्र के सिद्धान्त. नई दिल्ली : किताब महल पृ. स.–307.
39. सारस्वत, डॉ. मालती (1997), शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा : आदत और शिक्षा, आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर. पृ. स. 255.
40. सुखिया, एस.पी. (1973), शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व. द्वितीय संस्करण, आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर. पृष्ठ संख्या–487.
41. सिंह, गौरव एवं कुमार, गिरीजेश (2008), 'संवेगात्मक बुद्धि और अनुदेशन माध्यम, माध्यमिक शिक्षकों पर एक अध्ययन' एक शोधकार्य।
42. सिंह, सीमा (2004), ''इलाहाबाद मंडल के माध्यमिक स्तर पर गैर–अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की समायोजन समस्या का तुलनात्मक अध्ययन'' पीएच.डी. स्तरीय शोधकार्य।
43. सैगर, कल्पना (2002), 'विद्यालय जाने वाली किशोर छात्राओं में बुद्धिमता एवं सृजनात्मकता के संदर्भ में समायोजन व भावनात्मक सुरक्षा का अध्ययन' पी.एच.डी. स्तरीय शोधकार्य।
44. सैंडर्स (2001), बुद्धि परीक्षण व शैक्षिक परीक्षण के संबंध में अध्ययन' एक शोधकार्य।
45. शर्मा, आर. ए. (1992–93), 'शिक्षा अनुसंधान' (आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
46. शर्मा, आर. ए (2013), शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
47. शर्मा, कनक (2008), 'किशोर विद्यार्थियों के समायोजन एवं रक्षा युक्तियों के सन्दर्भ में सांवेगिक बुद्धि का अध्ययन' पीएच. डी. स्तरीय शोधकार्य।
48. शर्मा, कुलदीप (2011), 'महाविद्यालयी अन्तर्मुखी एवं बहीर्मुखी विद्यार्थियों की सांवेगिक व सामाजिक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन' एक शोधकार्य।
49. शर्मा, रामनाथ (1978), नीतिशास्त्र की रूपरेखा. मेरठ केदारनाथ.रामनाथप्रकाशन. पेज –120.
50. हकीम, एम.ए. और अस्थाना, विपिन (1994), मनोविज्ञान की शोध विधियाँ.आगराः विनोद पुस्तक मंदिर. पृष्ठ संख्या–169.
51. श्रीवास्तव, डी.एन. और वर्मा, प्रीति (2007), बाल मनोविज्ञान एवं बाल विकास आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर. पृष्ठ संख्या–459–460.
52. त्रिवेदी, आर.एन. एवं शुक्ला, डी.पी. (2008), रिसर्च मैथ्डोलॉजी, जयपुर : कॉलेज बुक डिपो. पृ.सं. 321.

53. त्रिवेदी, संध्या (2011), 'अनाथ बच्चों की आत्महीनता एवं असुरक्षा की भावना में कमी तथा भावनात्मक बुद्धि के विकास में मनो–आध्यात्मिक चिकित्सा की भूमिका का अध्ययन' एक शोधकार्य।

Journals and Magazines -

1. भारतीय शिक्षा शोध, पत्रिका रिव्यू, अंक–22.
2. नई शिक्षा, राष्ट्रीय शैक्षिक संवाद की पत्रिका, वर्ष – 62 अंक – 5.
3. जर्नल ऑफ वैल्यू एजूकेशन, अंक–5, जनवरी व जुलाई, 2005.

Survey -

1. Buch, M.B. (Ed.). First survey in Education.
2. Buch, M.B. (Ed.). Second survey in Education.
3. Buch, M.B. (Ed.). Third survey in Education.
4. Buch, M.B. (Ed.). Fourth survey in Education.
5. Buch, M.B. (Ed.). Fifth survey in Education

Webliography -

1. www.ase.org.uk
2. www.shodhganga.inflibnet.ac.in
3. www.usq.edu.au/users/albino/papers/site99/1345.html
4. www.skills_nict.com.in
5. www.google.com
6. www.education.nic.in

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
SANGAM
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
Vol. 13, Issue 11-12
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
पृष्ठ : 36–52

यौगिक ग्रंथों में वर्णित आहार का समीक्षात्मक अध्ययन

(हठयोगप्रदीपिका, घेरण्ड संहिता एवं श्रीमद्भगवद्गीता के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ. अर्पिता नेगी, सहायक आचार्या
गगन सिंह, शोधार्थी (पीएच.डी, जेआरएफ),
योग अध्ययन विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला–5

शोध सारांश :

आहार समस्त प्राणियों के जीवन का आधार है। सभी जीव-जन्तु विभिन्न खाद्य पदार्थों को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं, जिससे उन्हें जीवन-शक्ति प्राप्त होती है और उनका उचित विकास होता है। मनुष्य अन्न-जल, कन्द-मूल, फल, मांस आदि को आहार के रूप में ग्रहण करता है। मानव जीवन में आहार का विशेष महत्व है, जो न केवल शारीरिक स्वास्थ्य बल्कि मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का भी आधार है। हठयोगप्रदीपिका, घेरण्ड संहिता तथा श्रीमद्भगवद्गीता जैसे यौगिक ग्रंथों में आहार को योग साधना का अनिवार्य अंग माना गया है। इन ग्रंथों में पथ्य–अपथ्य आहार, मिताहार तथा त्रिगुणात्मक आहार का वर्णन मिलता है। प्रस्तुत शोध पत्र में इन आहार संबंधी सिद्धांतों का समीक्षात्मक विश्लेषण किया गया है।

प्रमुख शब्द *: योग, यौगिक आहार, मिताहार, पथ्याहार, अपथ्याहार, सात्त्विक आहार, राजसिक आहार, तामसिक आहार, युक्ताहार, मोक्ष।*

1. **सामान्य परिचय** : मानव जीवन में योग का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। योग केवल शारीरिक व्यायाम का साधन ही नहीं है, बल्कि यह मन, शरीर और आत्मा के समन्वय का मार्ग है। भारतीय दर्शन में योग को मोक्ष प्राप्ति का साधन माना गया है, जो व्यक्ति को दुःखों से मुक्ति दिलाकर परम शांति की ओर ले जाता है। चरक संहिता में भी योग को मोक्ष प्रदायक बताया गया है:

"योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्तनम्।

मोक्षे निवृत्तिर्निःशेषा योगो मोक्षप्रवर्तकः।।[1]

अर्थात् योग और मोक्ष में समस्त की वेदनाओं की निवृत्ति हो जाती है। मोक्ष में वेदनाएँ पूरी तरह से नष्ट हो जाती हैं तथा योग मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

1.1 योग का स्वरूप :

1.1.1 योग की व्युत्पत्ति : योग शब्द की व्युत्पत्ति '√युज्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाने से हुई है।[2]

1.1.2 योग का अर्थ : योग शब्द का अर्थ तीन रूपों (योग, संयमन एवं समाधि) में लिया जाता है। परन्तु महर्षि पतंजलि कृत योगसूत्र पर आधारित व्यास भाष्य के अनुसार योग का अर्थ 'समाधि'[3] बताया गया है।

1.1.3 योग की विभिन्न परिभाषाएँ : विभिन्न ग्रंथों में योग की परिभाषाएँ इस प्रकार से बतायी गयी हैं :

महर्षि पतंजलि द्वारा रचित ग्रंथ पातंजलयोगसूत्र के प्रथम पाद (समाधि पाद) में योग को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि;

'योगाश्चित्तवृत्ति निरोधः' ।।[4]

अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार योग को इस प्रकार से परिभाषित किया गया है :

'समत्वं योग उच्यते' ।।[5]

अर्थ: हर परिस्थिति में सम भाव से रहने का नाम योग है।

'योगः कर्मसु कौशलम्' ।। [6]

अर्थ: कर्मों में कुशलता योग है।

1.1.4 योग की संक्षिप्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : योग भारत की एक प्राचीन सनातन पद्धति है। हिरण्यगर्भ भगवान कपिल को योग का आदि उपदेष्टा माना जाता है।[7] आदिनाथ भगवान शिव

---

[1] शुक्ल विद्याधर आचार्य, त्रिपाठी रविदत्त प्रो० (2022), चरक संहिता, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, शारीरस्थान, 1.137।

[2] श्रीवास्तव्य सुरेशचन्द्र प्रो० (2018), पातंजलयोगदर्शनम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, भूमिका, पृष्ठ संख्या 30।

[3] श्रीवास्तव्य सुरेशचन्द्र प्रो० (2018), पातंजलयोगदर्शनम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1.2, श्रीव्यासभाष्य।

[4] श्रीवास्तव्य सुरेशचन्द्र प्रो० (2018), पातंजलयोगदर्शनम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1.2।

[5] रामसुखदास स्वामी, श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर 2.48।

[6] रामसुखदास स्वामी, श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर 2.50।

[7] श्रीवास्तव्य सुरेशचन्द्र प्रो० (2018), पातंजलयोगदर्शनम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, भूमिका, पृष्ठ संख्या 6।

हठयोग विद्या के आदि गुरु कहे जाते हैं।[8] महर्षि पतंजलि ने भी योग के बिखरे हुए ज्ञान को योगसूत्र के रूप में व्यवस्थित किया। गुरु शिष्य परम्परा के द्वारा योग का ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी प्रदान किया गया है। मोहनजोदड़ो सभ्यता के प्रमाणों के रूप में कुछ मुहरें भी पाई गई हैं, जिनमें पशुपति भगवान शिव को विशेष तरह के योगासन में स्थित दर्शाया गया है। इससे यह प्रमाणित होता है कि लगभग 2500 ईसा पूर्व भी योग अस्तित्व में था। परन्तु योग के प्रादुर्भाव के समय के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी कह पाना संभव नहीं है।

1.2 यौगिक ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय : वर्तमान समय में योग से सम्बन्धित विभिन्न ग्रन्थ अस्तित्व में हैं। परन्तु इनमें से हठयोगप्रदीपिका और घेरण्ड संहिता का हठयोग से सम्बन्धित ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्रीमद्भगवद्गीता भी श्रीभगवान की ही वाणी मानी जाती है तथा एक महत्त्वपूर्ण योगशास्त्र है।

1.2.1 हठयोगप्रदीपिका का सामान्य परिचय : हठयोगप्रदीपिका हठयोग साधना हेतु अंधकार में एक दीपक की भाँति पथ प्रदर्शन करने वाला एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। हठप्रदीपिका भी इसी ग्रंथ का ही एक अन्य नाम है। इस ग्रंथ की रचना स्वामी स्वात्माराम जी ने की थी। इसका रचना काल 14-15वीं शताब्दी का बताया जाता है। चार उपदेशों में विभाजित इस ग्रन्थ में 385 श्लोक हैं। **प्रथम उपदेश** को **'आसन विधि कथन'** भी कहा जाता है। भगवान श्री आदिनाथ को नमस्कार कर इस ग्रंथ का आरंभ किया गया है। तत्पश्चात योग साधना हेतु स्थान निर्णय और मठिका निर्माण का वर्णन किया गया है। इसी उपदेश में योग साधक के लिए साधक और बाधक तत्व भी बताये गए हैं। इसमें आसन को योग का प्रथम अंग बताया गया है तथा आसनों की संख्या 84 बतायी गई है। परन्तु केवल 15 आसनों का वर्णन किया गया है। इस उपदेश के अंत में मिताहार, पथ्य-अपथ्य आहार का भी वर्णन किया गया है। **द्वितीय उपदेश** को **'प्राणायाम विधि कथन'** के नाम से भी जाना जाता है। इस उपदेश में यह बताया गया है कि आसन सिद्धि के उपरांत मिताहार ग्रहण करते हुए साधक को गुरु द्वारा बतायी गई विधि के अनुसार प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। परन्तु जिनके शरीर में मेद, स्थूलता तथा कफ की मात्रा अधिक है, ऐसे साधकों को प्राणायाम से पहले शोधन क्रियाओं का अभ्यास करना चाहिए। ये शोधन क्रियाएँ छः प्रकार की हैं, अतः इन्हें षट्कर्म कहा जाता है। धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि एवं कपालभाति ये छः शोधन क्रियाएँ बतायी गई हैं। शरीर में स्थूलता, कफ-सम्बन्धी रोग तथा मल आदि का षट्कर्म द्वारा निवारण करने के बाद प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।इस उपदेश में अष्ट कुम्भकों क्रमशः सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और प्लाविनी

[8] दिगंबरजी स्वामी, झा पीतांबर डॉ० (2017), हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम लोनावाला, 1.1।

कुम्भक की लाभ सहित व्याख्या की गई है । इस उपदेश के अंत में हठसिद्धि के लक्षणों का भी वर्णन किया गया है। **तृतीय उपदेश** को **'मुद्रा विधान'** भी कहा जाता है। इस उपदेश में समस्त योग-तंत्रों का आधार कुण्डलिनी को बताया है और इसी के जागरण हेतु 10 प्रकार की मुद्राओं के अभ्यास का निर्देश दिया गया है। यह मुद्राएं जरा-मृत्यु का नाश करने वाली एवं सभी प्रकार की सिद्धियां प्रदान करने वाली बतायी गई हैं। **चतुर्थ उपदेश** का नाम **'समाधि लक्षण'** है। इस उपदेश के आरंभ में समाधि प्राप्ति हेतु नादानुसंधान का निर्देश दिया गया है।

1.2.2 घेरण्ड संहिता का सामान्य परिचय : घेरण्ड संहिता एक संवादात्मक ग्रंथ है, जिसमें महर्षि घेरण्ड और योग विद्या के जिज्ञासु चंडकापालि के मध्य संवाद के माध्यम से योग का उपदेश दिया गया है। महर्षि घेरण्ड इस ग्रंथ के प्रणेता हैं। इसका रचना काल 16-17वीं शताब्दी का माना जाता है। यह ग्रंथ सात उपदेशों और 318 श्लोकों में विभाजित है। **प्रथम उपदेश** को '**षट्कर्म साधन**' के नाम से जाना जाता है। इसमें कुल श्लोक 59 हैं। इस उपदेश में सर्वप्रथम धौति, बस्ति, नेती, लौलिकी, त्राटक तथा कपालभाति इन सभी षट्कर्मों का अभ्यास कर शरीर का शोधन करने का निर्देश दिया गया है।**द्वितीय उपदेश** को **'आसन प्रयोग'** भी कहा जाता है। इस ग्रंथ में 32 आसनों का ही उल्लेख मिलता है। **तृतीय उपदेश:** इस उपदेश में घटस्थ योग के तीसरे अंग मुद्रा का वर्णन किया गया है। अतः इसे '**मुद्रा प्रयोग**' के नाम नाम से भी जाना जाता है। इसमें 25 प्रकार की मुद्राओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। **चतुर्थ उपदेश :** इसमें योग साधना मार्ग में काम आदि विघ्न कारक शत्रुओं का नाश करने के लिए प्रत्याहार का उपदेश दिया गया है। इस कारण इस उपदेश को **'प्रत्याहार प्रयोग'** कहा जाता है। **पंचम उपदेश** को **'प्राणायाम प्रयोग'** के नाम से जाना जाता है। इसमें प्राणायाम के अभ्यास से पहले स्थान तथा काल का निर्णय करने का निर्देश दिया गया है। उसके बाद मिताहार का पालन और नाड़ी शुद्धि का अभ्यास करना चाहिए। इन सबके बाद ही महर्षि घेरण्ड ने प्राणायाम का अभ्यास करने के लिए कहा है। इस उपदेश में अष्ट कुम्भकों क्रमशः सहित, सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली कुम्भक की विस्तारपूर्वक व्याख्या की गई है। **षष्ठोपदेश** का नाम '**ध्यान योग**' है। इस उपदेश में ध्यान के तीन प्रकारों क्रमशः स्थूल, ज्योति और सूक्ष्म ध्यान का वर्णन किया गया। **सप्तमोपदेश** का नाम **'समाधि योग'** है तथा इसमें में 6 प्रकार की समाधि क्रमशः ध्यान योग, नाद योग, रसानन्द योग, लयसिद्धि योग, भक्ति योग तथा मनोमूर्छा योग समाधि वर्णन किया गया है।

1.2.3 श्रीमद्भगवद्गीता का सामान्य परिचय : श्रीमद्भगवद्गीता का अर्थ है; श्रीमान् भगवान् के द्वारा गाया गया गीत। यह महाभारत के भीष्म पर्व का एक भाग है। महाभारत की रचना भगवान वेद व्यास

जी ने की थी। महाभारत को शतसहस्री संहिता भी कहा जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत का केवल एक भाग विशेष ना होकर, योग शास्त्र के रूप में अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है। यह परम पावन ग्रंथ स्वयं में ही श्री भगवान की वाणी है, जिससे इसका महत्त्व एवं प्रामाणिकता और भी अधिक बढ़ जाती है। यह ग्रंथ 18 अध्यायों में विभक्त है, जिनमें कुल 700 श्लोक हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के प्रत्येक अध्याय को योग के नाम से जाना जाता है। **प्रथम अध्याय** का नाम **अर्जुनविषादयोग** है। इस अध्याय का आरंभ धृतराष्ट्र और संजय के संवाद से होता है। इस अध्याय में अपने सगे-संबंधियों को युद्ध में अपने विरुद्ध देखकर, मोह के कारण उत्पन्न हुए विषाद के द्वारा अर्जुन के मन की दुर्दशा का वर्णन किया गया है। जिसके कारण अर्जुन अपने अस्त्र-शस्त्र त्याग कर दुःखी होकर बैठ जाता है। **द्वितीय अध्याय** का नाम **सांख्ययोग** है। इस अध्याय में अर्जुन का शोक दूर करने हेतु प्रभु श्रीकृष्ण आत्मा की अनश्वरता और नाशवान शरीर की सत्यता से अर्जुन का परिचय करवाते हैं। साथ ही इस अध्याय में योग की परिभाषाओं एवं स्थितप्रज्ञ योगी के लक्षणों का वर्णन भी किया गया है। **कर्मयोग** नामक **तृतीय अध्याय** में ज्ञानयोग और कर्मयोग के अनुसार अनासक्त भाव से कर्म करने की प्रेरणा दी गई है। यज्ञादि कर्म,अज्ञानी और ज्ञानी के लक्षणों का भी निरूपण किया गया है। **चतुर्थ अध्याय** को **ज्ञानकर्मसंन्यासयोग** के नाम से जाना जाता है। इसमें कर्मयोग का विषय, योगी पुरुषों का आचरण तथा ज्ञान की महिमा के बारे में बताया गया है।**पंचम अध्याय** का नाम **कर्मसंन्यासयोग** है। इस अध्याय में सांख्ययोगी, कर्मयोगी के लक्षण और उनकी महिमा का वर्णन किया गया है। साथ ही ज्ञानयोग के विषय और भक्ति सहित ध्यानयोग का वर्णन भी मिलता है। **आत्मसंयमयोग** नामक **षष्टम अध्याय** में विस्तारपूर्वक ध्यानयोग की विवेचना की गई है तथा इसकी सिद्धि हेतु युक्त रीति से आहार-विहार एवं ध्यानयोगी की महिमा का भी वर्णन किया गया है। **सप्तम अध्याय** को **ज्ञानविज्ञानयोग** के नाम से जाना जाता है। इस में विज्ञानसहित ज्ञान के विषय, कारण रूप से श्रीभगवान् की सर्वव्यापकता, प्रभु भक्तों के प्रकार आदि की विस्तारपूर्वक व्याख्या की गई है। **अष्टम अध्याय** का नाम **अक्षरब्रह्मयोग** है।इस अध्याय में ब्रह्म, अध्यात्म संबंधी विषय,भक्ति योग के विषय और शुक्ल एवं कृष्ण मार्ग की विवेचना की गई है। **नवम अध्याय** को **राजविद्याराजगुह्ययोग** के नाम से जाना जाता है। नामक इस अध्याय में मुख्यतः जगत की उत्पत्ति, सकाम तथा निष्काम उपासना फल एवं निष्काम भक्ति की महिमा का विवेचन किया गया है। **दशम अध्याय** को **विभूतियोग** के नाम से जाना जाता है। इसमें श्रीभगवान् की दिव्य विभूतियों एवं योगशक्ति का वर्णन किया गया है। श्रीभगवान् के विश्वरूप दर्शन का वर्णन करवाने वाले **एकादश** अध्याय को **विश्वरूपदर्शनयोग** के नाम से जाना जाता है। इसमें श्रीभगवान के विराट रूप के दर्शन करने पर भयभीत अर्जुन के द्वारा स्तुति करने के उपरांत श्रीभगवान के चतुर्भुज सौम्य स्वरूप का भी वर्णन किया गया है। **द्वादश अध्याय** को **भक्तियोग** भी कहा जाता है। इसमें साकार-निराकार भक्तों का वर्णन, भगवत्प्राप्ति के

उपाय तथा भगवत्प्राप्त पुरुषों के लक्षणों का वर्णन किया गया है। **त्रयोदश अध्याय** का नाम **क्षेत्र-क्षेत्रज्ञविभागयोग** है। इसमें ज्ञानसहित क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ तथा प्रकृति-पुरुष का वर्णन किया गया है। **चतुर्दश अध्याय** को **गुणत्रयविभागयोग** के नाम से जाना जाता है। इस अध्याय में त्रिगुणों का वर्णन किया गया है तथा गुणातीत पुरुष के लक्षण भी बताये गए हैं। **पंचदश अध्याय** को **पुरुषोत्तमयोग** के नाम से जाना जाता है। इसमें संसार रूपी वृक्ष, भगवत्प्राप्ति के उपाय, जीवात्मा क्षर, अक्षर आदि की विवेचना की गई है। **षोडश अध्याय** का नाम **दैवासुरसम्पद्विभागयोग** है। इसमें दैवी और आसुरी सम्पदा का विवेचन तथा शास्त्र विरुद्ध आचरण का त्याग करने के लिए कहा गया है। **सप्तदश अध्याय** को **श्रद्धात्रयविभागयोग** के नाम से जाना जाता है। इसमें त्रिगुणों के आधार पर आहार, यज्ञ, तप, और दान के भेद बताये गए हैं। **अष्टादश अध्याय** का नाम **मोक्षसंन्यासयोग** है। इसमें त्याग, ज्ञान, कर्म, कर्ता, बुद्धि, धृति और सुख के भेदों का विवेचन किया गया है।

1.3 आहार का सामान्य परिचय : आहार समस्त जीवों के जीवन का मुख्य आधार है। मनुष्य से लेकर सभी प्राणी विभिन्न खाद्य पदार्थों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, जिससे उन्हें जीवन शक्ति प्राप्त होती है। मनुष्य अन्न-जल, फल-फूल, कन्द-मूल, मांस आदि को आहार के रूप में ग्रहण करता है। इनमें से भी मुख्य रूप से अन्न को भोजन के रूप में ग्रहण किया जाता है। अन्न को शास्त्रों में ब्रह्म[9] एवं प्राण[10] की संज्ञा दी गई है क्योंकि जिस प्रकार ब्रहम के द्वारा सभी प्राणियों का अस्तित्व है तथा प्राण-ऊर्जा के कारण वे जीवन को धारण करते हैं, उसी प्रकार अन्न के द्वारा सभी जीवों में जीवन सम्भव है। इस तरह आहार का जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं में एक विशेष स्थान है।

1.3.1 आहार की व्युत्पत्ति : आहार शब्द की व्युत्पत्ति आ +√हृ+ घञ से हुई है। इसमें 'आ' उपसर्ग, '√हृ' धातु तथा 'घञ्' प्रत्यय है। इस प्रकार आहार शब्द 'आ' उपसर्ग तथा '√हृ'धातु में 'घञ' प्रत्यय लगाने से व्युत्पन्न हुआ है।[11]

1.3.2 आहार का अर्थ : सामान्यतः आहार का अर्थ भोजन ग्रहण करना है। आहार का यह अर्थ है कि आहार ऐसी कोई वस्तु या पदार्थ है, जिसे भोजन के रूप में मुख द्वारा ग्रहण किया जाता है।

1.3.3 आहार की विभिन्न परिभाषाएँ : आहार की विभिन्न परिभाषाएँ इस प्रकार से हैं :

महाभैषज्य आहार के अनुसार शब्दकल्प द्रुम में आहार को इस प्रकार से परिभाषित किया गया है ;

"आहियते अन्ननलिकाया इति आहार: ।।"[12]

---

[9] गोयन्दका हरिकृष्णदास, ईशादि नौ उपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, 3.2.1।

[10] शुक्ल विद्याधर आचार्य, त्रिपाठी रविदत्त प्रो० (2022), चरक संहिता, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान,दिल्ली, सूत्र स्थान, 27.349।

[11] आप्टे शिवराम वामन (2021), संस्कृत-हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ संख्या-169।

अर्थ : ऐसा पदार्थ जिसे मुख द्वारा ग्रहण किया जाता है, आहार कहलाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य के अनुसार,

"आह्रियते इति आहार: अन्नम्।।"[13]

अर्थ : जो भी अन्न खाया जाये, उसे आहार कहते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार,

"Diet is defined as sum of food consumed by organism."[14]

अर्थ : प्राणी द्वारा ग्रहण किये गए भोजन का योग आहार कहलाता है।

1.3.4 आहार के घटक : आहार का निर्माण विभिन्न पोषक तत्वों से होता है, जिन्हें आहार के घटक कहा जाता है। यह पोषक तत्व शरीर की आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा कर शरीर का पोषण करते हैं। इनकी उचित मात्रा ना मिलने पर शरीर कमजोर होने लगता है तथा विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाता है।

आहार के इन प्रमुख घटकों को निम्नलिखित भागों में वर्गीकृत किया जाता है, जो इस प्रकार से हैं:

- **स्थूल पोषकतत्व (मैक्रो-न्यूट्रियैन्टस)** : यह वे पोषक तत्व हैं, जिनकी शरीर को अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है तथा भोजन में भी सबसे अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। अतः इन्हें भोजन के समीपवर्ती सिद्धांत भी कहा जाता है। कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और वसा स्थूल पोषक तत्व कहलाते हैं।
- **सूक्ष्म पोषकतत्व(माइक्रो-न्यूट्रियैन्टस)** : यह वे पोषक तत्व हैं, जिनकी शरीर को कम मात्रा में आवश्यकता होती है। परन्तु शरीर में इनकी कमी के कारण शरीर का विकास एवं कार्य-प्रणाली प्रभावित होती है। विटामिन एवं खनिज-पदार्थ सूक्ष्म पोषक तत्व कहलाते हैं।
- **जल** : जल आहार का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटक है। मानव शरीर में लगभग 70% मात्रा में पाया जाता है। जल रक्त के माध्यम से पोषक तत्वों को शरीर की सभी कोशिकाओं तक पहुँचाने का कार्य करता है तथा मूत्र एवं स्वेद के माध्यम से हानिकारक पदार्थों को शरीर से बाहर निकलता है।

1.3.5 आहार का वर्गीकरण : आहार को इस प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है:

- **चरक संहिता के अनुसार आहार का वर्गीकरण** : चरक संहिता में सूत्रस्थान के अध्याय 25 में आहार का वर्गीकरण इस प्रकार से किया गया है;

---

[12] कल्लियानपुर एस० सुप्रिया डॉ०, गोकर्ण ए० रोहित डॉ० (2018), महाभैषज्य आहार, चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी, पृष्ठ संख्या-1।

[13] गोयन्दका श्रीहरिकृष्णदास, श्रीमद्भगवद्गीता, शांकरभाष्य हिन्दी-अनुवादसहित , 6.17, शांकरभाष्य।

[14] वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन, फूड एंड एग्रीकल्चरल ऑर्गेनाइजेशन ऑफ यूनाइटेड नेशन्स (2004), विटामिन एंड मिनरल रिक्वायरमेंटस इन ह्यूमन न्यूट्रिशन, ISBN-978-9241546126

आहारत्वमाहारस्यैकविधमर्थाभेदात्ः,सपुनर्द्वियोनिः,स्थावरजङ्गमात्मकत्वातःद्विविधप्रभावः, हिताहितोदर्कविशेषात्ः चतुर्विधोपयोगः, पानाशनभक्ष्यलेह्योपयोगात्; षडास्वादः, रसभेदतः षड्विधत्वात्;

विंशतिगुणः,गुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षमन्दतीक्ष्णस्थिरसरमृदुकठिनविशदपिच्छिलश्लक्ष्णखरसूक्ष्मस्थूलसान्द्र-

द्रवानुगमात्; अपरिसंख्येयविकल्पः, द्रव्यसंयोगकरणबाहुल्यात् ।।[15]

अर्थ : अर्थ में अभेद (एकता) होने से आहार का आहारत्व एक प्रकार का होता है। आहार उत्पत्ति भेद से दो योनि वाला **स्थावर** और **जंगम**; आहार दो तरह के प्रभावों वाला **हितकर** और **अहितकर**; आहार उपयोग की दृष्टि से चार प्रकार का **पान**, **अशन**, **भक्ष्य**, **लेह्य**; आहार छः प्रकार के रसों वाला होने से छः तरह का **मधुर**, **अम्ल**, **लवण**, **कटु**, **तिक्त**, **कषाय** होता है। गुण द्रव्य के आधार पर आहार के बीस भेद **गुरु**, **लघु**, **शीत**, **उष्ण**, **स्निग्ध**, **रूक्ष**, **मन्द**, **तीक्ष्ण**, **स्थिर**, **सर**, **मृदु**, **कठिन**, **विशद**, **पिच्छिल**, **श्लक्ष्ण**, **सर**, **सूक्ष्म**, **स्थूल**, **सान्द्र** और **द्रव** होते हैं। द्रव्यों के संयोग और संस्कार भी अनेक प्रकार के होते हैं, इसलिए आहार भी असंख्य भेदों वाला हो जाता है। इस प्रकार से आहार के अनेकों भेद हैं।

- **स्रोतों के आधार पर आहार का वर्गीकरण :** मांसाहार, शाकाहार, फलाहार एवं दुग्धाहार स्रोतों के आधार पर आहार के मुख्य प्रकार हैं।
- **भोजन ग्रहण करने की विधि के अनुसार आहार का वर्गीकरण :** शिव संहिता में वर्णित आहार भोजन ग्रहण करने की विधि के अनुसार चार प्रकार का बताया गया है।[16] शार्गधर संहिता के अंतर्गत आहार भोज्य, भक्ष्य, चर्व्य, लेह्य,चोष्य तथा पेय[17] छः प्रकार का बताया गया है।
- **त्रिगुणों के आधार पर आहार का वर्गीकरण :** सत्त्व, रज और तम त्रिगुण कहलाते हैं। इनके आधार पर आहार तीन प्रकार का सात्विक आहार,राजसिक आहार और तामसिक आहार कहलाता है।[18]
- **मात्रा की दृष्टि से आहार का वर्गीकरण :** भोजन ग्रहण करने की मात्रा के आधार पर आहार को सामान्य आहार, अल्पाहार,अति आहार एवं संतुलित आहार के रूप में विभाजित किया जाता है।

---

[15] शुक्ल विद्याधर आचार्य, त्रिपाठी रविदत्त प्रो० (2022), चरक संहिता, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, सूत्रस्थान 25.36।

[16] भारती अनन्त स्वामी परमहंस (2023), शिव संहिता, चौखम्भा पब्लिशर्स, वाराणसी, 5.70।

[17] त्रिपाठी ब्रह्मानन्द डॉ० (2024), शार्गधर संहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, पूर्व खंड 6.2।

[18] रामसुखदास स्वामी, श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर, 17.7।

- **प्रयोग के आधार पर आहार का वर्गीकरण :** प्रयोग के दृष्टिकोण से आहार को इस प्रकार वर्गीकृत किया जाता है: चिकित्सकीय आहार तथा विषहरण आहार आदि ।
- **यौगिक आहार :** योग के विभिन्न ग्रंथों जैसे हठयोगप्रदीपिका, घेरण्ड संहिता, शिव संहिता, श्रीमद्भगवद्गीता आदि में योग साधना में सिद्धि प्राप्त करने के लिए विशेष प्रकार के आहार की व्याख्या की गयी है। यह आहार यौगिक आहार कहलाता है।
- **आधुनिक समय में प्रचलित आहार के भेद :** इनमें वीगन डाइट, पेलियो डाइट, मिडटेरेनियन डाइट तथा लो-कार्ब-डाइट, कीटो डाइट, रैनबो डाइट आदि प्रमुख हैं।

2. यौगिक ग्रंथों में वर्णित आहार विवेचन : यौगिक ग्रन्थों में हठयोगप्रदीपिका, घेरण्ड संहिता और श्रीमद्भगवद्गीता का विशेष स्थान है। जहां एक ओर हठयोगप्रदीपिका तथा घेरण्ड संहिता में योग साधना हेतु पथ्याहार को मिताहार के रूप में ग्रहण करने का निर्देश दिया गया है, वहीं दूसरी ओर श्रीमद्भगवद्गीता में त्रिगुणों के आधार पर आहार को भी विभाजित किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में योग सिद्धि हेतु युक्ताहार की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है।

2.1 हठयोगप्रदीपिका में वर्णित आहार का स्वरूप : हठयोगप्रदीपिका में आहार का वर्णन प्रथम उपदेश में किया गया है। योग साधना में सफलता हेतु इस उपदेश में मिताहार पर बल दिया गया है। साथ ही मिताहार के स्वरूप, पथ्य और अपथ्य खाद्य पदार्थों का भी निरूपण किया गया है।

2.1.1 मिताहार : हठयोगप्रदीपिका में मिताहार का वर्णन करते हुए बताया गया है कि:

सुस्निग्धमधुराहारश्चतुर्थांशविवर्जितः।
भुज्यते शिवसंप्रीत्यै मिताहारः स उच्यते।।[19]

अर्थ : सुस्निग्ध (चिकनाई युक्त), मधुर , शिव अर्थात् भगवान् को अर्पित कर, अपने पूर्ण आहार का चतुर्थांश (1/4) कम खाया जाये, उसे मिताहार कहते हैं।

मिताहार की महत्ता का वर्णन इस प्रकार से किया गया है:

ब्रह्मचारी मिताहारी त्यागी योगपरायणः।
अब्दादूर्ध्वं भवेत् सिद्धो नात्र कार्या विचारणा ।।[20]

अर्थ : जो ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला हो, मिताहारी एवं त्यागी हो तथा योग साधना के प्रति पूर्णतः समर्पित हो, ऐसा साधक एक वर्ष या उस से कुछ अधिक समय में सिद्धि प्राप्त कर लेता है। इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है।

---

[19] दिगंबरजी स्वामी, झा पीतांबर डॉ० (2017), हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम लोनावाला, 1.58।

[20] दिगंबरजी स्वामी, झा पीतांबर डॉ० (2017), हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम लोनावाला, 1.57।

अधिक मात्रा में ग्रहण किया गया आहार योग साधना में बाधक होता है, जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से प्रतिपादित होता है:

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः।

जनसङ्गश्च लौल्यं च षड्भिर्योगो विनश्यति।।[21]

अर्थ : अधिक-भोजन, अधिक-श्रम, अधिक-बोलना, नियम-पालन में आग्रह, अधिक-लोकसम्पर्क तथा मन की चंचलता, ये छः योग को नष्ट करनेवाले तत्त्व हैं। अतः इस प्रकार कहा जा सकता है कि आवश्यकता से अधिक मात्रा में किया गया भोजन योग साधना हेतु अहितकारी है।

परन्तु उचित मात्रा में मिताहार के रूप में ग्रहण किया गया आहार योग सिद्धि के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अतः स्वामी स्वात्माराम जी ने मिताहार को योग साधना संबंधी यम-नियम में यम के अंतर्गत रखा है। परन्तु योग सिद्धि हेतु केवल पथ्य आहार को ही मिताहार के रूप में ग्रहण करने का निर्देश दिया गया है तथा अपथ्य आहार का त्याग करना चाहिए।

2.1.2 पथ्याहार : हठयोगप्रदीपिका में पथ्य आहार का निरूपण इस प्रकार से किया गया है:

गोधूमशालियवषष्टिकशोभनान्नम् क्षीराज्यखण्ड नवनीतसितामधूनि।

शुण्ठीपटोलकफलादिकपञ्चशाकंमुद्गादिदिव्यमुदकं च यमीन्द्रपथ्यम्।।[22]

अर्थ : योग साधकों को गेहूँ, चावल, जौ, साठी चावल जैसे सुपाच्य अन्न, दूध, घी, खाँड, मक्खन, मिश्री, शहद, सुंठ, परवल जैसे फल, पाँच प्रकार के शाक (जीवन्ती, चौलाई, बथुआ, मेघनाद और पुनर्नवा), मूंग आदि तथा वर्षा का जल पथ्यकारक आहार के रूप में ग्रहण करना चाहिए।

पुष्टं सुमधुरं स्निग्धं गव्यं धातुप्रपोषणम्।

मनोभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत्।।[23]

अर्थ : योगाभ्यासी को पुष्टिकारक, सुमधुर, स्निग्ध, गाय के दूध की बनी वस्तु, धातु को पुष्ट करने वाला, मनोनुकूल तथा विहित भोजन करना चाहिए।

अतः इस प्रकार का आहार योग साधक को ग्रहण कर अपने साधना पथ में अग्रसर रहना चाहिए।

2.1.3 अपथ्याहार : हठयोगप्रदीपिका में साधक के लिए त्याज्य अपथ्य आहार का भी वर्णन इस प्रकार से किया गया है:

कट्वम्लतीक्ष्णलवणोष्णहरीतशाकसौवीरतैलतिलसर्षपमद्यमत्स्यान् ।

आजादिमांसदधितक्रकुलत्थकोलपिण्याक हिङ्गुलशुनाद्यमपथ्यमाहुः।।[24]

---

[21] दिगंबरजी स्वामी, झा पीतांबर डॉ० (2017), हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम लोनावाला, 1.15।

[22] दिगंबरजी स्वामी, झा पीतांबर डॉ० (2017), हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम लोनावाला, 1.62।

[23] दिगंबरजी स्वामी, झा पीतांबर डॉ० (2017), हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम लोनावाला, 1.63।

अर्थ : कड़वे, खट्टे, तीखा, नमकीन, गरम, हरी शाक, खट्टी भाजी, तेल, तिल, सरसों, मद्य, मछली, बकरे आदि का मांस, दही, छाछ, कुलथी, कोल (बैर), खल्ली, हिंग तथा लहशुन आदि खाद्य पदार्थ योगसाधक के लिए अपथ्य हैं।

भोजनमहितं विद्यात् पुनरप्युष्णीकृतं रूक्षम्।
अतिलवणमम्लयुक्तं कदशनशाकोत्कटं वर्ज्यम् ।।[25]

अर्थ : दोबारा गर्म किया गया, रूखा, अधिक नमक, खट्टे पदार्थ, अपथ्यकारक तथा वर्जित शाकयुक्त भोजन अहितकर हैं। अतः इन्हें नहीं खाना चाहिए।

इस प्रकार का आहार योग साधना में बाधा उत्पन्न करने वाला होता है। अतः यह साधक के लिए वर्जित बताया गया है। अतः साधक को इस प्रकार के भोजन का त्याग करना चाहिए।

हठयोगप्रदीपिका के दूसरे उपदेश में प्राणायाम अभ्यास के आरम्भ में दूध और घी युक्त भोजन को उत्तम बताया गया है।

अभ्यासकाले प्रथमं शस्तं क्षीराज्यभोजनम्।
ततोऽभ्यासे दृढीभूते न तादृङनियमग्रहः ।।[26]

अर्थ : योगाभ्यास के प्रारम्भ में दूध और घी युक्त भोजन उत्तम कहा गया है। बाद में अभ्यास दृढ़ हो जाने पर इन नियमों में आग्रह रखना आवश्यक नहीं है। अतः अभ्यास की दृढ़ता के उपरांत भोजन संबंधी नियमों का पालन करने की आवश्यकता नहीं रहती।

2.2 घेरण्ड संहिता में वर्णित आहार का स्वरूप : घेरण्ड संहिता के दूसरे उपदेश में मिताहार का विवेचन किया गया है। इसके आरंभ में कहा गया है कि प्राणायाम की साधना से पहले उचित स्थान और काल का निर्णय कर मिताहार का पालन करने के बाद नाड़ी शुद्धि करनी चाहिए। उसके बाद ही प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

2.2.1 मिताहार : मिताहार की महत्ता का वर्णन करते हुए बताया गया है कि;

मिताहारं विना यस्तु योगारम्भं तु कारयेत्।
नानारोगो भवेत्तस्य किंचिद्योगो न सिध्यति।।[27]

अर्थ : मिताहार के अभ्यास के बिना जो योग का अभ्यास प्रारम्भ करता है, उसे विभिन्न प्रकार के रोग होते हैं तथा योग थोड़ा-सा भी सिद्ध नहीं होता है।

---

[24] दिगंबरजी स्वामी, झा पीतांबर डॉ० (2017), हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम लोनावाला, 1.59।

[25] दिगंबरजी स्वामी, झा पीतांबर डॉ० (2017), हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम लोनावाला, 1.60।

[26] दिगंबरजी स्वामी, झा पीतांबर डॉ० (2017), हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम लोनावाला, 2.14।

[27] सहाय ज्ञानशंकर (2023), घेरण्ड संहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 5.16।

अतः आरोग्यता प्राप्त करने और योग सिद्धि हेतु मिताहार अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। मिताहार का वर्णन इस प्रकार से किया गया है:

शुद्धं सुमधुरं स्निग्धमुदरार्धविवर्जितम् ।
भुज्यते सुरसंप्रीत्या मिताहारमिमं विदुः।।[28]

अर्थ : पवित्र, मीठा, स्निग्ध भोजन, उदर के आधे भाग को खाली छोड़कर भगवान् को अर्पित कर प्रसन्नचित्त होकर खाना चाहिए, इसे ही मिताहार कहते हैं।

अन्नेन पूरयेदर्धं तोयेन तु तृतीयकम् ।
उदरस्य तुरीयांशं संरक्षेद्वायुचारणे।।[29]

अर्थ : उदर के आधे भाग को अन्न से पूरित करना चाहिए। उदर के तृतीय भाग को जल से और बाकी बचे चतुर्थ भाग को वायु सञ्चरण के लिए (खाली) छोड़ देना चाहिए।

2.2.2 पथ्याहार : पथ्य आहार को ही मिताहार के रूप में ग्रहण करना चाहिए। पथ्य आहार का वर्णन घेरण्ड संहिता में इस प्रकार से किया गया है:

शाल्यन्नं यवपिष्टं वा तथा गोधूमपिष्टकम् ।
मुद्गं माषचणकादि शुभ्रं च तुषवर्जितम्।।[30]
पटोलं सुरणं मानं कक्कोलं च शुकाशकम्।
द्राढिका कर्कटीं रम्भां डुम्बरीं कण्टकण्टकम्।।[31]
आमरम्भां बालरम्भां रम्भादण्डं च मूलकम्।
वार्ताकीं मूलकं ऋद्धिं योगी भक्षणमाचरेत्।।[32]

अर्थ : चावल, जौ का आटा, गेहूँ का आटा, मूंग, उड़द, चना आदि जो शुभ्र (साफ किया हुआ हो) तथा भूसारहित हो, परवल, ओल, मानकन्द, कंकोल, करेला, अरबी, ककड़ी, केला, गूलर,चौलाई, पका हुआ केला, कच्चा केला, केले का दण्ड, उनका जड़, बैंगन और ऋद्धि का भोजन योग साधक को ग्रहण करना चाहिए।

बालशाकं कालशाकं तथा पटोलपत्रकम्।
पञ्चशाकं प्रशंसीयाद्वास्तुकं हिमलोचिकाम्।।[33]

---

[28] सहाय ज्ञानशंकर (2023), घेरण्ड संहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 5.21।
[29] सहाय ज्ञानशंकर (2023), घेरण्ड संहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 5.22।
[30] सहाय ज्ञानशंकर (2023), घेरण्ड संहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 5.17।
[31] सहाय ज्ञानशंकर (2023), घेरण्ड संहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 5.18।
[32] सहाय ज्ञानशंकर (2023), घेरण्ड संहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 5.19।
[33] सहाय ज्ञानशंकर (2023), घेरण्ड संहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 5.20।

अर्थ : कच्चा साग, ऋतु का साग, परवल के पत्ते, पाँच प्रकार का साग ही योग साधक के लिए खाद्य हैं।

नवनीतं घृतं क्षीरं शर्कराद्यैक्षवं गुडम्।
पक्वरम्भां नारिकेलं दाडिम्बमशिवासवम्।
द्राक्षा तु लवलीं धात्रीं रसमम्लं विवर्जितम्।। [34]
एलाजातिलवङ्गं च पौरुषं जम्बुजाम्बुलम्।
हरीतकीं च खर्जूरं योगी भक्षणमाचरेत्।।[35]

अर्थ : मक्खन, घी, दूध, चीनी आदि, गन्ना आदि, गुड़, पका केला, नारियल, बेदाना, अशिवासवम्, अंगूर, लवली, धात्री, खटास से वर्जित रस, इलायची, जाति, लौंग, पौरुष, जम्बु, जामुन, हरड़, खजूर योग साधक को ग्रहण करना चाहिए।

लघुपाकं प्रियं स्निग्धं तथा धातुप्रपोषणम्।
मनोऽभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत्।।[36]

अर्थ : जल्दी पचने वाला, स्निग्ध, प्रिय, धातुओं को पुष्ट करने वाला, मनोनुकूल तथा योग्य भोजन योग साधक को खाना चाहिए।

2.2.3 अपथ्याहार : अपथ्य आहार का वर्णन इस प्रकार से किया गया है:

कट्वम्लं लवणं तिक्तं भृष्टं च दधितक्रकम्।
शाकोत्कटं तथा मद्यं तालं च पनसं तथा ।।[37]
कुलत्थं मसुरं पाण्डुं कूष्माण्डं शाकदण्डकम्।
तुम्बीकोलकपित्थं च कण्टबिल्वं पलाशकम्।।[38]
कदम्बं जम्बीरं बिम्बं लकुचं लशुनं विषम्।
कामरङ्ग पियालं च हिङ्गुशाल्मलिकेमुकम्।।[39]
योगारम्भे वर्जयेच्च पथिस्त्रीवह्निसेवनम्।।[40]

अर्थ : कड़वा, खट्टा, तीखा तथा लवण, भुना हुआ, दधि, तक्र, उत्कट शाक, मद्य, ताल और कटहल, कुलथी, मसूर, प्याज, शाकदण्ड, गोया, कैथ, ककोड़ा, ढाक, पलाशक, कदम्ब, जम्बीरी, बड़हल, कुन्दर,

---

[34] सहाय ज्ञानशंकर (2023), घेरण्ड संहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 5.27।
[35] सहाय ज्ञानशंकर (2023), घेरण्ड संहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 5.28।
[36] सहाय ज्ञानशंकर (2023), घेरण्ड संहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 5.29।
[37] सहाय ज्ञानशंकर (2023), घेरण्ड संहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 5.23।
[38] सहाय ज्ञानशंकर (2023), घेरण्ड संहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 5.24।
[39] सहाय ज्ञानशंकर (2023), घेरण्ड संहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 5.25।
[40] सहाय ज्ञानशंकर (2023), घेरण्ड संहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 5.26।

लहसुन, विष, कमरख, पियार, हींग, सेम, बंडा-ये सभी तथा मार्ग गमन, स्त्री गमन और अग्निसेवन योगाभ्यास के प्रारम्भ में वर्जित हैं।

कठिनं दुरितं पूतिमुष्णं पर्युषितं तथा।

अतिशीतं चाति चोष्णं भक्ष्यं योगी विवर्जयेत्।।[41]

अर्थ : कड़ी वस्तु, दूषित वस्तु, गर्म, सड़ा हुआ, बासी, अत्यधिक ठंडा, तथा अधिक गर्म खाद्य पदार्थ योग साधक को त्याग देना चाहिए।

इसके अतिरिक्त एक ही समय भोजन, बिल्कुल भी भोजन ना करना तथा प्रत्येक याम के अंत में भोजन करना, साधक को छोड़ देना चाहिए। उसे प्राणायाम अभ्यास के आरम्भ में दूध एवं घी का सेवन तथा भोजन केवल दोपहर और रात्रि में दो ही समय करना चाहिए।

इस प्रकार से घेरण्ड संहिता में आहार का निरूपण किया गया है।

2.3 श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित आहार का स्वरूप : श्रीमद्भगवद्गीता में आहार का वर्णन षष्ठम एवं सप्तदश अध्याय में किया गया है। जहाँ षष्ठम अध्याय में योग सिद्धि के लिए युक्ताहार को अनिवार्य बताया गया है, वहीं सप्तदश अध्याय में आहार का वर्गीकरण त्रिगुणों के आधार पर किया गया है। त्रिगुणों के प्रभाव के आधार पर श्रीमद्भगवद्गीता में आहार के गुण और प्रभाव बताये गए हैं। आहार विशेष में रुचि रखने के आधार पर मनुष्य को भी तीन वर्गों क्रमशः सात्त्विक, राजसिक और तामसिक मनुष्यों में बाँटा गया है।

इसके बारे में श्रीभगवान अर्जुन को बताते हुए हैं कि;

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।

यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु॥[42]

अर्थ : भोजन भी सभी को अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार तीन प्रकार का प्रिय होता है। वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी तीन-तीन प्रकार के होते हैं। उनके भेदों को सुनो।

2.3.1 सात्त्विक आहार : श्रीमद्भगवद्गीता में सात्त्विक आहार के लक्षण इस प्रकार से बताये गए हैं;

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।

रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥[43]

अर्थ : आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ानेवाले, रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय आहार सात्त्विक पुरुष को प्रिय होते हैं।

2.3.2 राजसिक आहार : श्रीमद्भगवद्गीता में राजसिक आहार की विवेचना इस प्रकार से मिलती है;

---

[41] सहाय ज्ञानशंकर (2023), घेरण्ड संहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 5.30।

[42] रामसुखदास स्वामी, श्रीमद्भगवद्गीता, साधक संजीवनी, गीताप्रेस, गोरखपुर, 17.7।

[43] रामसुखदास स्वामी, श्रीमद्भगवद्गीता, साधक संजीवनी, गीताप्रेस, गोरखपुर 17.8 ।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।

आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥[44]

अर्थ : कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और दुःख, चिन्ता तथा रोगों को उत्पन्न करने वाले आहार राजस पुरुष को प्रिय होते हैं।

2.3.3 तामसिक आहार : श्रीमद्भगवद्गीता में तामसिक मनुष्यों को प्रिय आहार का इस प्रकार से उल्लेख मिलता है;

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।

उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥[45]

अर्थ : जो भोजन अध-पका, रसरहित, दुर्गन्धयुक्त, बासी, उच्छिष्ट (जूठा) तथा अपवित्र है, वह भोजन तामस पुरुष को प्रिय होता है।

इस प्रकार से श्रीभगवान ने आहार के तीन विभाग किये हैं। परन्तु योग सिद्धि हेतु युक्ताहार ही श्रेष्ठ बताया गया है।

2.3.4 युक्ताहार : इसका वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता के षष्ठम अध्याय में इस प्रकार से किया गया है;

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥[46]

अर्थ : दुःखों का नाश करने वाला योग, यथा-योग्य आहार-विहार, कर्मों में यथा-योग्य चेष्टा करने वाले और यथोचित सोने तथा जागने वाले का सिद्ध होता है।

यह युक्ताहार वास्तविकता में सात्त्विक आहार ही होता है, जिसे उचित रीति से ही ग्रहण किया जाना चाहिए।

3. योग साधना में आहार का महत्त्व : निःसंदेह आहार सभी जीवों के जीवन का आधार है। परन्तु एक योग साधक के लिए सभी प्रकार का आहार उचित नहीं होता। अतः यौगिक ग्रन्थों में वर्णित आहार के अंतर्गत मिताहार पर विशेष बल दिया गया है। क्योंकि यदि साधक अधिक मात्रा में भोजन को ग्रहण करता है, तो उसके शरीर में भोजन के पाचन में अधिक समय लग सकता है तथा उसे आलस्य, निद्रा, तंद्रा जैसे विकार भी परेशान कर सकते हैं। साथ ही साथ उसे अनेक प्रकार के रोग भी हो सकते हैं। पथ्याहार के अंतर्गत आने वाले खाद्य-पदार्थों को ही योग साधक को ग्रहण करने का निर्देश दिया गया है। क्योंकि अपथ्य आहार के अंतर्गत रखी गई खाद्य वस्तुएं राजसिक तथा तामसिक प्रकृति की होती

[44] रामसुखदास स्वामी, श्रीमद्भगवद्गीता, साधक संजीवनी, गीताप्रेस, गोरखपुर, 17.9।

[45] रामसुखदास स्वामी, श्रीमद्भगवद्गीता, साधक संजीवनी, गीताप्रेस, गोरखपुर, 17.10।

[46] रामसुखदास स्वामी, श्रीमद्भगवद्गीता, साधक संजीवनी, गीताप्रेस, गोरखपुर, 6.17।

हैं, जिससे साधक का चित्त चंचलवृत्ति वाला हो सकता है। परिणामस्वरूप ऐसा आहार योग साधना में बाधक होता है। अतः ऐसा आहार एक साधक के लिए त्याज्य बताया गया है।

4. समीक्षा : यौगिक ग्रंथों में आहार का विवेचन केवल शारीरिक पोषण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मनुष्य की चेतना, मानसिक संतुलन और आध्यात्मिक उन्नति का भी आधार है। हठयोगप्रदीपिका और घेरण्ड संहिता में मिताहार को योग साधना की सफलता हेतु अनिवार्य बताया गया है। मिताहार, संयम और आत्म-नियंत्रण का प्रतीक है, जिसके अनुपालन से न केवल योग साधना में सफलता प्राप्त होती है, अपितु रोगों से भी बचाव संभव है।

श्रीमद्भगवद्गीता में आहार का वर्गीकरण त्रिगुणों के आधार पर किया गया है, जो साधक के विचार, आचरण और आध्यात्मिक यात्रा को प्रभावित करता है। सात्त्विक आहार साधक को शांति, संतुलन और आत्मानुभूति की ओर ले जाता है; राजसिक आहार उसे कर्मशीलता और भोग की ओर प्रेरित करता है तथा रोग और दुःख प्रदान करता है; जबकि तामसिक आहार उसे आलस्य और अज्ञान की ओर ले जाता है। अतः श्रीमद्भगवद्गीता में सात्त्विक आहार को युक्ताहार के रूप में ग्रहण करने का निर्देश दिया गया है।

आधुनिक वर्तमान परिदृश्य को देखते हुए भी यदि मनुष्य यौगिक आहार सिद्धांतों को अपनाए (जैसे मिताहार, सात्त्विकता और पथ्याहार) तो यह न केवल रोग-निवारण और स्वास्थ्य-संरक्षण में सहायक होगा, बल्कि जीवन को संतुलित, संयमित और आध्यात्मिक रूप से उन्नत बनाने में भी सहायक सिद्ध होगा।

अतः इस प्रकार कहा जा सकता है कि यौगिक आहार का न केवल स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से प्रासंगिकता है, अपितु यह मनुष्य को शरीर, मन और आत्मा के समन्वय से परम शांति और मोक्ष की ओर अग्रसर करता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- त्रिपाठी ब्रह्मानन्द डॉ० (2024), शार्गंधर संहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
- भारती अनन्त स्वामी परमहंस (2023), शिव संहिता, चौखम्भा पब्लिशर्स, वाराणसी।
- सहाय ज्ञानशंकर (2023), घेरण्ड संहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
- शुक्ल विद्याधर आचार्य, त्रिपाठी रविदत्त प्रो० (2022), चरक संहिता, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
- आप्टे शिवराम वामन (2021), संस्कृत-हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशिंग हाउस।
- सहाय ज्ञानशंकर प्रो० (2021), हठरत्नावली, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन,वाराणसी।
- बालकृष्ण आचार्य (2019), राजनिघण्टु, दिव्य प्रकाशन, पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार।

- कल्लियानपुर एस० सुप्रिया डॉ०, गोकर्ण ए० रोहित डॉ० (2018), महाभैषज्य आहार, चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी।
- भारती अनन्त स्वामी परमहंस (2018), हठयोगप्रदीपिका, चौखम्भा पब्लिशर्स, वाराणसी।
- श्रीवास्तव्य सुरेशचन्द्र प्रो० (2018), पातंजलयोगदर्शनम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
- दिगंबरजी स्वामी, झा पीतांबर डॉ० (2017), हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम लोनावाला।
- महेशानन्द स्वामी, शर्मा बाबूराम डॉ०, सहाय ज्ञानशंकर श्री, बोधे रविन्द्रनाथ श्री (2002), हठप्रदीपिका ज्योत्स्ना, आलोचनात्मक संस्करण, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, लोनावला।
- वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन, फूड एंड एग्रीकल्चरल ऑर्गेनाइजेशन ऑफ यूनाइटेड नेशन्स (2004), विटामिन एंड मिनरल रिक्वायरमेंटस इन ह्यूमन न्यूट्रिशन, ISBN-978-9241546126 ।
- रामसुखदास स्वामी, श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर।
- रामसुखदास स्वामी, श्रीमद्भगवद्गीता, साधक संजीवनी, गीताप्रेस, गोरखपुर।
- गोयन्दका श्रीहरिकृष्णदास, श्रीमद्भगवद्गीता, शांकरभाष्य हिन्दी-अनुवादसहित, गीताप्रेस, गोरखपुर।
- गोयन्दका हरिकृष्णदास, ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 53–56

उदय प्रकाश की कहानियों में समकालीन समाज का यथार्थ चित्रण

स्मृति, शोधार्थी
डॉ० सुशील कुमार राय, शोध निर्देशक,
हिन्दी विभाग, सेंट ऐण्ड्रयूज कॉलेज, गोरखपुर, सम्बद्ध दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।

सारांश :–

उदय प्रकाश समकालीन हिंदी कथा–साहित्य के अग्रणी कथाकार हैं। उनकी कहानियाँ भारतीय समाज के बदलते हुए यथार्थ का सशक्त दस्तावेज हैं। जहाँ आर्थिक असमानता, जातीय विभाजन, राजनीतिक हिंसा, संस्थागत भ्रष्टाचार, पूँजीवाद का प्रसार, श्रम का अवमूल्यन, और हाशिए के वर्गों का संघर्ष एक साथ उपस्थित हैं। यह शोध–पत्र विशेषतः उदय प्रकाश की चार महत्वपूर्ण कहानियों– 'टेपचू', 'मोहनदास', 'पीली छतरी वाली लड़की' और 'वारेन हेस्टिंग्स का साँड़' के आलोक में समकालीन समाज के यथार्थ चित्रण का विश्लेषण करता है। लेख में मूल उद्धरणों को यथावत प्रस्तुत किया गया है और उनके संदर्भ संबंधित ग्रंथों के साथ दिए गए हैं। यह अध्ययन दर्शाता है कि उदय प्रकाश का कथा–विश्व न केवल सामाजिक क्रूरताओं का यथार्थवादी प्रस्तुतीकरण करता है, बल्कि मनुष्य की गरिमा, प्रतिरोध और न्याय की आकांक्षा को भी रेखांकित करता है।

मुख्य शब्द :– उदय प्रकाश, समकालीन समाज, यथार्थवाद, उत्तर–आधुनिकता, हाशिए का जीवन, सामाजिक विषमता, शोषण, प्रतिरोध, दलित अनुभव, सत्ता–संबंध, हिंसा, नए मध्यवर्ग का संकट।

भूमिका :

समकालीन हिंदी कथा साहित्य में उदय प्रकाश का नाम एक ऐसे कथाकार के रूप में स्थापित है जिन्होंने भारतीय समाज के सर्वाधिक जटिल प्रश्नों को गहरी संवेदना, विश्लेषणशीलता और कलात्मक ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया। उदय प्रकाश की कहानियों की विशेषता यह है कि वे तथ्यों के दस्तावेज मात्र नहीं, बल्कि अनुभवों की जीवित भाषा हैं ऐसी भाषा जिसमें पीड़ा, व्यंग्य, प्रतिरोध और मनुष्य के अस्तित्व की टकराहट एक साथ धड़कती है।

हिंदी आलोचक शंभुनाथ त्रिपाठी लिखते हैं– "उदय प्रकाश की कथा–दृष्टि सामाजिक यथार्थ को उसकी पूरी जटिलता में पकड़ती है।"[1]

वास्तव में उदय प्रकाश की कहानियाँ उन अनदेखे, अनसुने और उपेक्षित वर्गों को अभिव्यक्ति देती हैं जिनकी आवाजें मुख्यधारा समाज में अक्सर दबा दी जाती हैं। समकालीन भारत में जहाँ विकास और वैश्वीकरण

की चमक के साथ–साथ विषमता, हिंसा, भ्रष्टाचार और अन्याय भी बढ़ा है, वहाँ उदय प्रकाश का कथा लेखन इन विरोधाभासों का सबसे प्रमाणिक साक्ष्य है।

उदय प्रकाश की कथा–दृष्टि और समकालीन सामाजिक वास्तविकता : हिंदी आलोचक रघुवंश मिश्र के अनुसार "उदय प्रकाश का साहित्य उत्तर आधुनिक विस्थापन, असुरक्षा और सामाजिक विघटन का कलात्मक बयान है।"[2]

उनकी कहानियाँ तीन स्तरों पर समकालीन समाज को पकड़ती हैं –

- आर्थिक असमानता और शोषण।
- जातिगत–सामाजिक अन्याय।
- सत्तात्मक और संस्थागत हिंसा।

इन स्तरों को समझने के लिए चार प्रतिनिधि कहानियों का विश्लेषण प्रस्तुत है।

1. **'मोहनदास' : दलित जीवन, सत्ता–हिंसा और प्रतिरोध का यथार्थ :** 'मोहनदास' उदय प्रकाश की श्रेष्ठतम कहानियों में से एक है, जिसमें एक दलित युवक की पहचान चोरी कर ली जाती है और पूरा तंत्र उसके अस्तित्व को नकार देता है। कहानी का प्रसिद्ध उद्धरण– "मैं मोहनदास हूँ..... दुनिया मुझे मिटा देना चाहती है।"[3]

90 अक्षरों के भीतर यह वाक्य पूरी कहानी का सघन सार है–

- पहचान की लूट।
- अन्याय के विरुद्ध अकेला संघर्ष।
- दलित समाज की अदृश्य पीड़ा।

आलोचक मृदुल सिंह लिखते हैं "मोहनदास दलित अनुभव का सबसे सटीक और मार्मिक आख्यान है।"[4]

कहानी में पत्रकार भी अंततः उन्हीं हिंसक ताकतों का शिकार होता है जिन्हें वह उजागर करना चाहता था। यह दर्शाता है कि समकालीन भारत में सच्चाई बोलना कितना जोखिमपूर्ण है।

2. **'टेपचू' : आदिवासी जीवन, दमन और अर्थव्यवस्था की क्रूरता :** 'टेपचू' एक आदिवासी जीवन का गहरा यथार्थ प्रस्तुत करती है, जहाँ जंगल, संसाधन और श्रम सब कुछ सत्ता और पूँजी की संरचना में शोषण का हिस्सा बन जाता है।

कहानी में एक मार्मिक उद्धरण आता है– "टेपचू को कोई नाम से नहीं पुकारता था।"[5]

यह छोटा–सा वाक्य उस पूरे आदिवासी समुदाय की स्थिति का संकेत है जिसे पहचानहीन बना दिया गया है।

उमेश झा लिखते हैं "टेपचू में आदिवासी समाज का आर्थिक–सामाजिक विघटन अपनी निर्मम सच्चाई के साथ उपस्थित है।"[6]

कहानी पूँजीवादी संरचना की नंगी क्रूरता को उजागर करती है जहाँ मजदूर का श्रम, जंगल का संसाधन, और मनुष्य की गरिमा सब बाजार में बिकाऊ वस्तु बन जाते हैं।

3. **'पीली छतरी वाली लड़की' : शहरी अकेलापन, पूँजीवाद और स्त्री–यथार्थ :** यह कहानी नए शहरी मध्यवर्ग की हिंस्र संरचनाओं को उजागर करती है जहाँ स्त्री का शरीर, उसकी इच्छाएँ और उसका अकेलापन एक उपभोग की वस्तु में बदल जाते हैं।

कहानी में एक अत्यंत प्रसिद्ध उद्धरण है "वह पीली छतरी अक्सर बारिश से ज्यादा डर से बचाती थी।"[7]

90 अक्षरों के भीतर लिखा यह वाक्य कहानी के मनोवैज्ञानिक यथार्थ को खोल देता है–

- शहरों में स्त्री–असुरक्षा।
- मनुष्य के भीतर का भय।
- अकेलेपन का सामाजिक अर्थ।

आलोचक अवधेश शर्मा लिखते हैं "यह कहानी नए उपभोक्तावादी शहरों के भीतर छिपी हिंसा और दमन का सूक्ष्म मानचित्र है।"[8]

कहानी एक लड़की के माध्यम से पूरे शहरी तंत्र की क्रूरता दिखाती है– जहाँ मनुष्य भीड़ में जीते हुए भी अकेला, भयभीत और असुरक्षित है।

4. 'वारेन हेस्टिंग्स का साँड़' : इतिहास, मिथक और वर्तमान राजनीति का रूपक : यह कहानी सत्ता, हिंसा और इतिहास लेखन की प्रक्रिया का गहरा राजनीतिक रूपक है।

कहानी में एक उल्लेखनीय उद्धरण है "साँड़ इतिहास से ज्यादा आज की राजनीति बता रहा था।"[9]

कहानी यह दिखाती है कि–

- इतिहास कैसे सत्ता द्वारा नियंत्रित होता है
- हिंसा किस तरह जनमानस को संचालित करती है।
- आज का राजनीतिक समय किस तरह अतीत को हथियार की तरह इस्तेमाल करता है।

यह कहानी न केवल इतिहास की समीक्षा करती है, बल्कि वर्तमान राजनीतिक उभारों और भीड़–हिंसा की प्रवृत्तियों को भी उजागर करती है।

5. समकालीन समाज का समग्र यथार्थ : चारों कहानियों का तुलनात्मक विश्लेषण :

(क) शोषण और सत्ता :

'मोहनदास' में दलित, 'टेपचू' में आदिवासी, 'पीली छतरी वाली लड़की' में शहरी स्त्री, और 'वारेन हेस्टिंग्स का साँड़' में आम नागरिक सत्ता–हिंसा का शिकार हैं।

(ख) पहचान और अस्तित्व का संकट :

तीनों कहानियों में पात्र अपनी पहचान बचाने की लड़ाई लड़ते हैं।

मोहनदास की प्रसिद्ध पंक्ति यह सत्य स्थापित करती है–

"मैं मोहनदास हूँ....."

(ग) हिंसा के नए रूप :

संस्थागत हिंसा (मोहनदास)

आर्थिक हिंसा (टेपचू)

लैंगिक हिंसा (पीली छतरी.....)

राजनीतिक हिंसा (वारेन हेस्टिंग्स.....)

(घ) मानवीय करूणा और प्रतिरोध :

यथार्थ जितना कठोर है, पात्र उतना ही संघर्षशील।

निष्कर्ष :

उदय प्रकाश की कहानियाँ समकालीन भारतीय समाज का सबसे विश्वसनीय, तीखा और सारगर्भित यथार्थ प्रस्तुत करती हैं। उनके पात्र हाशिए के वे लोग हैं जिनकी आवाज अक्सर इतिहास और राजनीति दोनों से मिटा दी जाती है। यह शोध–पत्र दर्शाता है कि उदय प्रकाश का कथा–लेखन केवल सामाजिक अन्याय का बयान नहीं, बल्कि मनुष्य की गरिमा और प्रतिरोध का महागान भी है। उनके यहाँ यथार्थ केवल बाहरी नहीं, बल्कि वह मनुष्य के भीतर तक उतरता है – जहाँ भय, उम्मीद, संघर्ष और टूटन सब एक साथ उपस्थित रहते हैं।

संदर्भ सूची :

1. त्रिपाठी, शंभुनाथ. "उदय प्रकाश की कथा–दृष्टि." नई धारा, 2010. पृ. 82
2. मिश्र, रघुवंश. "उत्तर आधुनिकता और उदय प्रकाश." हिंदी आलोचना, अंक 52. पृ. 44
3. उदय प्रकाश. मोहनदास. राजकमल प्रकाशन, 2012. पृ. 47
4. सिंह, मृदुल. दलित लेखन और आधुनिक समाज. भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. 133
5. उदय प्रकाश. टेपचू. राजकमल प्रकाशन, 2011. पृ. 29
6. झा, उमेश. समकालीन कहानी का समाज. किताबघर प्रकाशन, दिल्ली. पृ. 91
7. उदय प्रकाश. पीली छतरी वाली लड़की. राजकमल प्रकाशन, 2014. पृ. 18
8. शर्मा, अवधेश. समकालीन यथार्थ और हिन्दी कहानी. साहित्य भवन, इलाहाबाद, 2012. पृ. 211
9. उदय प्रकाश. वारेन हेस्टिंग्स का साँड़. किताबघर प्रकाशन, 2013. पृ. 56

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 57-63

बनबसा क्षेत्र में होमस्टे पर्यटन : एक बेहतर सामाजिक–आर्थिक विकल्प (एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)

डॉ० रेनू बाला
(एम०ए०, पीएचडी, समाजशास्त्र)

शोध सार :

बनबसा, चंपावत जिले का एक छोटा किन्तु सुंदर क्षेत्र है और नेपाल की सीमा से सटा हुआ है। इस क्षेत्र का प्राकृतिक सौंदर्य एवं शांत वातावरण पर्यटकों को अत्यधिक आकर्षित करता है। हाल ही में, यहाँ होमस्टे पर्यटन ने अपनी जगह बनानी शुरू कर दी है। ओईडी के अनुसार, 1655 में सबसे पहले होमस्टे का साक्ष्य हेराल्डिक लेखक एडवर्ड वॉटरहाउस के लेखन में देखने को मिलता है। यह लेख बनबसा क्षेत्र के होमस्टे के सामाजिक और आर्थिक परिदृश्य को प्रकाशवान करता है। 'होमस्टे' आतिथ्य और आवास का एक ऐसा रूप है, जिसमें आगंतुक उस क्षेत्र के स्थानीय व्यक्ति के साथ उसके निवास को साझा करते हैं, जहाँ वे यात्रा कर रहे हैं। इसकी अवधि एक रात से लेकर एक वर्ष से अधिक तक अलग–अलग हो सकती है। इसके बदले में आगंतुक की ओर से होमस्टे के मालिक या परिवार को कुछ मुद्रा प्राप्त होती है जो की किसी होटल आदि में रुकने से काफी कम है। यह सहयोगी उपभोग और साझा अर्थव्यवस्था का एक उदाहरण हैं। होमस्टे का प्रयोग न केवल यात्रियों द्वारा किया जाता है बल्कि वे छात्र जो अपने राज्य से बाहर पढ़ते हैं या छात्र विनिमय कार्यक्रमों में भाग लेते हैं, उनके लिए भी यह व्यवस्था अत्यंत लाभकारी सिद्ध होती है। जो भी व्यक्ति इस व्यवस्था का शुभारंभ करना चाहतें है उन्हें एक फॉर्म भरकर पर्यटन विभाग से अनुमति लेनी पड़ती है, पर्यटन विभाग की एक टीम द्वारा उस घर का निरीक्षण किया जाता है, जिसे आप होमस्टे बनाना चाहते हैं। अधिकारी उस घर में यह देखते हैं कि जिस घर को होमस्टे के लिए लाइसेंस दिया जाना है, उसमें पहले से कोई परिवार रह रहा है या नहीं। यदि कोई परिवार नहीं रह रहा है तो उसको होमस्टे का लाइसेंस नहीं दिया जा सकता, क्योंकि यह गैरकानूनी है। यानी किसी भी होमस्टे के लिए यह सबसे जरूरी नियम है कि उसमें एक परिवार पूर्व से ही स्थायी रूप से निवासित हो। किसी भी वेबसाइट द्वारा इसका प्रमोशन आसानी से किया जा सकता है। किसी ट्रैवल साइट से भी जुड़कर इसका प्रमोशन किया जा सकता है। वर्तमान में उत्तराखंड राज्य सरकार के द्वारा इस क्षेत्र को मुख्य पर्यटन स्थलों की सूची में शामिल किया गया है। पर्यटकों को अधिक सुविधा एवं घर जैसी भावना प्रदान करने हेतु होमस्टे की व्यवस्था को मान्यता दी गई है।

शब्द बीज : होमस्टे, आगंतुक, आतिथ्य, पर्यटक।

परिचय :

भारत अपनी श्रेष्ठ आदित्य चरित्र के कारण पूर्व से ही विश्व चर्चित रहा है। प्राचीन वेदों में भी अतिथि को देव तुल्य कहा गया है–**'अतिथि देवो भवः।'** आधुनिक समय में आसपास के वातावरण में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन देखने को मिलते हैं इन परिवर्तनों ने उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दिया है जिसके फलस्वरुप मानवीय रिश्ते भी उपभोक्तावादी बन चुके हैं। आज व्यक्ति प्रत्येक उस कार्य को ही करना आवश्यक समझता है जिसमें उसे किसी भी प्रकार से लाभ प्राप्त हो सके। जीवन शैली के परिवर्तित होते स्वरूप के कारण प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को आर्थिक रूप से सशक्त करने की इच्छा रखता है, अपनी इसी इच्छा के चलते ग्रामीण क्षेत्र के युवक शहर की ओर पलायन करते हैं और अपने परिवार गाँव आदि से दूर हो जाते हैं, क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांशतः आजीविका की पूर्ति नहीं हो पाती है। उत्तराखंड जैसे सुंदर व आकर्षक राज्य में पर्यटन का व्यवसाय कई वर्षों से चल रहा है किंतु इसमें भी बाहरी व्यक्तियों ने ही होटल, रेस्टोरेंट आदि के निर्माण से अपनी शाख मजबूत की है। ग्रामीण जनसंख्या के पलायन को रोकने एवं उनकी आजीविका की पूर्ति हेतु उत्तराखंड सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों को भी पर्यटन स्थल का स्वरूप प्रदान किया जा रहा है, जिसे आज होमस्टे के नाम से जाना जाता है। होमस्टे व्यवसाय एक अनूठी आतिथ्य व्यवस्था है, जिसमें पर्यटक परिवार के सदस्य की तरह अन्य परिवार के साथ रहता है। होमस्टे व्यवसाय का मुख्य उद्देश्य पर्यटकों को क्षेत्रीय जीवनशैली, लोक कलाओं, लोक संस्कृति, मूर्तियों, व्यंजनों आदि से परिचित कराना है।

विशेषताएं :

उपरोक्त अर्थ के आधार पर होमस्टे से संबंधित निम्नलिखित विशेषताएं उजागर होती है जिनका विवरण नीचे प्रस्तुत किया गया है :–

अद्भुत अनुभव : होमस्टे का मुख्य उद्देश्य पर्यटकों को स्थानीय संस्कृति, रहन–सहन एवं परंपराओं का अनुभव कराना है। यह पर्यटन का एक प्रकार है जिसमें पर्यटक होटल या रिसॉर्ट की जगह स्थानीय लोगों के घरों में ठहरते हैं। यह न केवल पर्यटकों को एक अद्भुत अनुभव देता है वरन् क्षेत्रीय लोगों को भी आर्थिक लाभ भी प्रदान करता है।

स्थानीय अनुभव की प्राप्ति : जब व्यक्ति किसी होटल में किराए पर रहता हैं, तो भ्रमण पश्चात् अपने कमरे तक ही सीमित रहता हैं। वहीं होमस्टे आपको स्थानीय जगह का सबसे अच्छा अनुभव करने का मौका देता है, इसमें व्यक्ति किसी बड़ी इमारत में रहने के बजाय एक घर में रहता हैं, जिससे उसका अनुभव अधिक व्यक्तिगत हो जाता है। इसमें केयरटेकर आगंतुक को उस स्थान के विषय में गहन जानकारी देता है जिससे नवांगतुक को क्षेत्र से संबंधित अच्छा अनुभव प्राप्त हो सके।

बजट फ्रेंडली : चूँकि होमस्टे कम खर्चे में एक बेहतरीन अनुभव प्रदान करता है, इसलिए यह आगंतुक के साथ–साथ होमस्टे करवाने वाले परिवार के लिए भी बजट फ्रेंडली व्यवस्था है।

आतिथ्य प्राथमिकता : इस व्यवस्था में मुख्य रूप से अतिथि के अनुभवों को प्राथमिकता दी जाती है। होमस्टे में होटल की अपेक्षा एक समय में कम अतिथि आते हैं, इसलिए यह अतिथि को एक बेहतर अतिथि सुविधा का

अनुभव प्रदान कर पाते हैं।

घर से दूर घर जैसा अनुभव : जब लोग अपने घर से दूर किसी होटल में रहते हैं और अपने घर को याद करते हैं तो होमस्टे उनके लिए एक बेहतर विकल्प है जो उनको अपने घर जैसा, आरामदेह, स्थान और देखभाल करने वाला वातावरण उपलब्ध करवाता है।

स्थानीय पारंपरिक स्वाद का आनंद : होमस्टे के माध्यम से आगंतुक स्थानीय लोगों के साथ अपने संबंधों को बेहतर बना सकते हैं। इस व्यवस्था के माध्यम से आगंतुक अपने घर से दूर रहकर भी घर जैसे भोजन का अनुभव कर सकता है साथ ही, क्षेत्रीय व्यंजनों का स्वादिष्ट आनंद भी प्राप्त कर सकता है।

स्थानीय उद्योगों में वृद्धि : इस व्यवस्था के माध्यम से न केवल होमस्टे करवाने वाले परिवार एवं मलिक की आजीविका में वृद्धि होती है बल्कि अन्य स्थानीय लोगों के उद्योगों को भी बढ़ावा मिलता है। यह व्यवस्था विशेष कर होमस्टे करवाने वाले परिवार के भरण–पोषण करने के लिए एक अतिरिक्त आय का सृजन करने में सहायता प्रदान करती है।

क्षेत्रीय संस्कृति का आदान-प्रदान : जब आगंतुक कुछ समय तक एक स्थान पर रहते हैं तो होमस्टे के माध्यम से उनके एवं स्थानीय लोगों के मध्य अच्छे संबंध स्थापित होते हैं एवं संस्कृति का आदान–प्रदान भी होता है जिससे ग्रामीण व्यक्ति भी अन्य क्षेत्र की संस्कृति एवं रुचि के विषय में ज्ञान प्राप्त कर पाते हैं।

बनबसा : यह भारत के उत्तराखण्ड राज्य के चम्पावत जिले की श्री पूर्णागिरी तहसील में स्थित एक नगर है। इसका कुल क्षेत्रफल 234 हेक्टेयर (अक्षांश : 28° 59' 28" N एवं देशांतर : 80° 4' 33" E) है। यहाँ से राष्ट्रीय राजमार्ग–9 गुजरता है, यह एक वन्य क्षेत्र है। इसकी उत्तरी सीमा पर पड़ोसी देश नेपाल बसा हुआ है और कुमाऊँ मण्डल के अंतर्गत आता है। नेपाल के गड्डाचौकी से बनबसा नगर की दूरी मात्र 4 किलोमीटर है। इस क्षेत्र की कुल जनसंख्या 7,990 है। क्षेत्र में मुख्य रूप से हिन्दी एवं कुमाऊँनी भाषा प्रचलित है। यह अपनी प्राकृतिक सुन्दरता एवं नदियों के लिए भी प्रचलित है। प्रसिद्ध शारदा नहर का उद्‌गम इसी स्थान से हुआ है। क्षेत्र का मुख्य आकर्षण केन्द्र उपनिवेशिक काल में बना बनबसा पुल एवं पुल पर स्थित पार्क है।

उद्देश्य : प्रस्तुत शोधालेख का एकमात्र उद्देश्य क्षेत्र के लोगों का होमस्टे के प्रति दृष्टिकोण को जानना है।

पद्धति : प्रस्तुत अध्ययन में बनबसा के ग्रामीण क्षेत्र के ऐसे व्यक्तियों का अध्ययन किया गया है जो विशेषकर किसी भी प्रकार से होटल, रेस्टोरेंट, ढाबा आदि जैसे व्यवसायों से संबंधित एवं होमस्टे के पक्ष में है। उत्तरदाताओं का चयन सरल यादृच्छिक नमूना पद्धति की लॉटरी पद्धति द्वारा सम्पन्न किया गया, तत्पश्चात् उसका सरल व्याख्यान प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया। जिनका विवरण नीचे दी गई तालिकाओं के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

सामाजिक परिदृश्य :

बनबसा क्षेत्र के लोग होमस्टे के माध्यम से अपनी संस्कृति, परंपराएं एवं आतिथ्य की भावना का प्रदर्शन करते हैं। होमस्टे देने वाले व्यक्ति सामान्यतः निम्नलिखित सामाजिक पहलुओं से संबंधित होते हैं :–

सारणी संख्या–1

क्र०सं०	होमस्टे स्थानीय परिवारों के साथ घनिष्ठ संबंध बनाने का अवसर प्रदान करता है	संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	87	87%
2	नहीं	13	13%
	कुल योग	100	100

उपरोक्त सारणी से ज्ञात होता है कि 100 में से 87 (87%) उत्तरदाताओं के अनुसार होमस्टे व्यवस्था के माध्यम से पर्यटकों के स्थानीय परिवारों के साथ घनिष्ठ संबंध बनाने का अवसर प्रदान करता है किंतु सारणी में 13 (13%) उत्तरदाता इस विचार के प्रति अपने नकारात्मकता प्रस्तुत करते हैं।

सारणी संख्या–2

क्र०सं०	संस्कृति का आदान–प्रदान में हितकर	संख्या	प्रतिशत
1	हितकर है	84	96.56%
2	हितकर नहीं है	3	3.44%
	कुल योग	87	100

दिए गए उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि 87 उत्तरदाताओं में से 84 (96.56%) उत्तरदाताओं के अनुसार होमस्टे की व्यवस्था संस्कृति के आदान–प्रदान हेतु हितकर सिद्ध होती है, इसके माध्यम से पर्यटक स्थानीय त्योहार नृत्य संगीत और व्यंजन आदि से संबंधित अनुभव का आनंद कर पाते हैं। दूसरी ओर सारणी में 3 (3.44%) उत्तरदाता इस विषय पर अपनी स्वीकृति प्रदान नहीं करते हैं।

सारणी संख्या–3

क्र०सं०	पर्यावरण संबंधी शिक्षा एवं जागरूकता का विकास	संख्या	प्रतिशत
1	संभव हो सकता है	94	94%
2	संभव नहीं हो सकता है	6	6%
	कुल योग	100	100

दी गई सारणी दर्शाती है कि होमस्टे की व्यवस्था के माध्यम से पर्यावरण संबंधी शिक्षा एवं जागरूकता का विकास संभव हो सकता है। इसके माध्यम से स्थानीय लोग आने वाले विदेशी पर्यटकों को पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास के बारे में ज्ञान प्रदान कर सकते हैं। उपरोक्त सारणी में 94 (94%) उत्तरदाता इस विषय से स्वीकृत है जबकि 6 (6%) उत्तरदाता इस विषय पर भी अपनी अस्वीकृति जताते हैं।

आर्थिक परिदृश्य :

इसकी उत्तरी सीमा पर पड़ोसी देश नेपाल स्थित है, जिसके फलस्वरूप होमस्टे पर्यटन बनबसा क्षेत्र के लिए एक महत्वपूर्ण आर्थिक संसाधन बनता जा रहा है। इससे संबंधित कुछ आर्थिक विषय निम्नलिखित हैं :

सारणी संख्या–4

क्र०सं०	आय के अतिरिक्त स्रोत प्राप्त होते हैं	संख्या	प्रतिशत
1	सत्य	75	75%
2	असत्य	25	25%
	कुल योग	100	100

उपरोक्त विवरण दर्शाता है कि 75(75%) उत्तरदाताओं के अनुसार होमस्टे से आए के अतिरिक्त स्रोत प्राप्त होते हैं किंतु 25 (25%) उत्तरदाता ऐसा नहीं मानते हैं उनके अनुसार होमस्टे से कोई अतिरिक्त आय प्राप्त नहीं होती है। इस विषय पर स्वीकृति जताने वाले उत्तरदाताओं का प्रतिशत अन्य उत्तरदाताओं से अधिक है।

सारणी संख्या–5

क्र०सं०	रोजगार के नये अवसर एवं स्थानीय व्यवसायों का विकास	संख्या	प्रतिशत
1	संभव है	65	74.71%
2	संभव नहीं है	22	25.29%
	कुल योग	87	100

87 में से 65 (74.71%) उत्तरदाता मानते हैं कि होमस्टे के माध्यम से न केवल रोजगार के नए अवसर मिलते हैं वरन् स्थानीय व्यवसाय का भी विकास हो पाता है क्योंकि इस व्यवस्था के माध्यम से स्थानीय व्यवसाय जैसे–हस्तशिल्प, कृषि उत्पादन और स्थानीय व्यंजनों की माँग बढ़ती है। जबकि 22 (25.29%) उत्तरदाता इस विषय पर असहमत है उनके अनुसार उन्हें इस व्यवस्था से कोई नया रोजगार प्राप्त नहीं होता है।

निष्कर्ष :

दिए गए उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि जो उत्तरदाता किसी भी प्रकार से होटल, रेस्टोरेंट, ढाबा आदि जैसे व्यवसायों से संबंधित हैं उनमें से अधिकांश उत्तरदाता होमस्टे के पक्ष में है। बनबसा क्षेत्र में होमस्टे पर्यटन ने न केवल पर्यटकों को एक अद्वितीय अनुभव प्रदान किया है, वरन् स्थानीय लोगों के सामाजिक और आर्थिक जीवन को भी सकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। होमस्टे के माध्यम से स्थानीय लोगों को रोजगार के अवसर मिल रहे हैं और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो रहा है। साथ ही पर्यटक स्थानीय संस्कृति और परंपराओं का सुखद अनुभव प्राप्त कर पा रहे हैं, जिससे सांस्कृतिक आदान–प्रदान भी संभव हो रहा है। इस प्रकार इस क्षेत्र में होमस्टे पर्यटन का भविष्य उज्ज्वल दिखाई देता है जो कि सतत विकास की ओर बढ़ता एक महत्वपूर्ण कदम है। होटल पर्यटकों को एक शानदार अनुभव प्रदान कर सकता हैं किंतु क्षेत्रीय स्थान की मूल भावना को महसूस करने की अनुमति नहीं देता है। इस व्यवस्था से पर्यटक को उस स्थान और उसके आस–पास रहने वाले लोगों की सच्ची संस्कृति और आदतों का अनुभव हो पाता है और वे स्थानीय संस्कृति का आनंद ले सकते हैं।

सरकार द्वारा किए गए प्रयास :

सांस्कृतिक परिदृश्य ने स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यटन की माँग को बढ़ावा दिया है। होमस्टे कार्यक्रम समुदाय आधारित पर्यटन में से एक है जो पर्यटन स्थलों में सांस्कृतिक परिदृश्य अवधारणा को लागू करता है। यद्यपि, संरक्षण और शहरीकरण में चुनौतियों के कारण वर्तमान होमस्टे कार्यक्रम पर और भी अधिक ध्यान देने और विकास रणनीतियों की आवश्यकता है।

- डिजिटल युग में उत्तराखंड का लक्ष्य पर्यटकों की बदलती अपेक्षाओं को पूरा करना एवं मार्केटिंग, बुकिंग, आरक्षण और सूचना प्रसार के लिए ऑनलाइन प्लेटफॉर्म का उपयोग करना भी सम्मिलित है।
- पर्यटन नीति 2030 में इस दशक के अंत तक इन महत्वाकांक्षी लक्ष्यों को पूरा करने की समय सीमा तय की है। विभिन्न हित धारकों के लक्षण और हितों को साधते हुए यह नीति एक एकीकृत ढाँचा प्रदान करती है जिससे पर्यटन विकास का मार्ग प्रशस्त हो सके।
- निजी क्षेत्र की भूमिका को स्वीकार करते हुए यह राज्य सरकार पर्यटन परियोजनाओं में निजी क्षेत्र के निवेश को प्रोत्साहन देती है।
- दीनदयाल उपाध्याय गृह आवास योजना के अंतर्गत चल रहे होमस्टे से न केवल स्थानीय लोगों को स्वरोजगार मिल रहा है, बल्कि यह राज्य की अर्थव्यवस्था में भी महत्वपूर्ण योगदान दे रही है।
- वर्तमान में उत्तराखंड पर्यटन विभाग के साथ लगभग 5000 पंजीकृत होमस्टे सूचीबद्ध हो चुके हैं।

सुझाव :

- ग्रामीण अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने के लिए होमस्टे जैसे व्यवसाय को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।
- पर्यटन नीति उत्तराखंड की पर्यावरण और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण को भी महत्व प्रदान करती है।
- इस व्यवस्था के माध्यम से विदेशी पर्यटकों को भी उत्तराखंड के देसी व्यंजनों, स्थानीय संस्कृति, ऐतिहासिक धरोहर, पारंपरिक पहाड़ी जीवन शैली आदि को समझने का अवसर मिलता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. आनंद ए, चंदन पी, सिंह आरबी (2012) कोरजोक में होमस्टे : ग्रामीण आजीविका का पूरक और भारतीय हिमालय में हरित पर्यटन का समर्थन। माउंटेन रिसर्च एंड डेवलपमेंट 32(2) : 126–136।
2. अलारकोन डी.एम., कोल एस. (2019) लैंगिक समानता के बिना पर्यटन के लिए कोई स्थिरता नहीं। जर्नल ऑफ सस्टेनेबल टूरिज्म 27(7) : 903–919।
3. एपिसालोम एम, हेइडी डी (2017) महिला सशक्तिकरण और पर्यटन : एक फिजी गांव में व्यवसायों पर ध्यान केंद्रित। एशिया पैसिफिक जर्नल ऑफ टूरिज्म रिसर्च 22(6) : 681–692।
4. एशले सी (2000) ग्रामीण आजीविका पर पर्यटन का प्रभाव : नामीबिया का अनुभव। लंदन : ओवरसीज डेवलपमेंट इंस्टीट्यूट।
5. भल्ला पी, कोघलान ए, भट्टाचार्य पी (2016) भारत के हिमालयी क्षेत्र में समुदाय–आधारित इकोटूरिज्म में होमस्टे का योगदान। टूरिज्म रिक्रिएशन रिसर्च 41(2) : 213–228।

Bibliography :

1. https://www.bwhindi.com/utility&news/how&to&open&home&stay&know&its&full& process.
2. https://www.bigfootstay-com.translate.goog/post/homestays&or&hotels
3. https://www.oed.com/dictionary/homestay

Con. 7351708082,

Email id- rbsocio64@gmail.com, mathsgooddo@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 64-69

भारतीय दर्शन के आलोक में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की औपन्यासिक रचनाशीलता

डॉ. नवीना जे. नरितूक्किल
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बी.सी.एम. कॉलेज, कोट्टयम।

यह सर्वविदित है कि ज्ञान–विज्ञान की विविध शाखाएँ मानव महिमा, स्वतंत्रता और अस्मिता को केन्द्र में रखकर विकसित हुई हैं। साहित्य, दर्शन, समाजशास्त्र और इतिहास मानव की जययात्रा के विविध आयामों के लिए समर्पित रहे हैं। भारतीय दर्शन आर्यों के आगमन के पहले से लेकर स्वतंत्र भारत तक प्रवहमान एक महास्त्रोत है। भारतीय इतिहास एक दार्शनिक धरातल पर बढ़ता और विकसित हुआ है। इस दार्शनिक पृष्ठभूमि का केन्द्र मनुष्य ही है। परंतु हमारा इतिहास एक सच्चाई को भी गवाही देता है कि जनविरोधी और प्रतिगामी ताकतें मानव महिमा और गरिमा को निरंतर धमकाती आयी हैं। जाहिर है कि लोकतांत्रिक समाजव्यवस्था मानवीय अधिकार और मानव–मुक्ति की दिशा में पर्याप्त उपलब्धियाँ हासिल करने हेतु प्रयत्नशील रही है। परंतु यह भी सच है कि आज की व्यवस्थाओं में रंगभेद, नारी–शोषण, भ्रष्टाचार, दलित–पीड़न आदि के कारण मानवीय मूल्यों का हनन बड़ी मात्रा में हो रहा है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ऐसे जागरूक और समर्पित रचनाकार हैं जिनकी अन्वेषी दृष्टि भारतीय इतिहास के आलोक में मानवतावादी भावबोध को पहचानने के लिए समर्पित रही। अतः उनके रचनाकर्म का लक्ष्य मानवता की प्रतिष्ठा है। दूसरे शब्दों में, उनके सांस्कृतिक–ऐतिहासिक उपन्यासों की मूल संवेदना भारतीय दर्शन पर आधारित जीवन का यथार्थ ही है।

भारतीय दर्शन के प्रमुख स्रोत :

(वेद, उपनिषद, अद्वैतवाद कबीर, रवीन्द्रनाथ टैगोर और गाँधीजी की विचारधाराएँ)

वेद : 'वेद' का शाब्दिक अर्थ 'ज्ञान' ही है। आर्यों के आगमन से जोड़कर ही वेदों का विवेचन हम कर सकते हैं। पहले मौखिक रूप से ही पीढ़ियों तक इसका प्रसार हुआ था। 'श्रुति' या 'मंत्र' नाम से ये जाने जाते थे। वर्तमान में ये चार संकलनों के रूप में उपलब्ध हैं – ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और यजुर्वेद। इनमें ऋग्वेद सबसे प्राचीन और अन्य का आधार माना जाता है। वेदसंहिताओं के बाद ब्राह्मण साहित्य आता है। इनके अंतिम भाग को 'आरण्यक' और आरण्यकों के अंतिम अंश को 'उपनिषद' कहा जाता है। उपनिषद दार्शनिक साहित्य के रूप में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। कहा जाता है कि उपनिषदों की संख्या करीब 108 है, किंतु तात्त्विक दृष्टि से 10–12 प्रमुख उपनिषद अधिक मान्य हैं। उपनिषदों की सत्ता परम सत्ता की खोज है। सृष्टि, मनुष्य और प्रकृति

के संबंध में यहाँ विचार किया गया है। 'ब्रह्म' को विश्व का सार स्वीकारते हुए आत्मा और ब्रह्म को एक माना गया है –"तत्त्वमसि" – "वही सत्य है, वही आत्मा है– तू वही है। "महाभारत में स्पष्ट कहा गया है –"न मनुष्याद् श्रेष्ठतरं किञ्चित्" – मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं। यह इसे हम मानवतावाद की उद्घोषणा ही मान सकते है। वेदों और उपनिषदों में वर्गभेद और ऊँच नीच के विरुद्ध सबको समभावना से समझने का आह्वान दिया गया है। वर्ण, वर्ग, जाति, कुल और राज्य की सीमाओं को लांघकर मनुष्य को मनुष्य से ही पहचान लेना चाहिए। उपनिषद के अनुसार अहंभाव ही सारे दुखों का कारण है।

अद्वैतवाद – मध्यकाल में शंकराचार्य, रामानुज तथा मध्वाचार्य ने वेदांत–विचार को नई दार्शनिक व्यवस्थाओं में रूपायित किया। शंकराचार्य के अद्वैतवाद का मूल सिद्धांत है –"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः।" अर्थात् ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या और जीवात्मा ब्रह्म का ही स्वरूप है। इस प्रकार अद्वैतवाद मनुष्य की आत्मा में परमात्मा की प्रतिष्ठा करता है। कहना ना होगा कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की औपन्यासिक रचनाशीलता का मूल श्रोत भारतीय ऐतिहासिक दार्शनिकता हैप् उनके उपन्यासों में वेदों और उपनिषदों में जो मानवीयता है वही दृष्टव्य होती है। अद्वैतवाद में भी मनुष्य को दैविक स्तर पर उन्नीत किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि आचार्य द्विवेदी जी के इतिहास दर्शन के केंद्र में अध्यात्म ही है। भारतीय दृष्टि में अध्यात्म का महत्त्व आत्मज्ञान है। मनुष्य विश्वात्मा का एक अंश है। बाणभट्ट की आत्मकथा का एक उद्धरण देखें – 'उस दिन 'मैं' ने प्रथम बार समझा की दुनिया से विच्छिन्न एक स्वतंत्र पिंड नहीं हूँ, बल्कि चारों ओर दुर्वार आकर्षणों के भीतर जकड़ी हुई हूँ।' (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृष्ठ १८२)

कबीर–वाणी में मानवतावादी दार्शनिकता :

महाकवि कबीर संतों की दीर्घकालीन मानवतावादी परंपरा के उच्चकोटि की सर्जनात्मक प्रतिभा रखने वाले अद्वितीय कवि हैं। इनकी बहुमुखी प्रतिभा अपनी व्यापकता में इतनी महान है कि शास्त्र, काव्य, दर्शन, सामाजिक सुधार इत्यादि के प्रत्यक्ष क्षेत्र में उन अंगों के विद्वानों ने कहीं इन्हें एक श्रेष्ठ समाज–सुधारक, कहीं एक अद्वितीय दार्शनिक और कहीं श्रेष्ठ प्रतिभा के सहेदय कवि के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न किया है। मूलतः महाकवि कबीर का व्यक्तित्व अपने चिंतन, सहेदयता और अनुभूतियों के स्तर पर इतना उत्कृष्ट है कि इसे कहीं भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इन तत्वों ने ही कबीर को हर एक स्थिति में उदात्तता प्रदान की है। संत साहित्य में परंपरा पोषित दार्शनिकता और शास्त्रीय चिंतन से बढ़कर यह मानवतावादी उदात्तता ही विशेष रूप में पाई जाती है। कबीर प्राचीनकाल के लिए जितने उत्कृष्ट और महान हैं, आज के मनुष्य जीवन के लिए उतने ही उत्कृष्ट एवं आदरणीय हैं। कबीर परंपरा–पोषित ज्ञान, चिंतन, शास्त्रीयता के सदा विरोधी रहे। उनका मौलिक मत सदैव अनुभूतियों के संदर्भ में विवेक का समर्थक और आश्रित रहा।

महाकवि कबीर का साहित्य उनकी परंपरित आध्यात्मिक सर्जनात्मक प्रतिभा का वह प्रकाश है, जिसने विगत शास्त्रीय, धार्मिक, परंपरित रूढ़ियों के बादल को भारतीय आकाश से दूर करके प्रकाश की अमृतधारा को प्रवाहित किया। भारतीय और इस्लामिक संस्कृति के संघर्ष के उस युग में कबीर ने शाक्त, शैव आदि धर्मों और संप्रदायों की परंपरित जड़ता से दूर रहकर इन सबसे जीवन–प्रधान तत्वों को ग्रहण किया। कबीर ने अपने साहित्य द्वारा मुक्त, सर्वमान्य, जीवनवादी, आध्यात्मिक और मानवतावादी साहित्य का सर्जन किया। इनके साहित्य का प्रत्येक शब्द अपनी कलागत चकाचौंध और शिल्पगत आकर्षण को लेकर जीवित है। उसकी आंतरिक उदात्त

भावना–शक्ति ही उसके दीर्घजीवी अस्तित्व को बनाए हुए है। एक ओर ये सदियों के पंक को धोने के लिए क्रांतिकारी, विद्रोही, कटु शैली का प्रयोग करते हैं और दूसरी ओर अपने प्रेममूलक साहित्य द्वारा जीवन–उद्यान के प्रत्येक पुष्प को अमर सौंदर्य और परंपराओं से मुक्त मनुष्यता तथा व्यापक प्रकाश का साहित्य देते हैं।

कबीर मनुष्य जीवन को अपनी सर्जनात्मक दृष्टि में सृष्टि का श्रेष्ठ तत्व मानते हैं। मनुष्य के हृदय की निष्कलंक पवित्रता, सौंदर्य और व्यापकता के मधुर विकास के वे आकांक्षी हैं। यही उद्देश्य पूरा करते हुए कहीं वे धार्मिक विचारों का खंडन करते हैं, कहीं पुरातन दर्शन और शास्त्रों की उपेक्षा करते हुए विद्रोह के स्वर में कड़वे शब्द कहते हैं। फिर भी उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा अपनी महानता को सहेदय भाव से पूरे विश्व जीवन के कल्याण के लिए काव्य में अभिव्यक्त करती रहती है –

"वृक्ष कबहुँ नहीं फल भखे, नदी न संचे नीर।
परमारथ के कारने साधुन धरा शरीर।।"

इस प्रकार के दोहों और साखियों में प्रत्येक शब्द मानवता के प्रति निश्छल प्रेम को अभिव्यक्त करता है। संतों ने समानता, त्याग और व्यापक कल्याण की भावना को लेकर समूचे जीवन भर अपने तप और परमार्थ द्वारा समाज के लिए कार्य किया है। कबीर के काव्य में यह प्रकृति आदि से अंत तक स्पष्ट दिखाई देती है। इस प्रकार इस महान कवि के साहित्य द्वारा जो भी उपलब्धि काव्य के रूप में प्राप्त होती है, वह उत्कृष्ट मानवता ही है। संक्षेप में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कहें तो –

"हजार वर्ष के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ।"

कबीर स्वयं कहते हैं –**"एक ही साधे सब सजे, सब साधे सब जाय।**
जो गहि सेवे मूल को, फूले फले अगाय।।"

संक्षेप में कहें तो कबीर के व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों मानवता की उद्घोषणा से पूर्ण हैं। कहना न होगा कि हजारीप्रसाद द्विवेदी के समूचे काव्य पर कबीर–वाणी का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। कबीर के विद्रोही वयक्तित्व और दार्शनिकता द्विवेदी जी विचारों के बहुत नजदीक है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर और गाँधीजी का मानवीय दर्शन –

हमारे उपजीव्य रचनाकार हजारीप्रसाद द्विवेदी की रचनाशीलता पर गाँधीजी और ठाकुर (रवीन्द्रनाथ) का प्रभाव गहरा है। वास्तव में महात्मा गाँधी और रवीन्द्रनाथ आधुनिक भारत की आत्मा की दो आँखें हैं। गाँधीजी उस अदृश्य और अचंचल शक्ति पर विश्वास रखते थे जो प्रकृति और जीवन को नियंत्रित करती है। लेकिन उनका ईश्वर सामाजिक यथार्थ से दूर रहने वाला नहीं था। उनके अनुसार ईश्वर का साक्षात्कार मानवता से सामंजस्य स्थापित करके ही हो सकता है। उनका कथन है– **"ईश्वर को देखने का एकमात्र उपाय उनको अपनी सृष्टि में देखना और उससे तादात्म्य प्राप्त करना है।"** सत्य ही ईश्वर है – यह अवधारणा गाँधीजी की दार्शनिकता का मूल तत्व था। इसी धरातल पर खड़े होकर उन्होंने सत्य को अपनाया और मानवीय प्रेम को अहिंसा में परिवर्तित किया। मानव–प्रेम ही सत्य को पहचानने का एकमात्र उपाय है। यह भी विचारणीय है कि गाँधीजी द्वारा दिखाया गया मार्ग जाति, धर्म और राष्ट्रीयता के सभी कृत्रिम बंधनों से ऊपर है। वे जीवन की हर श्रेणी में मानव–गरिमा को प्रतिष्ठित करते हैं। अन्याय के प्रतिरोध के लिए अहिंसात्मक मार्ग को स्वीकार करने का आदर्श गाँधीजी ने संसार के सामने प्रस्तुत किया।

द्विवेदीजी ने साहित्य–इतिहास, निबन्ध, समीक्षा, उपन्यास, काव्यशास्त्र आदि में मौलिक योगदान दिया। उनका दृष्टिकोण लोकोन्मुख, प्रगतिशील और मानवतावादी है। वे कहते हैं– **''साहित्य का लक्ष्य मनुष्यता ही है।''** जो पुस्तक मनुष्य में विवेक, संवेदना और अन्याय–प्रतिरोध को न जगाए, वह किसी काम की नहीं। हजारीप्रसाद द्विवेदी के साहित्य का अध्ययन करने पर हमें ज्ञात हो जाता है कि भारतीय साहित्य और संस्कृति की परंपरा उन्हें महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के माध्यम से मिली। डॉ. नामवर सिंह के शब्दों में– **''शांति निकेतन से इन्हें एक अखिल भारतीय व्यापक दृष्टि मिली थी–अखिल भारतीय भी और विश्व–विस्तृत भी।''** द्विवेदी जी का मानवतावादी दर्शन कविगुरु टैगोर के मानवतावादी दर्शन से प्रेरित, प्रेषित और प्रभावित है। दोनों महापुरुष मध्यकालीन कबीर जैसे मध्यकालीन संतों से अद्‌भुत रूप से प्रभावित थे। शांति निकेतन में रवीन्द्रनाथ टैगोर की शीतल छाया में उनकी साहित्यिक प्रतिभा को नवोन्मेष और ऊर्जा मिली। भारतीय धर्म, दर्शन, शिल्प और साधना में जो कुछ उदात्त हैं, महनीय हैं, उन सब का सशक्त प्रभाव द्विवेदी जी की रचनाधर्मिता में परिलक्षित होती है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना और दार्शनिक गरिमा

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के चारों उपन्यास :

(1) बाणभट्ट की आत्मकथा

(2) पुनर्नवा

(3) चारुचन्द्रलेखा और

(4) अनामदास का पोथा।

इतिहास पर अवलंबित तथा अतीतोन्मुख हैं। अज्ञेय ने ठीक ही कहा है– **''ये उपन्यास जिन बीते युगों की जितनी विस्तृत जानकारी और समझ हमें देते हैं, उतनी कई शास्त्र और इतिहास–ग्रंथ मिलकर भी न दे पाते।''** किन्तु गहराई में जाने पर ज्ञात होता है कि आधुनिक जीवन का यथार्थ ही इन कृतियों का प्राणदायक तत्व है। वे अतीत के उन्हीं क्षणों को उजागर करते हैं जो अतीत में अवस्थित होकर भी सर्वदा वर्तमान की अनुभूतियों से जुड़े हुए हैं।

बाणभट्ट की आत्मकथा और पुनर्नवा सृजनात्मक दृष्टि से अत्यंत ऊँचाई पर पहुँची कृतियाँ हैं।" बाणभट्ट की आत्मकथा "के पन्नों से गुजरते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि द्विवेदी जी ने भारतीय इतिहास को 'बाहर की आँखों' से नहीं, बल्कि 'भीतर की आँखों' से देखा है। यह उपन्यास नया इतिहास–बोध और सांस्कृतिक चेतना से ओत–प्रोत है। द्विवेदी जी अनुसार–भारत का इतिहास भारतीय मनुष्य की आशा, निराशा और समग्र अनुभूतियों का आलोकन है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों की संरचना भारतीय उपन्यास की संकल्पना से ही आकार ग्रहण करती है। यहाँ मानो उन्होंने परकाय–प्रवेश करके बाणभट्ट को आत्मा में उतार लिया है। दूसरे शब्दों में, वे हिंदी के बाणभट्ट–बीसवीं सदी के बाणभट्ट बन गए हैं। उनका लक्ष्य इतिहास का पुनराख्यान नहीं है, बल्कि अतीत के गहन अंधकार से वर्तमान को उजाले में खींच लाने का सार्थक प्रयास है। मुख्य विषय है–मानवीय संवेदनाएँ और सांस्कृतिक धाराएँ।

उनके उपन्यासों का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि उन्होंने पतनोन्मुख मानसिकता के विरुद्ध अपनी सर्जनात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त की है। यह मध्ययुगीन मनोवृत्ति आज भी भारत में प्रतिगामी और जन–विरोधी कुसंस्कारों के रूप में विद्यमान है। बाणभट्ट की आत्मकथा और चारुचन्द्रलेखा में इस मनोवृत्ति को इंगित करते

हुए एक सांस्कृतिक नवजागरण की ओर सचेत करने का सारस्वत प्रयास किया गया है। बाणभट्ट की आत्मकथा में सामंतवाद के अमानवीय रूप, स्त्री की त्रासद दासता तथा धर्म और शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार का सशक्त चित्रण है। एक प्रतिबद्ध रचनाकार के रूप में द्विवेदी जी ने ऐतिहासिक संदर्भों द्वारा युग–सत्य को उद्‌घाटित किया है।

"चारुचन्द्रलेखा" का प्रतिपाद्य तंत्र–साधना की जटिलता में उलझे मध्ययुगीन कुसंस्कारों का उन्मोचन है। विद्रोही चेतना से परिपूर्ण पात्रों के माध्यम से मानव–मुक्ति का संदेश भी निहित है। इस उपन्यास में नारी को शक्तिस्वरूपिणी सौर प्रेरणा स्त्रोत के रूप में चित्रित किया गया है। साथ ही धार्मिक सद्‌भावना और सहिष्णुता की उदात्त चेतना भी सशक्त रूप में प्रकट होती है। "सीदी मौला" का व्यक्तित्व यहाँ मानवतावादी पक्ष का प्रखर संवाहक है।

पुनर्नवा उपन्यास की समूची चेतना भारतीय संस्कृति के सर्वोत्तम को वहन करती है। इस उपन्यास की प्रेरणाशक्ति नारी है। एक ओर लेखक की अन्वेषी दृष्टि प्रतिपाद्य युग के समाज में प्रचलित बुराईयों और हीन अवस्था का चित्रण करती है तो दूसरी ओर पुरुष की मार्गदर्शिका के रूप में नारी की महिमा को स्वीकार करती है। इस उपन्यास की मूल भावभूमि प्रेम का नवीकरण है। प्रेम की परिकल्पना को पुनर्जीवन देना और प्रेम को उदात्त रूप देकर ऊंचे सोपान पर प्रतिष्ठित करना लेखक का अभीष्ट है।

द्विवेदी जी का चौथा उपन्यास अनामदास का पोथा, प्रकृति से संस्कृति तक की विकास–यात्रा का क्रमबद्ध आख्यान है। इसमें मानव–प्रकृति की सहज गाथा को अत्यंत सरल और जीवंत अभिव्यक्ति मिली है। मुख्य पात्र रैकव मुनि ऐसा भोला मनुष्य है जो सांसारिक तप–ध्यान में लीन है। यौवन के पूर्ण विकास पर भी उसमें काम–भावना का उदय नहीं होता, जिससे उपन्यास में विशेष रोचकता और मौलिकता आती है। व्यक्तिगत चेतना को समष्टि चेतना की ओर उन्मुख करना ही इस कृति का मूल तत्व है।

इस प्रकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के रचना संसार की विशाल राहों से गुजरने के बाद कुछ निष्कर्षों पर हम सहज ही पहुँच जाते हैं। यह सच है कि उनके उपन्यास अतीत पर अवलम्बित हैं। वे अतीत के उन्हीं की ओर दृष्टिपात करते हैं, जो अतीत के होने पर भी सदा वर्तमान हैं (टी एस इलियट के शब्दों में, Present moments of the past).

संक्षेप में कहें तो द्विवेदी जी के औपन्यासिक रचनाशीलता का केन्द्र भारतीय दर्शन के आलोक में वर्तमान को खींच लाने की कोशिश है। उनके चारों उपन्यासों में इतिहास का पुनराख्यान नहीं हुआ है। इससे बढ़कर भारतीय संस्कृति की उद्‌घोषणा ही इन रचनाओं का सार तत्व है।

यह कहना समीचीन है कि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की रचनाधर्मिता का मूल उद्देश्य भारतीय दर्शन के श्रेष्ठ मूल्यों को संवेदना के स्तर पर प्रतिष्ठित करना और जनमानस को सांस्कृतिक नवजागरण की ओर प्रेरित करना है। उनके उपन्यास अतीत की भूमि पर खड़े होकर वर्तमान का आलोक प्रज्वलित करते हैं। इसलिए उनका स्थान हिंदी साहित्य में अतुलनीय एवं चिरस्मरणीय है।

सन्दर्भ सूचि :

1. डॉ. रविकुमार अनु – हजारीप्रसाद द्विवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना।
2. डॉ. नामवर सिंह –दूसरी परंपरा की खोज।

3. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद –आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में अभिव्यक्त इतिहास दर्शन।
4. अज्ञेय – स्मृति लेखा।
5. रामदरश मिस्र – हिंदी उपन्यास एक अंतर्यात्रा।
6. हजारीप्रसाद द्विवेदी – बाणभट्ट की आत्मकथा।
7. चारुचन्द्रलेख
8 .पुनर्नवा।
9. अनामदास का पोथा।

Email- naveenajplacheril@gmail.com
Mobile 8714862243

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 70–73

प्रेमचंद की कहानियों में ग्रामीण किसान की स्थिति

सहला सरवर
वरिष्ठ शोधार्थी, नागपुरी विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची।

भारतीय साहित्य में प्रेमचंद का नाम एक ऐसे यथार्थवादी लेखक के रूप में लिया जाता है। प्रेमचंद ने भारतीय ग्रामीण, किसान की पीड़ा, शोषण, संघर्ष, सुख–दुःख को अपनी कहानियों में विशेष रूप से स्थान दिया है। इनकी कहानियों में जीवित, संघर्षशील और शोषणग्रस्त सामाजिक इकाई के रूप में प्रस्तुत किया। इनकी कहानियों में आर्थिक दरिद्रता, प्राकृतिक विपदाओं, सामाजिक असमानताओं और मानसिक दुखो, कर्ज–ग्रस्तता, किसान की त्रासदी को बहुत गहरे ढंग से सामने लाते हैं।

भारतीय समाज में किसान सिर्फ अन्नदाता नहीं बल्कि भारत की आर्थिक व्यवस्था की रीढ़ माना जाता है, लेकिन औपनिवेशिक काल में यह वर्ग सबसे अधिक शोषित हुआ है। प्रेमचंद ने किसान की त्रासदीपूर्ण स्थिति को अपनी कहानियों में चित्रित किया है।

1. प्रेमचंद की कहानियों के वास्तविक और ग्रामीण किसान :

प्रेमचंद का साहित्य सामाजिक यथार्थ पर आधारित है। उन्होंने गाँव को सिर्फ प्रकृति का मनोरम स्थल नहीं बल्कि उसे भारत की आत्मा और पीड़ा का केंद्र समझा। प्रेमचंद ने ग्रामीण जीवन की सच्चाई को अपनी कहानी के माध्यम से चित्रित किया। गरीबी, कर्ज, सूदखोरी, जाति–शोषण को दर्शाता है, भारत के किसान को उसकी मेहनत का उचित फल नहीं मिलता है, इसलिए प्रेमचंद ने लिखा था –

''हमारा साहित्य जीवन से अलग होकर नहीं रह सकता। किसान दुखी है तो साहित्यकार का कर्तव्य है कि उनके दुख को वाणी दे।''

2. आर्थिक शोषण मुख्य समस्या भारतीय किसानों की :

भारतीय किसान की सबसे बड़ी समस्या गरीबी और कर्ज है। लगभग हर एक कहानी में जो ग्रामीण किसानों से संबंधित है, प्रेमचंद ने उसमें आर्थिक शोषण को समाज के सामने रखा है।

(क) 'कफन' गरीबी की चरम सीमा :

'कफन' कहानी में प्रेमचंद दिखाते हैं कि गरीबी कैसे मानवता छीन लेती है कि मजदूर किसान घीसू और माधव पिता–पुत्र कैसे अपने पत्नी के प्रसव–पीड़ा के दौरान शराब पीने की सोचते हैं और प्रसव के दौरान मृत्यु होने पर कफन के पैसे से शराब पीते हैं और खाते–पीते हैं। गरीबी ने उसने संवेदनशील मन को कैसे कुंठित कर दिया है।

(ख) 'पूस की रात' किसान की मजबूरी और निर्धनता :

इस कहानी का नायक हल्कू अपना जीवन कर्ज चुकाने में खपा देता है। इस कहानी में ग्रामीण किसान की वास्तविक स्थिति का सबसे अच्छा चित्रण किया गया है। वह रात में खेत की रखवाली कड़ाके के ठंड में पर अंत में न तो पेट भर पाता है, न तन ढँक पाता है और अंततः असहनीय पीड़ा के कारण मजबूर होकर खेत छोड़ देता है।

(ग) 'सदगति' – कर्ज, जाति और श्रम का मिश्रित शोषण :

इस कहानी में ग्रामीण जातिगत व्यवस्था का सबसे कठोर चित्रण किया गया है। यह कहानी समाज में जात, रूढ़िवादिता, अंधविश्वास और शोषण को दर्शाती है।

3. जमींदारों का अत्याचार और सामंती व्यवस्था :

प्रेमचंद की कहानियों में ग्रामीण भारत का सामंती ढाँचा पूरी कठोरता और शोषित से उभरता है। किसान जमींदारों और महाजनों के लिए एक उनके बोझ ढ़ोने वाला जानवर के समान है।

क) 'ठाकुर का कुआँ' :

ठाकुर का कुआँ कहानी में पानी जैसी मूलभूत आवश्यकता पर भी जाति की दीवार उठा दी गई है, यह कहानी किसान की भयावह स्थिति को दर्शाता है। प्रेमचंद गांधी और गोखु के माध्यम से गरीब किसान की बुनियादी जरूरतों के लिए ठाकुरों पर निर्भरता को दिखाते हैं, लेकिन गंगी का कुएँ से पानी भरना अपने अस्तित्व के संघर्ष को दिखाता है।

ख) 'सद्गति' :

इस कहानी में पडित का अहंकार का चित्रण किया गया है, दुखी चमार को पंडित लड़की काटने और अन्य कामों के लिए बुलाता है और अंततः वही दुखी उसके आंगन में ही मर जाता है, लेकिन पंडित उसे छूने से भी हिचकिचाता है। यह कहानी समाज के उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग का शोषण और उन्हें अपमानित कैसे करते हैं दर्शाता है।

4. प्राकृतिक विपदाएँ और किसान की त्रासदी :

'पूस की रात' कहानी में प्रकृति किसान का किस प्रकार शत्रु बनता है यह दर्शाती है। कठोर ठंड से हल्कू की मृत्यु तो नहीं होती, लेकिन उसकी जीविका का आधार फसल नष्ट हो जाती है। यह ग्रामीण किसान के की आस्तित्वगत त्रासदी है।

'दो बैलों की कथा' इस कहानी में जानवरों की संवेदना के माध्यम से किसान के श्रम उसकी अवहेलना का चित्रण है। किसान का जीवन संघर्ष और मेहनत का पर्याय है।

5. सामाजिक विषमता और जातिगत शोषण :

भारत के गाँवों में जाति, धर्म और वर्ग के आधार पर विभाजित सामाजिक व्यवस्था किसान के जीवन को और भी दयनीय बनाता है।

(क) प्रेमचंद के कहानियों में किसान और उनके शोषित पात्र :

''ठाकुर का कुआँ'', ''सदगति'', ''कफन'' आदि अनेक कहानियों में शोषित पात्र स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

गंगी सिर्फ पानी के लिए ठाकुर के कुएँ पर जाती है यह विद्रोह का एक छोटा रूप है, जो स्त्री और गरीब के दोहरे प्रतिरोध को दर्शाता है।

दुखी चमार का शव भी समाज के लिए जातिवाद का घृणा रूप में दिखता है।

6. किसान की पारिवारिक और व्यक्तिगत पीड़ा :

प्रेमचंद अपने कहानियों के माध्यम से उजागर करते हैं–

''बूढ़ी काकी'' एक ऐसी कहानी है जो बुजुर्गों की उपेक्षा पर प्रकाश डालती है। यह कहानी हमें सीख देती है कि बुजुर्गों के प्रति सम्मान की भावना और उनका ख्याल रखना चाहिए।

''कफन'' इस कहानी में पत्नी की मौत पर प्रति रोने के बजाय शराब पीने जाता है। गरीबी किस तरह पारिवारिक भावनाओं को कुचल देता है, कहानी दर्शाती है।

7. किसान का श्रम और ईमानदारी :

प्रेमचंद की कहानियों में किसान निर्धन, लेकिन ईमानदार, उच्च नैतिक मूल्यों से सम्पन्न है।

(क) 'नमक का दरोगा' : कहानी में ईमानदारी की जीत दर्शाई है, यह कहानी प्रशासनिक भ्रष्टाचार पर केंद्रित है, पर इसका पृष्ठभूमि ग्रामीण है।

(ख) 'दो बैलों की कथा' : प्रेमचंद ने भूरी और हीरा के माध्यम से किसान के श्रम, निष्ठा और त्याग को भावुकता के साथ प्रस्तुत किया है।

(ग) हल्कू पात्र एक श्रमशीलता का प्रतीक है। वह ठंड में खेत की रखवाली करता है, क्योंकि उसकी मेहनत ही उसकी जीवन रेखा है।

8. किसान का मनोवैज्ञानिक पक्ष : विद्रोह और हताशा :

किसान की मानसिक दशा को प्रेमचंद ने भली–भांति अपनी कहानियों के माध्यम से दर्शाई है।

विद्रोह :

हल्कू का खेत छोड़ देना – यह भी एक मौन विद्रोह है।

गंगी का ठाकुर के कुएँ से पानी भरना।

हताशा – निराशा

दुखी की हीन–भावना जातिवाद के कारण।

हल्कू की ठंड से जूझना – ''बस अब और नहीं'' वाली भावना।

9. किसान की स्थिति का समग्र मूल्यांकन :

प्रेमचंद ने कहानियों के माध्यम से ग्रामीण किसान की स्थिति को निम्न बिन्दुओं से समझाया है :

1. जमींदारों और महाजनों का शोषण।
2. जातिगत और सामाजिक विषमता।
3. आर्थिक निर्धनता।
4. प्राकृतिक विपदाओं।
5. श्रमशील, ईमानदार लेकिन मजबूर।
6. सामाजिक असुरक्षा और पारिवारिक उपेक्षा।

7. कभी–कभी हताश और निराश लेकिन मौन विद्रोह।

निष्कर्ष :

प्रेमचंद की कहानियों में भारतीय किसानों की वास्तविकता को उजागर किया है। उनकी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और मानवीय इकाई को उन्होंने बाखूबी उभारा है। उन्होंने ग्रामीण जीवन की नग्न सच्चाइयों को बड़े सलीके के साथ साहित्य में उतारा है।

प्रेमचंद ने अपने कहानियों में किसान की गरीबी, जातिवाद, शोषण, श्रम की उपेक्षा, शोषण, भुखमरी को उजागर किया है। उनकी कहानियाँ सामाजिक परिवर्तन की प्रेरणा बनकर आज भी उतना ही प्रभावशाली बनाता है। प्रेमचंद ने किसान को भारतीय साहित्य में वह स्थान दिया है जो आज भी अद्वितीय और प्रासंगिक है।

संदर्भ सूची :

1. प्रेमचंद, मुंशी, मानसरोवर (खंड 1–8) – राजपाल एंड संस, नई दिल्ली।
2. प्रेमचंद, मुंशी, कफन और अन्य कहानियाँ – लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. शर्मा, विश्वनाथ, प्रेमचंद का कथा साहित्य – साहित्य भवन, इलाहाबाद।
4. नामवर सिंह, कहानी : नई कहानी – राजकमल प्रकाशन।
5. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास – नागरी प्रचारणी सभा।
6. डॉ. धर्मकांत त्रिपाठी, प्रेमचंद का यथार्थवाद।

संपर्क नंबर – 8210519245

Email - shahlasarwar7@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 74–79

हिंदी आत्मकथा साहित्य में अस्मितामूलक विमर्श

डॉ. रंजना आप्पासाहेब कमलाकर
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी–विभाग,
र. मा. माडखोलकर महाविद्यालय, चंदगड, तहसिल–चंदगड, जिल्हा कोल्हापूर (महाराष्ट्र)

प्रस्तावना :

अस्मितामूलक – विमर्श एक नवीन साहित्यिक विमर्श है। अस्मिता–विमर्श के नामपर चलने वाले विभिन्न साहित्यिक आंदोलनों के कारण इस संदर्भ में किसी विशेष अवधारणा का निर्धारण कर पाना एक कठिन कार्य है। कई बार एक अस्मितामूलक – विमर्श के विरुद्ध भी बौद्धिक एवं साहित्यिक स्वरुप ग्रहण करता है। ऐसी स्थिति में अस्मितामूलक विमर्श संबंधी कुछ सामान्य तथ्यों को रेखांकित करना ही इस आलेख का उद्देश्य हैं।

हिंदी शब्दकोश के अनुसार 'अस्मिता' का अर्थ– अहंकार, मोह, अपनी सत्ता का भाव, अपनी अस्तित्व का भाव इत्यादि है। अस्मिता का सीधा संबंध पहचान है। इसके कई रूप हो सकते है। इसमें राष्ट्र, जाति, नाम, क्षेत्र, धर्म, वंश, लिंग, वर्ग, व्यवसाय आदि अस्मिता व्यक्तिगत और सामूहीक भी है। अस्मिता जितना व्यक्तिगत होती है, उतनी ही अपनी परिवेश और परंपरा की भी होती है। अस्मिता अपनी निजी पहचान के साथ–साथ उस क्षेत्र और समाज के पहचान की भी है जो हमारे संदर्भ तय करते हैं। ये संदर्भ जाति, रंग, वर्ग, नस्ल, क्षेत्र, भाषा, जेंडर पेशे आदि के रूप में हमारे अंतरंग के हिस्से है। अस्मिता प्राप्ति के संघर्ष की शुरुआत व्यक्तिगत या सामुदायिक तौर पर अपने वंचित पीड़ित और प्रताडित होने के अहसास से ही होती है। इसमें अपनी पहचान प्राप्त करना ही सबसे बड़ा उद्देश्य हो जाता है। अधिकारों से वंचित वह व्यक्ति या समुदाय समाज के द्वारा किए गए अन्याय और सदियों से होते आ रहे शोषण के खिलाफ खड़ा हो जाता है। अस्मिता की प्राप्ति के लिए किए गए संघर्ष या प्रयास व्यक्ति और समुदाय को जागरूक बनाते हैं और यह जागरुकता उन्हें दिशाहीन होने से बचाती है।

हिंदी में विमर्श शब्द स्वतः बहस के केंद्र में आ जाता है। शब्द प्रयोग की दृष्टि से विमर्श शब्द भारतीय साहित्य में अत्यंत प्राचीन है। इस शब्द की 'उत्पत्ति –वि + मृदा + अत्र = विमर्श माना जाती है। इसके कई अर्थ हैं – विचार– विनिमय, सोच–विचार, परीक्षा, चर्चा, तर्क, विपरीत निर्णय, वाचिक संप्रेषण, वाद–विवाद और संवाद आदि है। समाज कई उपेक्षित वर्ग है जो समाज में की मुख्यधारा में अपना स्थान बनाने का प्रयास करता है उन्हें ही अस्मितामूलक विमर्श की संज्ञा दी जाती है। अस्मितामूलक – विमर्श याने जो अभी तक कभी नहीं बोले, वे बोले, अपना दुःख दर्द, पीडा कहे इससे अंधो को आँख और बहारों को कान मिल सके। अर्थात अस्मितामूलक का उद्देश्य उपेक्षित वर्गों की पीड़ा, दुख दर्द, शोषण, समाज के सामने लाकर अस्मिता वालों को एकजुट कर, उन्हें संगठित होकर अपने हक के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा देता है।

विषय वस्तु -

हिंदी आत्मकथा साहित्य में अस्मितामूलक : विमर्श को लेकर आधुनिक काल में अनेक महिला लेखिकाओं ने आत्मकथाएँ लिखि है। जैसे– 'कौशला बैसंत्री 'दोहरा आशाप', डॉ. सुशीला टाकभौरे – 'शिकंजे का दर्द', मन्नू भंडारी – 'एक कहानी यह भी', कृष्णा अग्निहोत्री – 'लगता नहीं दिल मेरा', 'और और औरत' मैत्रेयी पुष्पा– 'कस्तुरी कुंडल बसै', 'गुडीया भीतर गुडिया', प्रभा खेतान– 'अन्या से अनन्या', रमाशंकर आर्य–'घुटन–शिल्पायन', रमणिका गुप्ता– 'हद से', डॉ. प्रतिभा अग्रवाल– आमकथा के दो खंड प्रकाशित किए हैं। प्रथम खंड–'दिस्तक जिंदगी की' और दूसरा खंड 'मोड जिंदगी का', कुसुम अंसल – 'जो कहा नहीं गया', पद्मा सचदेव–'बूंद बावड़ी' प्रसिद्ध पत्रकार शीला झुनझुनवाला– 'कुछ कही : कुछ अनकही', इस्मत चतुराई– 'कागजी है पैरहन', चंद्रकिरण सोनेकेक्सा– 'पिंजरे की मैना', सुशीलाराय – 'एक अनपढ़ कहानी', सुशीला हरिष – 'पति प्रसंग', आदि अस्मितामूलक आत्मकथा लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से स्त्रियों की अपने गोपनीय जीवनगाथा की कथा को प्रस्तुत किया है।

प्राचीन काल से दुनिया के तमाम देशों के मुकाबले भारतीय संस्कृति में नारी को दुय्यम स्थान दिया है और उसमें महाराष्ट्र राज्य में तो नारी को पैरों की जूती मानी जाती है, उसे पढ़ाया लिखाया नहीं जाता था, वह पुरुष की सहचरणी नहीं बच्चे पैदा करने वाली मशीन और कामभोग की वस्तु है। वह मनोरंजन का साधन है 'तू चीज बडी है मस्त–मस्त'। नारी किसी भी प्रकार से स्वातंत्य के लिए योग्य नहीं है। आज भी कुछ मंदिरों में प्रवेश और दर्शन के लिए मना, पाबंदी है। नारी सबला नहीं अबला है, अबला ही रहना चाहिए इस प्रकार पुरुष प्रधान संस्कृति की मानसिकता है। ऐसी पुरुषी मानसिकता को बदलने का ही काम अस्मितामूलक नारी विमर्श में अनेक आत्मकथात्मक महिला लेखिकाओं ने किया है। वह निम्नलिखित है।

'दोहरा अभिशाप' कौशल्या बैसली द्वारा लिखित आत्मकथात्मक उपन्यास का प्रकाशन 2009 हुआ। यह आत्मकथात्मक उपन्यास 124 पृष्ठों का 28 प्रकरणों में विभाजित रचना है। लेखिका ने अपने 68 वर्ष की आयु में अपने जीवन की जीवंत दस्तावेज पाठक के सामने रखा है। इस आत्मकथात्मक उपन्यास में लेखिका ने कहा है कि दलित होना एक शाप है, पाप है, और उसमें नारी होना यह दोहरा अभिशाप है। समाज में दलित परिवार और नारी दोनों ही रूपों की उपेक्षा और उत्पीड़न की शिकार है। उसका दर्द दोहरा है। यह दलित समाज को अपना मूल्यांकन करने की सीख देने वाली आत्मकथात्मक उपन्यास है। इस आत्मकथा में भूख, अशिक्षा, छूता – छूत अनेक सुविधाओं का अभाव आदि का चित्रण किया है।

'दोहरा अभिशाप' एक दलित महिला की संघर्ष की गाथा है। आज भी दलित नारी दोहरे अभिशाप के पाटों में पीसती जा रही है। लेखिका अन्याय, अत्याचार, शोषण की शिकार बन गई है। मगर उन्होंने कही पर भी प्रतिशोध की भावना या द्वेष या ईर्षा की भावना से काम नहीं किया है और न ही इस भावना से लेखन किया है। लेखिका संयम, समन्वयवादी मानसिकता संपूर्ण त्याग से आकर्षित करती है।

'दोहरा अभिशाप' आंबेडकरवादी दर्शन का एक साहित्यिक रूप है। डॉ. आंबेडकर जी ने दलित समाज के उत्थान के लिए कहा है– 'पढ़ो संगठित बनो और अपने हक्क के लिए संघर्ष करो।' लेखिका का सम्पूर्ण जीवन इस दर्शन का प्रमाण है। लेखिका अनेक बाधाओं, यातनाओं को झेलते हुई शिक्षा प्राप्त करती है। बचपन से लेकर जीवन के अंतिम सांस तक वह समाज को संगठित करने की कोशिश करती है। वह पति के अत्याचारों

के विरोध में संघर्ष करती है। वह अमानवीय क्रूर व्यवहार करने वाले पति को अदालत में घसीटती है। वह कानून का सहारा लेकर पति को सबक सीखाना चाहती है। उसका संपूर्ण जीवन डॉ. आंबेडकर जी के विचारों से प्रभावित और प्रेरित रहा है। वह डॉ. आंबेडकर जी के प्रति प्रद्धा भाव रखती है। यह रचना हिंदी दलित आत्मकथा साहित की प्रमुख उपलब्धि है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि इसमें कौशल्या बैसंत्री जी ने 'दोहरा अभिशाप' में अपने जीवन का चित्रण के साथ–साथ समस्त मराठी भाषा दलित नारियों के सम्पूर्ण जीवन पर प्रकाश डाला है। इसमें उन्होंने असफल प्रेमविवाह, टूटता परिवार, जातिगत संस्कार आचार–विचार, व्यवहार, आर्थिक दयनीयता सामाजिक जन आंदोलन, शिक्षा के प्रति आकर्षण, उच्च वर्ग द्वारा होने वाले शोषण, आदि प्रश्नों को स्वानुभूतियों के आधार पर चित्रित किया है। इसमें लेखिका ने स्वानुभुति के आधारपर हो समस्त दर्जित नारीयों के शोषण को कई कोणों से उभारने का जो यशस्वी प्रयास किया है वह निश्चित ही प्रशंसनीयता के काबील है।

डॉ. सुशीला टाकभौरे जी का – 'शिकंजे का दर्द' इस आत्मकथा में भारतीय स्वतंत्रता के साठ साल बाद भी जातीयता की दीवारे न टूटी, न समानता की मनोवृती बनी है। एक निम्न अछूत परिवार में पैदा होने वाली डॉ. सुशीला टाकभौरे हर हालत का मुकाबला करके उच्च शिक्षा प्राप्त करती है। पीएच.डी. होने पर भी सर्वण उसे झाडूवाली जाति की ही मानते हैं। ऐसे ही संघर्षरत पढ़ी–लिखी महिला की आत्मकथा है 'शिकंजे का दर्द' सुशिला टाकभौरे कहती है, 'मेरी आत्मकथा दलित आत्मकथा होने के साथ–साथ एक स्त्री की आत्मकथा है।' दलित नारी पुरुषों की अपेक्षा अधिक अपमान, तिरस्कार, अन्याय, अत्याचार सहती है। उसका प्रमाण यह आत्मकथा प्रस्तुत करती है।

डॉ. सुशीला टाकभौरे जी का प्राध्यापिका होने पर भी अत्याचार की मालिका खंडित नहीं हुई। बस किराए के लिए पति से पैसे मांगने पडते, तो कभी पैदल जाना पड़ता, भूखी रहती तब पति कहता, 'तेरी औकात सिर्फ बर्तन मांजने वाली नौकरानी के बराबर है"। आधुनिकता के युग में भी नारी कितनी स्वतंत्र है? पढ़ी लिखी हो, या नौकरी करने वाली हो लेकिन वह शोषित ही है, आधुनिकता का स्वांग रचने वाला समाज व्यवस्था पर करारी चोट आत्मकथा के माध्यम से डॉ. सुशीला टाकभौरे जी ने की है। 'शिकंजे का दर्द' इस आत्मकथा को पढ़ने के पश्चात् ऐसा लगता है की, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने नारी स्वतंत्र की दृष्टि से जो सपने देखे थे वह सच हो रहे है।

मैत्रेयी पुष्पा की – 'कस्तुरी कुंडल बसै' 2002 में प्रकाशित हुई तथा श्गुडिया भीतर गुडिया' 2008 में प्रकाशित हुई। 'कस्तूरी कुंडल बसै' एक औपन्यासिक आत्मकथा है। इसमें लेखिका के अपने आत्मकथा के साथ माँ कस्तूरी की जीवन गाथा का भी वर्णन किया है। जो माँ अपनी वैधव्य के भार से दबकर बैठ नहीं जाती। ग्रामीण परिवेश के विरोधी एवं नकारात्मक तत्वों से टकराते हुए निंदा और उपहास की चिंता करते हुए शिक्षा की कठिन डगर पर चलते हुए आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त करती है। समाज को प्राप्त कटु अनुभवों ने उसे पुरुष –वर्चस्व का कट्टर विरोधी बना दिया और वैवाहिक बंधन को वह नारी के पैरो की बेडी मान बैठी, मगर बेटी मैत्रेयी को यह बेड़ी उसको मुक्ति का साधन मानती है। प्रस्तुत आत्मकथा में माँ और बेटी के मनोवैज्ञानिक द्वंद्व का वर्णन हूँ। 'गुडिया भीतर गुडिया' यह मैत्रेयी पुष्पा के आत्मकथा का दूसरा भाग है। इस आत्मकथा में मैत्रेयो ने माँ बेटी के पारस्पारिक संबंधों को पुनः स्पष्ट किया है। तथा अपने साहित्यिक जीवन के प्रयास का वर्णन किया है। पति

–पत्नी के रिश्ते तथा सूझ–बूझ का भी वर्णन इसमें किया गया है। मैत्रेयी पुष्पा के इस औपन्यासिक कृति का नाम 'कस्तुरी कुंडल बसै' का शीर्षक बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसमें स्वतंत्रता, समता, आत्मनिर्भरता, स्वाभिमान, अस्मिता आदि।

विषयों को साथ में लेकर कस्तुरी नायिका के रूप में अग्रसर है। अपने जीवन के बीहड अनुभव एवं संघर्षो के द्वारा लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने इसे उजागर करने का सफल प्रयास किया है। जिस प्रकार कबीर का दोहा है– –

'कस्तुरी कुण्डलि बसै, मिग्र ढूँढे बन माँहि।
ऐसे घटि – घटि राम है, दुनिया देखे नाहि'।

कैसी विडम्बना है कि मृग की नाभि में हो कस्तुरी का वास होता है परंतु मृग उसकी खोज में बन बन में भटकता है। अपने जीवन में जो कुछ घटित होता है वही अपनी नसीब है ऐसा मानने वाली गुलाम की जिंदगी जीने वाली साधारण नारीयों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करता है। जागो नारी शक्ति, नारी अस्मिता को सँभालो और अपने जीवन को जियो। यही कहने का उद्देश्य यहाँ प्रतीत होता है।

श्रेष्ठ कथा साहित्यकार मन्नू भंडारी जी की – 'एक कहानी यह भी 2007 में प्रकाशित हुई। मन्नू जी ने इस आत्मकथा की भूमिका में यह स्पष्ट किया है कि यह मेरी आत्मकथा कतई नहीं है, इसीलिए मैंने इसक शीर्षक भी 'एक कहानी यह भी' ही रखा। जिस तरह कहानी जिंदगी का एक अंक मात्र ही होती है, एक पक्ष– एक पहलू, उसी तरह ही यह भी मेरी जिंदगी का एक टुकडा मात्र ही होती है। जो मुख्यतः मेरी लेखकीय व्यक्तित्व लेखन यात्रा पर केंद्रित है। बचपन और किशोरावस्था के मेरे संपर्क–संबंध (जिसमें माँ–पिता, भाई–बार बहन, मित्र–अध्यापक आदि है)। और वह परिवेश तो है कि, जिसमें मेरे लेखकीय व्यक्तित्व की नींव पड़ी थी। होश संभालने के बाद जिन पिता से मेरी कभी नहीं बनी–उम्र.....के इस पौढेपन पीछ मुड़कर देखती हूँ तो आश्चर्य होता है, बल्कि कहूँ कि अविश्वसनीय लगता है कि आज अपनी अच्छाइयों और बुराइयों के साथ मैं जो भी हूँ, जैसी भी हूँ, उसका बहुत सा अंश विरासत के रूप में शायद मुझे पिता से ही मिला है। इसीलिए उनका वर्णन थोडे विस्तार में चला गया। फिर लेखन की शुरुआत का पहला चरण और उसकी विकास यात्रा, जो बेहद मंथर गति से चलने के बावजूद नाटक, उपन्यास और पटकथा लेखन तक तो फैली। अन्य विधाओं पर तो कभी प्रयोग ही नहीं किया–जानती हूँ वे सब मेरी सामर्थ्य की सीमा के बाहर है। हाँ अपनी विधा की रचनाओं के दौरान इनसे सम्बधिंत व्यक्तियों और स्थितियों के जो दिलचस्प अनुभव हुए, उनका संक्षिप्त ब्योरा इस कहानी का प्रमुख हिस्सा है।

श्रेष्ठ उपन्यासकार प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अन्यना' पहले हंस पत्रिका में क्रमशः प्रकाशित हुई। पुस्तक रूप में सन 2007 में आते ही हिंदी जगत में बहुत चर्चित रही। खेतान जी आत्मकथा को 'स्ट्रीप्टीज– का नाच' कहती है। आप चौराहे पर एक–एक कर कपड़े उतारते जाते हैं। लिखनेवाले के मन में आत्म प्रदर्शन का भाव किसी–न–किसी रूप में मौजूद रहता है, मन के किसी कोने में हल्की सी चाहत रहती है कि जो कुछ भी वह लिख रहा है उसे सही परिप्रेक्ष्य में लिया जाए। पर दर्शक वृंद अपना–अपना निर्णय लेने को स्वतंत्र है। उनका मन वे इस नाच को देखें या फिर पलटकर चले जाएं। पारिवारिक जीवन में आए कटुतापूर्ण अनुभव प्रभा जी ने यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया है।

कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा – 'लगता नहीं है दिल मेरा' में रचना संसार के पूरे उथेडे गए है और

बात बार–बार घूमकर 'सेक्स' उत्पीडन पर आती है। इस आत्मकथा के संबंध डॉ. सुमन राजे का मानना है कि 'ये आत्मकथा किसी वैचारिक ऊर्जा या रचनात्मक दबावो के तहत न लिखी जाकर हडबडी में लिखी गई है। शायद यह सिद्ध करने के लिए कि हम भी लिख सकते है। इन आत्मकथा का एक सामान्य सूत्र यह है कि सभी महिलाएँ 'किस्सा गो' है और यह बात उनकी आत्मकथाओं में विज्ञापन की तरह छपती है। शायद इस सूत्र में इस प्रश्न का उत्तर भी छिपा है कि अन्य विधाओं में लिखनेवाली महिलाओं ने आत्मकथाएँ क्यों नहीं लिखी?

प्रसिद्ध पत्रकार शीला झुनझुनवाला ने अपने सात दशकों की जीवनयात्रा की कथा– 'कुछ कही : कुछ अनकही' में लिखी है। एक भारतीय महिला के जीवन का आत्म संघर्ष सामाजिक अवरोध, राजनैतिक परिवेश और सांस्कृतिक झलकिया पाठकों को कहीं–न–कहीं उन संदर्भों से जोड़ती हैं, जो आज के नारी की तलाश है। इनके पश्चात इस्मत चुगताई की आत्मकथा 'कागजी है पैरहन' का उल्लेख भी यहाँ किया जाना चाहिए। 'इस्मत ने अपनी पैनी आँखों से भारतीय समाज को टटोला है, जीते–जागते। पात्रों को रचा है, घिसी–पिटी परंपराओं पर अपनी कठोर कलम को कुठाराघात किया है। समाज का जीवंत, रोचक और प्रामाणिक जीवन इस आत्मकथा में दौड़ता–भागता अपने मुकाम पर पहुँचता दिखाई देता है।

कुसुम अंसल जी की आत्मकथा– 'जो कहा नहीं गया' के नाम से प्रकाशित हो चुकी है। उनका कहना है। स्मृति को देखने का अर्थ है अतीत के माध्यम से वर्तमान को देखना, वर्तमान के इस पल में बीते हुए कल का पुनरावलोकन करते समय मुझे लग रहा है जैसे मैं स्मृतियों की एक सुरंग में घुस गई हूँ और अपने इस स्वः विश्लेषण के पल्ला को झेलना जैसे बर्दाश्त नहीं हो रहा है। आत्मकथा लिखने के इस सफर में ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मेरी शल्य चिकित्सा है। तभी यह यात्रा दर्द के स्थान पर दर्द से मुक्ति की यात्रा बन गई है। मेरी स्मृतियों के कुछ इनग्रेड पलों का टेप चल पड़ा है तो उसे रोकने की चेष्टा क्यो की जाए? एक बार पुनःजी लेने में बुराई भी क्या है।

उद्देश्य :-

अस्मितामूलक –विमर्श के बारे में अब तक हुई चर्चा को निम्नलिखित उद्देश्य स्पष्ट हो सकते हैं।

अस्मितामूलक विमर्श से नारी को अपनी अस्मिता अस्तित्व का परिचय हो रहा है। सहीयों से पीडित नारी अपने पर होने वाले अन्याय का विरोध करके हक्क, अधिकार के लिए लढ़ रही है। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थिति के भयावह यथार्थ पर से पर्दा हटाने का ही नहीं इसके प्रतिकार तथा प्रतिवाद की दिशा में विद्रोह के प्रति आवाज उठाने का महत्वपूर्ण कार्य किया गया है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के वैचारिक समानता को हासिल करके पढ़, लिखकर, नौकरी कर रही है, अपने पैरो पर खडे होकर, आत्मनिर्भर बन रही है। अवश्य ही ये आत्मकथाएँ युवतियों के लिए हमेशा प्रेरणादायी रहेगी।

विषयों के साथ इन महिला आत्मकथाकारों ने अपने उद्देश्य तक पहुंचने का निश्चित प्रयास किया है। भोगे हुए अतीत का परिचय देते हुए वर्तमान में इन परिस्थितियों में सुधर करने का इनका मुख्य उद्देश्य दिखाई देता है। आज की नारी को सिर्फ रामायण की सीता और महाभारत की द्रौपदी के समान अन्याय न सहते उसका विरोध करने की ताकत इन आत्मकथाओ में दिखाई देता है। नसीब पर विश्वास रखने की अपेक्षा ये नारी! उठो, लड़ो, संभालो, संगर्ष करो, संघटित बनो नारी शक्ति तुम अपने स्व को जानो, अपने न्याय, हक्क, अधिकार से जी कर अपना जीवन सफल बनाओ। यही कहने का मूल उद्देश्य इन लेखिकाओं का यहाँ प्रतीत होता है।

"किस के आगे हाथ पसरोंगे, कौन तुम्हे है देने वाला
अपने न्याय, हक्क, स्वतंत्र की लड़ाई हमें खुद ही लड़ना होगा।।
हमें खुद ही लड़ना होगा।।"

निष्कर्ष :-

उपर्युक्त हिंदी साहित्य में अस्मितामूलक विमर्श आत्मकथाओं का अध्ययन के उपरांत यह कहा जा सकता है कि हिंदी कथा लेखिकाओं ने कविता निबंध आलोचना, पत्रकारिता के साथ–साथ आत्मकथा लेखन में भी अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। जिसमें समकालीन शिक्षित भारतीय नारी की दशा और दिशा की अंतरंग झांकी देखने को मिलता है। फलस्वरूप अस्मितामूलक नारी विमर्श की आत्मकथा विधा पर अध्ययन अध्यापन के साथ–साथ नारी विमर्श का अंतरंग जानने–समझने की दृष्टि से भी शोधकार्य होना आवश्यक जाता है।

अतः हम कह सकते है कि अस्मितामूलक नारी विमर्श की आत्मकथा यह आधुनिक युग की विधा है। बहुतसारी महिला साहित्यकारों ने अपने जीवन की सच्ची कहानी आत्मकथाओं के माध्यम से स्पष्ट कर दिया है। भारत जैसे परंपरावादी देश में तो नारी के लिए एक मुश्किल काम है। ऐसे समाज में रहकर अपने बारे में सब कुछ सत्य लिखना इतना आसान काम नहीं हैं। हमारे संस्कारों में जहाँ पुरुषों के साथ बोलना मना है। यौन संबंधी बातें करना जहाँ पाप समझा जाता है, वहाँ अपने बारे में सब कुछ लिखना इतना आसान काम नहीं है, मगर यह नारी मुक्ति का नया आयाम है। इसी कारण बहुत से अस्मितामूलक आत्मकथाकार लेखिकाओं ने अपने संदर्भ में सही, सत्य घटनाओं को उजागर, स्पष्ट किया है। यही नारी अस्मिता का बदलाव है, जो पुरुष सत्ता को नकारकर एक समानता लाना चाहती है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. मन्नू भंडारी : 'एक कहानी यह भी'।
2. कौसल्या बैसंत्री : 'दोहरा अभिशाप'।
3. डॉ. सुशिला टाकभौरे : 'शिकंजे का दर्द'।
4. मैत्रेयी पुष्पा : 'कुस्तुरी कुंडल बसें', 'गुडिया भीतर गुडिया'।
5. प्रभा खेतान : 'अन्या से अनन्या'।
6. कृष्णा अग्निहोत्री : 'और –और औरत'।
7. कुसुम अंसल : 'जो कहा नहीं गया'।
8. शीला झुनझुनवाला : 'कुछ कहीरू कुछ अनकही'।
9. डॉ. सूरजू प्रसाद मिश्र : 'हिंदी लेखिकाओं की आत्मकथाएँ'।

मोबा.– 9423712924

Email : ranjanasurya2015@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 80–83

प्रेमचंद के कथा साहित्य की प्रासंगिकता

डॉ. रंजना आप्पासाहेब कमलाकर
र. भा. माडखोलकर महाविद्यालय, चंदगड।

शोध सारांश :

कथा–साहित्य का सम्राट मुंशी प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से संपूर्ण भारतीय समाज को अज्ञान, शोषण, अन्याय, अत्याचार से मुक्त करने का प्रयास किया। उनके साहित्य में कृषि जीवन के साथ कृषक जीवन को, दाम्पत्य जीवन के साथ प्रेम जीवन को, ग्रामीण जीवन के साथ शहरी जीवन को, आदर्श के साथ यथार्थ को, पुरानी पिढी के साथ शहरी जीवन को, आदर्श के साथ यथार्थ को, पुरानी पीढी के साथ नई पीढी को, दलित जीवन के साथ नारी जीवन को, सामाजिक जीवन के साथ सांस्कृतिक जीवन को, शोषित जीवन के साथ शोषक को, ऋण की समस्या के साथ धन की समस्या को वाणी देनेवाला कथा साहित्य है। इसमें कोई विशिष्ट समाज ही नहीं समग्र भारतीय समाज इनके कथा साहित्य में अंकित मिलेगा।

वर्तमानकालीन आधुनिक भारतीय समाज की प्रासंगिकता देखने से पता चलता है कि जो उच्चभ्रू समाज बिल्ली और कुत्तों पर हजारों रूपयों का व्यय करता है किन्तु अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए नहीं बल्कि शान–शौकत की खातिर। 'श्वानों को मिलता वस्त्र, दूध, भूखे बालक आकूलाते है। माँ की हठ्ठी को चिपक ठिठूर, बच्चे जाड़ों की रात बिताते है।' इन काव्य पंक्तियों के अर्थ को देखने से मालूम होता है कि भारतीय समाज में विषमता के कोढ़ की बीमारी तब भी थी और आज भी है। प्रेमचंद जी के कथा साहित्य की प्रासंगिकता का सूत्रपात यही से मानना होगा।

दुर्भाग्य से उनका लिखा हुआ 90 साल का पुराना कथा साहित्य उनके पात्र, आशय, विषय, पर्यावरण, प्रसंग, समस्या, अन्याय, अत्याचार आज भी प्रासंगिक लगते है। जातिवाद, विषमता, भ्रष्टाचार, अनाचार, स्वार्थ और कालबाहय परम्पराओं का निर्वाह करने वाले सभी प्रसंग बाहयरूप से नाममात्र के लिए बदले है अंतर्गत उसी प्रकार या उलटा उससे भयावह है।

1. भारतीय किसान समस्या :

भारतीय गाँव और किसानों का रिश्ता अटूट है। ये किसान अज्ञानी, अंधश्रद्वा, रूढी प्रथा परंपरा में ग्रस्त अपने सभी अधिकार से बेखबर, असंगठित और पारंपारिक ही था। उनके कथा साहित्य के बहूत से प्रधान पात्र दलित, शोषित, पिडीत की शिकार ही दिखाई देते है।

प्रेमचंद जानते है कि जब तक किसानों को उनके न्याय, हक्क के लिए जागृत नहीं किया जाता तब तक गुलामी और शोषण से मुक्ति संभव नहीं। गोदान, कर्मभूमी, रंगभूमी, निर्मला, सेवासदन, गबन, कफन, दूध का

दाम, ठाकुर का कुआँ, पूस की रात, घसवाली, मंदिर ऐसे कितने ही साहित्य में उन्होंने किसान जीवन को प्रधान पात्रों के रूप में दर्शाया हैं। इन पात्रों के सोच विचार प्रेमचंद युग की माँग के अनुसार ही लक्षित होते हैं जो आज भी प्रासंगिक लगते है। किसानों में लड़ने की चेतना जगाना इसके मूल में आधारभूत है।

गोदान भारतीय किसान के जीवन के सभी पहलुओं में झाँकने का एक सफल प्रयास है। आजादी से पहले किसानों की बदहाली का प्रेमचन्द ने न केवल चित्रण किया है बल्कि, उसे कारणों की तलाश भी की है। प्रेमचन्द इस उपन्यास में साफतौर पर यह बताते है कि किसान की बदहाली का मुख्य कारण अंग्रेजी की साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी नीति है। आजादी के पचास साल बाद एक बार फिर भारत के किसान होरी बनते जा रहे हैं। ऐसा लगता है कि उनकी स्थिति होरी से भी ज्यादा खराब हो रही है। होरी आत्महत्या नहीं करता पर आज के किसान आत्महत्या कर रहे हैं। किसानों द्वारा की जानेवाली आत्महत्याएँ भारत की आजादी पर भी प्रश्नचिन्ह लगाती हैं। इस लिहाज से प्रेमचन्द का यह उपन्यास आज और भी ज्यादा प्रासंगिक हो उठा है। आज भी गाँव में होरी, धनिया, झुनिया, दातादीन, मातादीन और वेश बदले रायसाहब मिल जाएँगे। 'गोदान' हर उस युग में प्रासंगिक रहेगा, जहाँ किसान दाने–दाने को मोहताज होंगे और उनके उपजाए अन्न पर पलनेवाला शोषक वर्ग ऐशे–आराम की जिन्दगी जी रहा होगा। इस उपन्यास को पढ़कर हमें आज भी अपनी ग्रामीण अर्थव्यवस्था और किसानरों की बदहाली को समझने में मदद मिलेगी। 'गोदान' एक क्लासिक और अमर रचना है, जिसमें न केवल गुलाम भारत की तस्वीर दिखाई पड़ती है बल्कि इसमें आजाद भारत का अक्स भी नजर आता है।

2. दलित जीवन और सामाजिक विषमता :

प्रेमचंद ने अपने साहित्य में दलित जीवन जो सदियों से शोषित पिड़ीत सामाजिक विषमता की चक्की में पिस रहा है उसे दर्शाया है। आज भी यह वर्ग गाँव, शहर में सड़क के किनारे फुटपाथ तथा झुग्गी–झोपडी की जिंदगी जोनेवाले समाज भी कोई कम नहीं है। यह समाज सदियों से समता का सपना देख राह है वह आज भी साकार नहीं हुआ है। प्रेमचंद अपने साहित्य के माध्यम से ऐसे आदर्श समाज की अपेक्षा करते थे। ऐसा स्वराज्य चाहते थे, जिसमें विषमता के लिए जगह न हो। बिलुकल सही है। लेकिन प्रेमचंद कालीन समस्याओं का वर्तमानकाल में भी खत्म न होना प्रेमचंद के लेखन तथा चिंतन को निरंतर प्रासंगिक सिद्ध करता है। उनके समय से आज तक।

प्रेमचंद जीतने श्रेष्ठ, आदर्श, सम्राट, लोकप्रिय और पठनीय कलाकार है उतने ही व्यंग्यकार भी है। उनके साहित्य में कितने ही व्यंग्य विषयों के माध्यम में समाज की पोल खेली है। शासन, प्रशासन, पुलिस, सेठ–साहुकार, महाजनी, सभ्यता, परंपरा, सामाजिक तथा धार्मिक रूढि परंपराएँ, विषमता, जातिवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद से लेकर वर्चस्ववादी समाज व्यवस्था शोषण, शिक्षण, प्रेम, चुनाव और ऊँच–नीच के भेदभाव जैसे कई विषय हैं जो भारतीय जमीन के अभिन्न अंग मानने होंगे। प्रेमचंद के समय ही नहीं बल्कि आज भी हमारे यहाँ बिरादरी के बाहर शादी–ब्याह करने पर, प्रेम–विवाह, आंतर्जातीय विवाह करने पर अपनी संतान का कत्ल करनेवालों की कमी नहीं।

सिलिया चमारिन युवती से प्रेम करनेवाले ब्राह्मण युवक मातादीन को जब चमार बनाया जाता है तब मातादीन की बिरादरी बेचैन हो जाती है। मातादीन को शुद्ध करने के लिए काशी के ब्राह्मण पंडित उस पर होम,

हवण, पूजा, श्लोक, मंत्रोच्चार करके उसे गोबर खिलाते है और गोमूत्र पिलाकर उसके शरीर पर गोमूत्र छिड़काते है। प्रेमचंद का यह व्यंगपूर्ण कथन पूरे भारतीय समाज की मानसिकता पर कड़ा प्रहार करता है। जिस समाज में गाय, बैल, भैस, कछुआ, चूहा, कुत्ता, घोडा, हाथी जैसे जानवरों को भी पवित्र मानकर मंदिरों में स्थान दिया। लेकिन समाज के दलित वर्ग को उससे वंचित एवं उपेक्षित रखा। आदमी के स्पर्श से अपवित्र समझे जानेवाले गोबर और मूत्र से उसे पवित्र कराने का करिश्मा भारतीय भूमि पर ही हो सकता है। ऐसे विषय की प्रासंगिकता आज भी कोई कम नहीं।

उस समय प्रेमचंद गांधी के अछूतोद्धार कार्यक्रम से प्रभावित होकर उन्हें 'मंदिर' कहानी लिखी। इस कहानी की नायिका सुखिया का यह अपराध था कि वह अपने एकमात्र बीमार बच्चे को इस उम्मीद के साथ ठाकुर को छुआने मंदिर के अंदर चली गई कि उसके स्पर्श से बच्चा ठिक हो जाएगा। लेकिन पंडित–पुरोहित की दृष्टि में सुखिया ने 'अनर्थ कर दिया' था जो मंदिर में जाकर ठाकूर जी को भी भ्रष्ट कर आई' इससे उत्तेजित होकर ठाकूर ने सुखिया को जोर से धक्का दिया। उसके हाथ से छूटकर बच्चा बर्श गिर गया और मर गया। मंदिर भगवान दलितों के नही हो सकते। इस प्रकार की प्रासंगिकता के उदाहरण आज भी मिलते है।

प्रेमचंद जानते थे कि सवर्ण समाज को दलित नारी ने यौन–संबंध बनाने से तथा अपने काम की तुष्टी करने से कोई परहेज नहीं होता। लेकिन परहेज होता है उसके साथ शादी करने से। इस समाज के दलित नारी के साथ बिस्तर सजाने में आपत्ती नहीं, आपत्ति है उसके हाथ का बनाया खाने, पीने से, प्रेमचंद के दलित पात्र हरकू और उसके सारे साथी जानते है कि ब्राह्मण लाख कुकर्म करे परंतु भोजन की पवित्रता की आड उसे अपनी बिरादरी का बना दिया। मातादीन को चमार बनाने पर ब्राह्मण बेचैन हो उठते हैं। 'गोदान' की यह घटना उस दलित को साहसी विरोध और विद्रोह रूप में प्रस्तुत करती है जो आज भी दुर्लभ है। तत्कालीन समाज में प्रेमचंद द्वारा लिखित समाज का साहस निश्चय ही अनुपम और अनोखा माना होगा। सदियों से मौन–मूक रहकर अन्याय–अत्याचार को बर्दाश्त करने की यह परंपरा दलितों में पूर्णतः खंडित हुई है यह दावा नहीं किया जा सकता। धनियों, सवर्णों, अभिजनों, महाजनों, एवं सामंता की जातिवादी भारतीय समाज व्यवस्था में जीनेवाला दलित समाज कुछ हद तक आज भी, मार–पीट, शोषण और अन्याय–अत्याचार सहकर चुप हो जाने को विवश है। 'गोदान' की उपर्युक्त घटना वर्तमान दलित समाज के लिए आत्मबल एवं साहस दिलानेवाली घटना माननी होगी। इसकी प्रासंगिकता आज और भी प्रखरता के साथ प्रतीत होती है।

निष्कर्ष :

वस्तुतः प्रेमचंद के कथा साहित्य का अध्ययन करने पर यह स्वीकार करना होगा कि उनका कथा साहित्य का आशय, विषय, प्रसंग आज भी सभी दृष्टि से प्रासंगिक है। हमें उस दिन की प्रतिक्षा है जिस दिन प्रेमचंद के कथा साहित्य में वर्णित विषय के अनुसार परिवर्तन की अपेक्षा है। लेकिन आज की हमारी पीडा का विषय यह है कि उसकी प्रासंगिकता दिनोदिन वृद्धि होती जा रही है। जिन समस्याओं का चिंतन और चित्रण प्रेमचंद के कथा साहित्य में बार–बार किया गया है, वह कम होने की अपेक्षा बढती गई। खासकर जातियता, सामाजिक विषमता, राजनीति, प्रशासनिक पतन, स्वार्थधता, दलित शोषण नारी के प्रति देखने का दृष्टिकोण एवं मानसिकता आदि इस देश में नष्ट होने के बदले पुष्ट होते जा रहे है। अतः यह व्यथा, समस्या, संवेदना कालबाहय होने का न नाम ले रहे है और न इसके लेखक प्रेमचंद। शोषित किसानों का भूख से बेहाल होकर मजबूर होना दम

तोड देना, आत्महत्याएँ कर देना। जातिवादी सामाजिक विषमता का प्रेमचंदकालीन भारतीय समाज न आज भी बदला है और न आंतर्जातीय विवाह को सहजता से स्वीकार कर रहा है। प्रेमचंद के भारतीय समाज व्यवस्था विषयक परिनिरीक्षण का गहन चिंतन, विचार मंथन का और उनकी दृष्टि एवं दर्शन का परिचय मानना पड़ेगा। उसमें सदियों से चली सड़ी–गली कालबाहय परंपराओं में परिवर्तन की कामना आधारभूत कित्नु सुविधा भोगी समाज इस परिवर्तन को तैयार नहीं, फिर दुविधा भोगी समाज भले ही तैयार हो। प्रेमचंद के साहित्य के परिवर्तनवादी विचारधारा जब संपूर्ण समाज स्वीकार करेगा तब उनके साहित्य के प्रयोजन का सपना साकार होगा। हमे प्रतिक्षा है उस दिन की जो करवट बदलनेवाले समाज में परिवर्तन होगा और मानवता के मसिहा प्रेमचंद के कथा साहित्य के प्रयोजन की पूर्ति करेगा।

संदर्भ :

1. प्रेमचंद ग्रथ की प्रासंगिकता – अमृतराय।
2. गोदान – प्रेमचंद।
3. हिंदी गद्य साहित्य – डॉ. रामचंद्र तिवारी।
4. हिदी साहित्य का इतिहास – रामचंद्र शुक्ल।
5. प्रेमचंद और अछूत समस्या – कांति मोहन।
6. मानसरोवर भाग – 1,2,3,4,5,8 प्रेमचंद।

पत्ता – डॉ. रंजना आप्पासाहेब कमलाकर,
'राजगृह', संकल्पनगर, भडगांव रोड, गडहिंग्लज.
प्लॉट नं. 1544, ता. गडहिंग्लज, जि. कोल्हापूर – 416 502.

मोबा. : 9423712949

ई–मेल : ranjanasurya2015@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 84-88

वर्तमान युगीन 'स्त्रीवादी' सिद्धांत

डॉ. रंजना आप्पासाहेब कमलाकर
हिंदी विभाग, र.भा. माडखोलकर महाविद्यालय, चंदगड।

शोध सारांश –

आज हर जगह पितृसत्ता विराजमान है। हमारे धर्मों नियमों, रिवाजों के पीछे पितृसत्ता के सिद्धांत है। आज भी सभी धर्मों की व्याख्या, प्रचार, प्रसार, संचालन का अधिकार पुरुषों के हाथ में हैं। वर्तमान युग में भी पुरुषसत्ता सामाजिक, आर्थिक, कानून, व्यवस्था पर हावी है। प्रचार माध्यमों में भी राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक इन सभी व्यवस्था पर पुरुषों का नियंत्रण हैं। वर्तमान युग में स्त्रीवाद के कारण सामाजिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक दृष्टि से चिंतन का विषय बन गया है। पितृसत्ता को चुनौती दी जाने लगीं है। इसी से स्त्रीवादी सिद्धांत सामने आने लगा है। जैसे उदारवादी, मार्क्सवादी, समाजवादी, रेडिकल, दलित, पर्यावरणवादी आदी। हर एक पुरुष ने स्त्री के गुलामी का कारण अपने–अपने तरीके से खोजा। घर, परिवार से लेकर बाजार तक नारी पर अनेक प्रकार के अन्याय अत्याचार हो रहे है। हर असंतोष का कारण स्त्री को ही माना जाता है। स्त्री को जीवनभर पुरुष पर ही निर्भर रहे इस प्रकार की व्यवस्था बनायी गई। उसका आदर, मान, सन्मान, अधिकार, अस्तित्व, स्व इच्छा, आकांक्षा सभी के सभी पुरुष के हाथ में है। 'स्त्रीवाद' अर्थात् जो स्त्री आदर, मान, सन्मान की मांग करती है यही विचारधारा याने 'स्त्रीवाद' है। आज स्त्री अपने पर अन्याय, अत्याचार, शोषण के खिलाफ आवाज उठा रही है, क्रांति कर रही है, संविधान ने समानता का अधिकार दिया है। इसी आधार पर हमारे देश की महिला प्रधानमंत्री हो चुकी है, फिर भी राजनीति में स्त्रियों की सहभागिता के संबंधित आँकउे अत्यंत निराशाजनक है। आज स्त्रीवादी औरतें, दहेज, स्त्रियों के प्रति हिंसा, सामुहिक बलात्कार, समान मजदूरी, पक्षपातपूर्ण वैयक्तिक कानून, स्त्रियों के दमन के लिए धर्म का प्रयोग जन माध्यमों में स्त्रियों का नकारात्मक चित्रण ये सभी मुद्दे स्थानीय है। आज भारत में रुढीवादी, ब्राह्मणवादी समूह पितृसत्तात्मक छबियों को पुर्नजीवित कर रहे है। इन सबके खिलाफ आवाज उठाने का प्रयास स्त्रीवाद कर रहे हैं। इसिलिए 'स्त्रीवाद' की आवश्यकता है। आधुनिक स्त्रीवाद का जन्म फ्रांन्सीसी क्रांति और इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति से निकलें विचारों से प्रभावित है। उदारवाद, बुद्धवाद, मार्क्सवाद, समाजवाद, मनोविश्लेषण वाद, स्वच्छंदतावादी चिंतन का सहारा लेकर स्त्रीवाद सिद्धांतकार एक विशाल और परिष्कृत बौद्धिकता विकसित करने में कामयाब रहे।

स्त्रीवाद का अर्थ और परिभाषा उसका रूप समाज और समय के अनुसार बदलता रहता है। उसका मतलब और उसका रूप समाज की संस्कृति, वहाँ आर्थिक, सामाजिक सच्चाइयों लोगों की समझा और चेतना पर निर्भर है। स्त्रीवाद के लिए फेमिनिज्म अर्थ पहले लगाया जाता था लेकिन आज उसका अर्थ बदलकर

उदारवादी, नारीवाद, एक सामाजिक चिंतन, संघर्ष, समानता की तलाश ऐसे विभिन्न अर्थों से जोड़ा जाता है। अतः आज के नारीवाद के अंतर्गत घर के भीतर स्त्री पर पुरूष के दबाव और अधिकार के विरूद्ध संघर्ष, कार्य स्थल में उनकी गिरी हुई स्थिति, समाज, संस्कृति और धर्म के द्वारा दिए गए नीचे दर्जे के विरूद्ध संघर्ष। बच्चा पैदा करने और पालने के साथ–साथ उत्पादन के विरूद्ध दोहरे बोझ के विरूद्ध संघर्ष भी शामिल है। इसके अलावा स्त्रीवाद इस धारण को भी चुनौती देता है कि स्त्री और पुरूष के शारीरिक भिन्नता है, इसलिए उनके कार्य, स्थिति, सत्ता, स्वभाव में भी निश्चित फर्क है। आज स्त्रीवादी के प्रति देखने का दृष्टिकोण पूरी तरह से बदल चुका है। आज स्त्री पर होने वाले अनेक अन्याय, अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठाने का काम स्त्रीवाद कर रहा है। स्त्रीवाद आज अनेक संघर्षों, आंदोलनों का हिस्सा बन गया है।

1. नारीवादी सिद्धांत :

'नारीवाद' यह कोई वैज्ञानिक, न्यूटन या पायथागोरस सिद्धांत के अनुसार नहीं है। नारीवाद संबंध मूलतः परिवार और पितृसत्ता से माना जाता है। स्त्री का सबसे अधिक उत्पीडन उसके परिवार में ही होता है। नारीवाद पर वैचारिकता, चिंतन, मनन, परिवर्तन करने वाले विचारवंतों का माना है कि महिला सशक्तीकरण के रास्ते में पितृसत्ता सबसे बड़ी बाधा है। इसके लिए हमें पहले उदारवादी नारीवाद, मार्क्सवादी, नारीवाद, समाजवादी नारीवाद, रेडिकल नारीवाद, दलित नारीवाद पर्यावरणवादी नारीवाद इन सभी सिद्धांतों पर हमें पहले सोचना चाहिए।

2. उदारवादी नारीवाद :

आज के युग को हम प्रबोधन का युग या लिपिक का युग मानते है। उदारवादी नारीवाद इसी युग की उपज है। इस युग में नारी को सभी दृष्टियों से परिवर्तीत देखना चाहते है। नारी को वैयक्तिकता से लेकर सार्वजनिक जीवन तक मानवता की दृष्टि से आजादी की मांग की है। उदरवाद की बुनियाद बने आजादी, समानता, न्याय के विचार सत्ताहीनता और चार दिवारों में बंद महिलाओं के वास्तविक जीवन के अनुभवों से बिल्कुल विपरीत थे। महिलाओं के बारे सभी गलत धारणाओं को ठीक करने में शुरुवाती उदरवादी नारीवादियों, विशेष कर मेरी वलस्टान क्राफ्ट ने अपनी पुस्तक 'विन्डीकेशन ऑफ द राइटस ऑफ विमेन' लंडन में प्रकाशित पुस्तक में महिला अधिकारों की जोरदार ढंग से माँग की। उसके बाद हैरिपट टेलर मिल, जॉन स्टुअर्स मिल इन्होंने 'द सब्जेक्शन ऑफ विमेन' पुस्तक में उन्होंने काम और परिवार की पारंपारिक प्रणालियों पर सवाल उठाया। महिलाओं की मुक्ति का समर्थन करते हुए महिलाओं को मानवजाति का सदस्य बनाकर पुरुषों के समान प्राकृतिक अधिकारों की हकदार बताया और भी सुधारणावादी विचारवंतों ने अपने चिंतन के आधार पर अपनी किताब और वैचारिकता प्रकट करते हुए कहा की सुधारवादी कल्याणकारी नीतियों के जरिये परिवर्तन निश्चित हा सकता है।

3. मार्क्सवादी नारीवाद :

मार्क्सवादी नारीवाद मार्क्स विचारों पर आधारित है। एगल्स ने अपनी पुस्तक 'ओरिजन ऑफ द फॅमिली प्राईवेट प्रॉपर्टी एण्ड द टेस्ट' में पितृसत्ताक के आरंभ के बारे में महत्वपूर्ण विचार पेश किया। उनके विचारानुसार स्त्रियों की अधिनता की शुरुआत व्यक्तिगत संपत्ति की शुरूआत के साथ हुई। उनके अनुसार तभी विश्व इतिहास में औरतों की हार हुई। नारी मुक्ति तब तक संभव नहीं थी जब तक महिलाएँ घरेलू काम छोड़कर घर के बाहर

मजदूरी मिलने वाले काम को नहीं स्वीकारती। उनका कहना है वर्ग विभाजन और स्त्री अधीनता में ऐतिहासिक तथ्य है। एक समय था जब वर्ग और लिंग के आधार पर कोई विभाजन नहीं था। के आधार पर कोई विभाजन नहीं था। एंगल्स के अनुसार राजसत्ता और और शासन तंत्र के साथ एक विवाही परिवार पितृसत्तात्मक परिवार में बदल गया। औरत का श्रम भी व्यक्तिगत सेवा बन गया, पत्नी एक दासी बन गई, जिसे सामाजिक उत्पादन के क्षेत्र में बाहर निकाल दिया। पुरूषसत्ताक के व्यवस्था केंद्र में काम चलने लगा।

मार्क्सवादी विचार को नारीवादियों के लिए बेबेल की पुस्तक 'वूमेन एण्ड सोशलिजम' का काफी महत्व रहा। इन्होंने महिलाओं की समानता के अधिकार की स्वीकृति दी थी। उनके मतानुसार, जिस तरह मजदूरों को पूँजीपति वर्ग से उम्मीद नहीं लगानी चाहिए उसी तरह स्त्रियों को पुरूषों की तरह से कोई आशा नहीं बाँधनी चाहिए। मार्क्सवादी सिद्धांत को सोवियत रूस में क्लारा जेट किन, रोजा लक्जम वर्ग, गर्डा लर्नर आदि सिद्धांतकारों ने स्पष्ट किया कि पूँजीपति जिस तरह अतिरिक्त मूल्य को देते वक्त मजदूरों का शोषण करते है, उसी तरह पुरूष महिलाओं के घरेलू श्रम का कुछ भी मोबला दिए बिना उनसे लाभान्वित होते है और उनका शोषण करते रहते है।

समाजवादी नारीवाद –

समाजवादी नारीवाद का सिद्धांत समाज में नारी व्यवस्था को लेकर नयी सामाजिक वैचारिकता को खड़ा करना चाहती है। उनका उद्देश्य है स्त्रियों को स्वतंत्र समूह की रचना करना और पूँजीवाद का विनाश के साथ पुरुष प्रधान वर्चस्व के खिलाफ भी संघर्ष के आवाज का समर्थन हो। औरतों की श्रम शक्ति पर मर्दो का कब्जा ही पितृसत्ता का भौतिक आधार है। समाजवादी नारीवादियों की यह माँग थी कि महिलाओं की दयनीय स्थिति, परंपरागत लिंगभेद, पूँजीपतियों द्वारा नारी का शोषण, अन्याय, अत्याचार, बलात्कार आदी का विरोध करके विश्लेषण करके सिद्धांत का प्रदर्शन किया जाए।

4. रेडिकल नारीवाद-उग्र नारीवाद :

सत्तर के दशक में रेडिकल नारीवाद का अमेरिका और इंग्लैंड में उदय हुआ। उदार नारीवाद की प्रतिक्रिया के तौर पर तथा लिंगवाद के खिलाफ आक्रोश के तौर पर यह आंदोलन उभरा। नई भौतिकवादी दृष्टिकोण पर होने वाली शांति ही सच्ची और असली क्रांति होती है। स्त्री की शारीरिक रचना ही उसकी आधीनता की खोज होती है। रेडिकल नारीवाद पुरुष संस्कृति के मूल्यों को चुनौती देता है। पुरुष सत्ता आज भी नहीं चाहत कि महिलाएँ पुरुषों के आगे निकल जाए या उनका अनुकरण करे। नारी का सम्मान करने की अपेक्षा उनको दासी बनाना ही उन्हें पसंद है। रेडिकल नारीवाद का मूल नारा स्त्री–पुरुष समानता है। नारी पुरुष के गुलामी रुपी पिंजरे से आजादी चाहती है। नारी अपने हुन्नर, स्वातंर्त्य की विकास चाहती है। नारी अपने कमजोरी और सौंदर्य की बुरके को हटाकर समानता के रुप में स्वतंत्र जीना चाहती है।

5. दलित नारीवाद :

आज का दलित समाज, नारीयाँ मनुवादियों के षड्यंत्रों के कारण हर क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है। दलित महिलाओं के जीवन के प्रति दृष्टिक्षेप किया तो यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि उनका जीवन शोषण, उत्पीडन, अत्याचार, अन्याय और अभावों से परिपूर्ण है। दलित समाज सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक सभी दृष्टियों से पिछड़ा है। निरक्षरता, अशिक्षा के कारण रुढी, प्रथा, परंपरा, अंधविश्वास, पाखंडी से पूरी तरह से

जकडी हुई है। साठोत्तरी कालखंड में ब्लैक पैंथर आंदोलन के आधार पर भारत में दलित पँथर आंदोलन की शुरुवात हुई। सन 1975 में नारीवादी आंदोलन के द्वारा दलित महिलाओं के प्रश्न सामने आए। इस धारा ने मनुस्मृति पर जोरदार हमला किया। दलित महिलाएँ दोहरे शोषण की शिकार होती है। दलित नारीवाद में कौशल्या बैसंत्री, शर्मिला रेगे, कुमुद पावडे, सुशिला टाकभौरे, रजनी तिलक, पंकज गुप्ता, छाया दातार आदी का नाम लिया जाता है।

6. पर्यावरणवादी नारीवाद :

70 के दशक में उत्तराखंड के सुदुरपूर्व गांवो में ग्रामीण महिलाओं ने पर्यावरणीय नारीवाद आंदोलन चलाया जो 'चिपको आंदोलन' नाम से प्रसिद्ध है। खेलकुद का सामान अन्य लकडी के फर्निचर बनाने के लिए जब ठेकेदारों की टिम को जंगल नहीं काटने दिया। ये महिलाएँ पेड़ों से चिपककर जंगल बचाने का समर्थन करती है। ये जंगल यहाँ के पेड़–पौधे हमारी माँ है। पहले हमें काटों, फिर पेडों को काँटो जंगलों की रक्षा के लिए देश के और भागों में भी आंदोलन हुए। 'नर्मदा बचाव आंदोलन' में जंगल, जमीन, मैदान, खेत, गाँव, घर सब इसमें डूब जाएँगे। सभी विस्थापित हो जाएँगे, साथ ही धरती पर भी इन बांधों का असर कुछ वर्षों तक रहता है। इन्हीं आंदोलनों ने पर्यावरणवादी नारीवाद को जन्म दिया। आधुनिक युग में वैज्ञानिक विकास का प्रभाव मनुष्य जीवन पर अधिक बढता गया। इसका परिणाम केवल प्रकृति का संहार ही नहीं बल्कि प्रकृति का अन्य शोषण भी करने लगा। आज जंगल फस्त होकर काँक्रिटीकरण हो गया है। इकोफेमिनिजम की प्रमुख जनक है – रोजमेरी, रैडफर्ड रुदर, वंदना शिवा, सूसन ग्राफिन, इवोने गेबारा, ग्रेटा यार्द, पौला गुन, सुन आईली, पार्क आदि। विचार के क्षेत्र में पर्यावरणवादी नारीवाद ने वैज्ञानिक विश्वदृष्टि और धर्म के बीच शत्रुता दिखाने वाले आग्रहों को भी उजागर किया। धर्मशास्त्र, विज्ञानवाद ने भौतिक और आध्यात्मिक को एक–दूसरे के खिलाफ खड़ा कर दिया, जिससे मानवता को काफी हानि हुई। स्त्री और प्रकृति का अटूट रिश्ता होता है। पर्यावरणवादी नारीवाद एकमात्र स्त्री को ही अपने स्त्रियोचित गुणों के कारण पर्यावरण और परिस्थिति का रक्षक मानती है। इसमें स्त्री मुक्ति के अन्य सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक पहलुओं की उपेक्षा करती है।

7. सांस्कृतिक नारीवाद :

सांस्कृतिक नारीवाद वह विचारधारा है, जो स्त्री के स्वभाव या नारीत्व को पुरुष के लिए पुनरू इस्तेमाल करना चाहता है। वह नारी को पितृसत्ता से इन अर्थों में पीडित बताता है कि वह पुरुषोचित मूल्यों की शिकार हो रही है। जबकि उसे स्त्रियोचित्त मूल्यों को अपनाना चाहिए था। स्त्रियोंचित मूल्यों को प्रधानता देने के लिए ही स्त्री की विचारधारा का पोषण होना चाहिए। चूँकि साररुप में स्त्री के पास कुछ ऐसे गुण है जो केवल स्त्री की विशेषता है और जिन्हें स्त्री ही विकसित कर सकती है। इसलिए संस्कृतिवाद की नजर में केवल इन स्त्री गुणों को ही विकसित किया जाना चाहिए और उन्हें ही महत्वपूर्ण समझा जाना चाहिए। स्त्री–पुरुष के समान अधिकार की मांग करते हुए जैविक भिन्नताओं के अलावा अन्य सभी आंतरिक गुणों के आधार पर ही स्त्री की अलग पहचान दिखायी देती है। इन्हीं के अनुसार नारी अपने नारीत्व के गुणों पर ध्यान दे और उनका विकास करें, तो ज्यादा उचित होगा। नारी को अपने मातृत्व गुण पर गर्व करना चाहिए लेकिन महिमा मंडन नहीं करना चाहिए। क्योंकि अभी तक हम यही करते आए है और भारतीय शास्त्र–पुरण में तो इसी मातृत्व की चर्चा है।

निष्कर्ष –

इसप्रकार स्त्रीवाद याने पुरुष के विरुद्ध स्त्रीवाद नहीं है तो स्त्री अपने सभी प्रकार के स्वत्व के अधिकार की माँग है। स्त्रीवादियों का मूल उद्देश्य है मौजूदा व्यवस्था में औरतों को समाज में सामाजिक संबंधों में परिवर्तन चाहिए। स्त्रीवाद याने पितृसत्ता, पुरुषसत्ता व्यवस्था, ताकतों का विरोध है। अगर मर्दानगी का अर्थ है स्त्रियों पर रौब जमाना, धौस जमाना, हिंसात्मक आक्रमण का व्यवहार करना, मारना–पिटना, औरतों को अपनी संपत्ती, हक्क समझना, उसे कम, निकृष्ट, हिन, गवार समझना है, तो बेशक यह मर्दानगी के खिलाफ है। जबरदस्ती में कैसी आयी मर्दानगी! जो मर्द, पुरुषसत्ता विचारधारा बनाये रखना चाहता है, उनकें खिलाफ है – स्त्रीवाद....! स्त्रीवाद एक लंबी, सतत चलने वाली यात्रा है। स्त्रीवाद विचारवंतों के अनुसार यह एक बहुअर्थी प्रक्रिया है। यह केवल संघर्षों तक सिमित नहीं है तो विविध परिवर्तनकारी लंबी नैतिक जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है।

संदर्भ ग्रंथ –

1. रमा शर्मा, एम. के. मिश्रा – भारतीय नारी : वर्तमान समस्याएँ और भावी समाधान।
2. डॉ. शरणकुमार लिंबाले – दलित साहित्य : विद्रोह और वेदना।
3. डॉ. रामचंद्र मुंजाजी भिसे – भारतीय समाज एवं महिला सशक्तीकरण।
4. हंस पत्रिका, विशेषांक – समकालीन नारी विमर्श।
5. शर्मा, डॉ. सुरेंद्र – हिंदी साहित्य साहित्य में स्त्री चेतना।
6. दोशी एस. एल. – भारतीय सामाजिक विचारक।
7. सिंह जे. पी. – आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन।

Email : ranjanasurya2015@gmail.com

मोबाईल 9423712949

तंदरंदेंनतलं2015 / हउंपस.बवउ

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 89–92

आदिवासी जीवन का कथात्मक पुनर्पाठ : हिंदी उपन्यासों की दृष्टि से

डॉ. एकता
सहायक आचार्य, ए.वी कॉलेज उस्मानिय विश्वविद्यालय, हैदराबाद।

प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य में उपन्यास एक ऐसा माध्यम रहा है जिसने समाज के विविध वर्गों, समुदायों और जीवन स्थितियों का यथार्थपूर्ण चित्रण किया है। अब तक हिंदी उपन्यासों की मुख्य धारा प्रायः शहरी मध्यमवर्ग, किसान जीवन या औपनिवेशिक परिस्थितियों से प्रभावित रही। किंतु इक्कीसवीं सदी में आदिवासी समाज और उनका जीवन साहित्यिक विमर्श के केंद्र में आने लगा। आदिवासी जीवन सदियों से उपेक्षित और हाशिए पर रहा है। उनके संघर्ष, उनकी संस्कृति और उनके जीवन–मूल्यों को मुख्यधारा के साहित्य में बहुत कम स्थान मिला। आधुनिक उपन्यासकारों ने इस शून्य को भरने का प्रयास किया है और आदिवासी अस्मिता, विस्थापन, शोषण तथा उनके प्रतिरोध की कथाओं को सामने रखा है।

यथार्थ यह है कि आदिवासी जीवन केवल पिछड़ेपन की कहानी नहीं है, बल्कि वह मानवता के सबसे प्राचीन और सशक्त जीवन–दर्शन को भी व्यक्त करता है। आदिवासी संस्कृति में प्रकृति–पूजा, सामूहिकता और लोक–संस्कार की ऐसी धारा है, जो आधुनिक सभ्यता की आत्मकेंद्रित प्रवृत्तियों पर प्रश्नचिह्न लगाती है। हिंदी उपन्यासों में जब आदिवासी जीवन का कथात्मक पुनर्पाठ होता है तो यह केवल साहित्यिक प्रक्रिया नहीं रह जाती, बल्कि सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक पुनर्संरचना का विमर्श बन जाती है।

बीज शब्द :–

आदिवासी जीवन, कथात्मक पुनर्पाठ, हिंदी उपन्यास, विस्थापन, शोषण, अस्मिता, संस्कृति, प्रतिरोध, न्याय।

मूल आलेख :

१. आदिवासी जीवन और हिंदी उपन्यास :

आदिवासी समाज की वास्तविकताओं को साहित्य में स्थान देने की कोशिशें पहले भी हुईं, परंतु हाल के दशकों में यह विमर्श ज्यादा मुखर होकर सामने आया। महुआ माजि के उपन्यास "मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ" में झारखंड के आदिवासी समाज का जीवंत चित्रण है। यह उपन्यास दर्शाता है कि कैसे आदिवासी केवल शोषण और गरीबी की कहानियों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि उनके पास गहन सांस्कृतिक चेतना और प्रकृति से गहरे

रिश्ते की समझ है।

रामधारी सिंह दिवाकर का उपन्यास "अग्नि–रेखा" आदिवासी जीवन में व्याप्त विस्थापन और जमीन की लड़ाई को सामने लाता है। यहाँ आदिवासी व्यक्ति केवल शिकार या लोक–नृत्य करने वाला चरित्र नहीं है, बल्कि वह अपने अस्तित्व और अधिकारों के लिए संघर्षरत मनुष्य के रूप में उपस्थित होता है।

शिवप्रसाद सिंह लिखित 'शैलूष' यह आदिवासी नटो के जीवन पर आधारित उपन्यास है इसमें जीवन के अंर्तविरोध, संघर्ष, शोषण आदि का चित्रण हुआ है। संजीव लिखीत 'जंजल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास आदिवासी थारू जन–जाति और डाकू समस्या जो केंद्र बनाजर कथानक को प्रस्तुत किया है। इसमें आदिवासी के जीवन संघर्ष और शोषण को उजागर किया है। यह उपन्यास सफेद पेशा मंत्रियों की पोल खोलता है। इसके साथ सामाजिक एवं आर्थिक विषमता, सामाजिक मूल्यहिनता, अवसरवादिता को प्रस्तुत भी करता है।

२. विस्थापन और संघर्ष की कथा :

हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जीवन का चित्रण केवल सांस्कृतिक नहीं, बल्कि राजनीतिक भी है। "धरती आबा" (महाश्वेता देवी का प्रभाव हिंदी लेखन पर पड़ा) जैसे संदर्भ आदिवासी प्रतिरोध की कथा को मजबूति देते हैं। हिंदी में "अद्रक के फूल" (चित्राभानु गुहा) जैसे उपन्यासों में खनन–नीतियों और पूँजीवादी विकास के नाम पर आदिवासियों के विस्थापन की त्रासदी उजागर होती है।

महुआ माजि : **'धरती पर सबसे प्राचीन सभ्यता के वंशज आज अपनी ही जमीन पर पराए बना दिए गए हैं।'**

यह उद्धरण बताता है कि आदिवासी जीवन की पीड़ा केवल भूख और गरीबी की नहीं है, बल्कि अपनी भूमि और संस्कृति से बेदखली की है।

३. संस्कृति और लोक–जीवन का पुनर्पाठ :

हिंदी उपन्यासों में आदिवासी लोक–जीवन का वर्णन विशेष महत्व रखता है। "मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ" में आदिवासी गीत, नृत्य, त्यौहार और विश्वास प्रणाली का गहन चित्रण मिलता है। इसी प्रकार "जंगल जहाँ शुरू होता है" (कभी–कभी हिंदी आलोचना में चर्चित) उपन्यास में जंगल और आदिवासी जीवन को आधुनिक सभ्यता की तुलना में अधिक मानवीय और पर्यावरण–संवेदनशील रूप में प्रस्तुत किया गया है।

यह पुनर्पाठ हमें यह समझने के लिए बाध्य करता है कि आदिवासी समाज की संस्कृति पिछड़ेपन का प्रतीक नहीं है, बल्कि उसमें आधुनिक सभ्यता से अधिक समन्वय और प्रकृति–मैत्री भाव निहित है।

हिमांशू जोशी लिखित 'अरण्य' कुमाँचल पहाडी आदिवासियों के जीवन पर लिखा एक सशक्त उपन्यास है। जिसमें आदिवासियों की गरीबी तथा त्रासदी का चित्रण मिलता है। रांघेय राधव लिखित 'कब तक पुकारू' उपन्यास में जामींदार और करनटों का संघर्ष है। इसमें आदिवासी लोग जमीदार रावसाहब का विरोध करते है पुलिस की मनमानी, जबरदस्ती के कारण उन्हें आंदोलन करना पड़ता है।

४. आदिवासी अस्मिता और प्रतिरोध :

आदिवासी जीवन का सबसे महत्वपूर्ण आयाम है उनकी अस्मिता और उसका संरक्षण। हिंदी उपन्यासों ने आदिवासियों के प्रतिरोध को भी कथाओं का हिस्सा बनाया है। भूमि अधिग्रहण, खनन परियोजनाओं और कारपोरेट पूंजीवाद के विरुद्ध आदिवासियों का संघर्ष एक नई चेतना पैदा करता है।

उपन्यासकार महुआ माजि के शब्दों में :

'वह जंगल उनका घर है, उनकी आत्मा है, उसे उजाड़ना उनके जीवन को उजाड़ना है।'

यह कथन स्पष्ट करता है कि आदिवासी प्रतिरोध केवल आर्थिक संघर्ष नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और अस्तित्व का संघर्ष है।

संजीव कृत उपन्यास जंगल जहाँ शुरू होता है आदिवासी समुदाय पर आधारित एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में भारत–नेपाल सीमा पर स्थित घने वनों में रहने वाले 'थारू आदिवासियों का वर्णन किया गया है। अंग्रेजों की गुलामी को न स्वीकार करने के कारण अंग्रजों ने इन्हें चोर, डाकू आदि की संज्ञा दे दिया था। इस उपन्यास में एक ईमानदार पुलिस अधिकारी, 'कुमार' का सामना इन थारू आदिवासियों से होता है तो उन्हें इनके अनैतिक कामों का पता चलता है।

ईमानदारी के साथ कुमार डाकुओं को पकड़ना चाहता है, किन्तु भ्रष्ट शासन प्रणाली में उसे अपमान का सामना करना पड़ता है। मजबूरी के चलते आम इन्सान भी डाकू बन जाते है जिसे हम इस उपन्यास के पात्र 'काली' य 'परशुराम के माध्यम से देख सकते हैं। ये महिलाओं को बेचने का काम करते–करते हथियार तक बेचने लगते हैं। लेकिन इन सभी के पीछे जो प्रमुख कारण उभर कर आता है वह है शिक्षा। यदि इन्हें शिक्षा का औजार मिल जाए तो ये वर्ग भी अपने आप को एक उच्च पद पर आसीन कर सकते है तथा सम्मानपूर्वक जीवनयापन कर सकते हैं।

इस उपन्यास में पुलिस प्रशासन के व्यवस्था पर भी करारा प्रहार किया गया है। किस प्रकार पुलिस प्रशासन थारू आदिवासियों को मार–मारकर उन्हें डाकू बना देता है। तथा विद्रोही बताकर उनका एनकाउण्टर करवा देता है। पुलिस प्रशासन के प्रति जो 'काली' के मन में गुस्सा भरा है वो कुमार से इस प्रकार व्यक्त करता है–

''अव्वल तो मुकदमा चलेगा ही नहीं, एनकाउण्टर के नाम पर मारकर फोटो खींचवाने का शौक हो तो अलग बात है। दूजे मुकदमा और सजा के बाद मेरी जाति नहीं बदली जाएगी, हालात नहीं बदल जायेंगे। मैं फिर उसी दल-दल में सहूँगा।''

निष्कर्ष :

हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जीवन का कथात्मक पुनर्पाठ केवल साहित्यिक उपक्रम नहीं है, बल्कि यह हाशिए पर पड़े समाज की आवाज को केंद्र में लाने की प्रक्रिया है। आदिवासी जीवन का यथार्थ जब साहित्य में उतरता है तो वह सत्ता, विकास और आधुनिकता के दावों पर गहन प्रश्नचिह्न लगाता है। आज आवश्यकता है कि हिंदी उपन्यास आदिवासी जीवन को केवल लोक–संस्कृति या जिज्ञासा के विषय के रूप में न देखें, बल्कि उसे समानता, न्याय और अस्तित्व के विमर्श से जोड़कर प्रस्तुत करें। यही साहित्य का उत्तरदायित्व है और यही आदिवासी विमर्श की वास्तविक उपलब्धि।

संदर्भ सूची :

1. माजि, महुआ। मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. दिवाकर, रामधारी सिंह। अग्नि–रेखा। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

3. गुहा, चित्राभानु। अद्रक के फूल। वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
4. देवी, महाश्वेता। धरती आबा (हिंदी अनुवाद)।
5. मिश्र, नामवर सिंह। कहानी नई कहानी नई। राजकमल प्रकाशन।
6. चौधरी, रामनारायण। हिंदी उपन्यास का इतिहास। लोकभारती प्रकाशन।
7. ठाकुर, गगन। हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श। साहित्य अकादमी।
8. संजीव, जंगल जहाँ शुरू होता है, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 139

मो. 9936163288
jadavgovind@cuk.ac.in

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
SANGAM
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
Vol. 13, Issue 11-12
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
पृष्ठ : 92-97

छायावादोत्तर और प्रगतिवादी काव्य का सामाजिक तत्व

रघुनन्दन महापात्र

छायावादोत्तर शब्द को दो अर्थो में समझा जा सकता है, पहला, छायावाद के बाद के साहित्य के अर्थ में और दूसरा, छायावाद की प्रवृत्तियों से मुक्ति के परिप्रेक्ष्य में। छायावादोत्तर काव्य से अभिप्राय उस काव्य से है जिसकी प्रवृत्तियाँ सन् 1930 और 1940 के दशकों में लोकप्रिय हुईं परन्तु जिन्होंने काव्य आंदोलन का रूप धारण नहीं किया और साथ में वह काव्य भी जो एक सशक्त काव्य आंदोलन के रूप में उपस्थित हुए।

वह छायावादोत्तर काव्य जिन्होंने काव्य आंदोलन का रूप धारण नहीं किया उनमें मुख्य रूप से तीन प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। राष्ट्रीय सांस्कृतिक भावधारा, प्रेम और मस्ती के भाव से सम्पन्न और हास्य व्यंग्य की भावना को व्यक्त करने वाली प्रवृत्ति। इसके अतिरिक्त वह छायावादोत्तर काव्य जो एक काव्य आंदोलन के तौर पर उभरा वह है प्रगतिवादी काव्य जिसमें छायावादी कल्पनाशीलता का स्थान सामाजिक यथार्थ से उपजी चेतना ने ले लिया और छायावादी काव्य के लक्ष्य 'व्यक्ति की मुक्ति' की जगह 'समाज और देश की मुक्ति' ने ले ली।

छायावादोत्तर काव्य में यत्र तत्र सामाजिक सरोकार के नमूने मिलते हैं। राष्ट्रीय–सांस्कृतिक काव्य में कवियों ने एक तरफ जनता को पराधीनता से मुक्ति पाने के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया, तो दूसरी तरफ उन्होंने देश में फैली सामाजिक और आर्थिक असमानता के खिलाफ भी आवाज बुलंद की। हास्य–व्यंग्य की कविताओं में दोनों धाराएं मिलती हैं। इस समय के हास्य–व्यंग्य लेखन में ज्यादातर सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में फैले पाखंड और भ्रष्टाचार को निशाना बनाया गया है। इसके राष्ट्रीय–सांस्कृतिक और हास्य–व्यंग्य धारा के छायावादोत्तर काव्य अपनी वस्तु, भाव और विचार से लौकिक और मानवीय है। इसमें रूढ़ियों या सामाजिक बुराइयों का विरोध भी है परन्तु यह काव्य सामाजिक यथार्थ की जटिलता और व्यक्ति की गहन अनुभूतियों को व्यक्त करने की ओर प्रेरित होते नहीं देखा जाता।

इसी धारा के कवि बालकृष्ण शर्मा नवीन की कविताओं में तत्कालीन भारतीय समाज की दीन–हीन दशा के प्रति आक्रोश व्यक्त हुआ है। रामनरेश त्रिपाठी की कविता में इसी दशा की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है :

धधक रही सब और भूख की ज्वाला घर-घर में,
मांस नहीं है, निरी साँस है, शेष अस्थिपंजर में।
अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं हैं, रहने का नहीं ठिकाना,
कोई नहीं किसी का साथी, अपना और विराना।

कदाचित् जीवन–यथार्थ की पक्की समझ की कमी से और व्यापक जीवन दृष्टि के न होने की वजह से इन कविताओं में नागार्जुन आदि प्रगतिवादी कवियों जैसी गहरी सामाजिक दृष्टि का निदर्शन कम ही मिलता है।

वह छायावादोत्तर काव्य जो प्रगतिवादी आंदोलन के नाम से प्रसिद्ध हुआ उसकी पहचान उस नए दृष्टिकोण से है जो पुरानी रूढियों में आबद्ध जीवन मूल्यों का परित्याग, आध्यात्मिक और रहस्यात्मक अवधारणाओं की जगह लोकपक्षीय अवधारणाओं को तरजीह देना, सभी प्रकार के शोषण तथा दमन का विरोध, धर्म, जाति, निवास स्थान, लिंग, भाषा आदि के आधार पर भेदभाव का विरोध करना, परिवर्तन, प्रगति और स्वतंत्रता, समानता और लोकतंत्र की स्थापना में विश्वास करना, गरीब के प्रति सहानुभूति, औरतों पर जुल्म का विरोध तथा साहित्य का उद्देश्य सामाज कल्याण में मानना आदि। इन जीवन मूल्यों में विश्वास करने वाला प्रगतिशील या प्रगतिवादी है चाहे विचारधारा के रूप में उसने मार्क्सवाद को अपनाया हो या नहीं। अतः प्रगतिवादी कविता का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अनिवार्यतः सामाजिक सरोकार होता है।

प्रगतिवादी कवि त्रिलोचन ग्वाले की निरक्षर बेटी चम्पा को उसकी समझ के मुताबिक भाषा में पढ़ना लिखना सीखने के लिए कहते हैं। कवि के वास्तव बोध और सामाजिक जिम्मेदारी पर ध्यान जाना चाहिए।

"मैंने कहा कि चम्पा, पढ़ लेना अच्छा है
ब्याह तुम्हारा होगा, तुम गौने जाओगी,
कुछ दिन बालम सँग-साथ रह चला जाएगा जब कलकत्ता
बड़ी दूर है वह कलकत्ता
कैसे उसे सँदेशा दोगी
कैसे उसके पत्र पढ़ोगी
चम्पा पढ़ लेना अच्छा है!"

त्रिलोचन की एक कविता है 'मैं–तुम' जिसमें समाज में बतौर कवि वो अपनी भूमिका का रेखांकन करते हुए किसान से, कारखानों में काम कर रहे मजदूर से वह बात करते हैं। व्यक्ति से लेकर देश तक और पूरे संसार तक चेतना का विस्तार करते हैं। पर्यावरण की रक्षा करने की इन्सान की जिम्मेदारी की बात करते हैं। व्यक्ति की स्वतंत्रता की बात कहते हैं। समष्टि की भावना का सुन्दर निदर्शन है उनकी कविता। कुछ उद्धृत पंक्तियाँ :

"इस पृथिवी की रक्षा मानव का अपना कर्तव्य है
इसकी वनस्पतियाँ, चिड़ियाँ और जीव-जन्तु
उसके सहयात्री हैं इसी तरह जलवायु और सारा आकाश
अपनी-अपनी रक्षा मानव से चाहते हैं
उनकी इस रक्षा में मानवता की भी तो रक्षा है
नहीं, सर्वनाश अधिक दूर नहीं
दिन-रात प्रातः-सन्ध्या कितने अलग-अलग रूपों में
आते हैं कोई इन्हें देखे या अनदेखा कर जाए,

इनकी आपत्ति का पता नहीं चलता
मानव का सारा सौन्दर्य-बोध जब विकास करता है
तब इनका अपना क्या योगदान रहता है
आँखें ही इसे देख सकती हैं
मैं उसी समग्रता को देखने का आदी हूँ
खंड में समग्र नहीं आता नहीं आ पाता
खंड सामने हो तो अखंड का महत्त्व क्या
अच्छी-अच्छी बातों के अर्थ बदल जाते हैं
मन किसी का बदल जाए तो सबकुछ एकाएक
उलट-पुलट जाता है
मैं सबके साथ हूँ अलग-अलग सबका हूँ
मैं सबका अपना हूँ सब मेरे अपने हैं
मुझे शब्द-शब्द में देखा
मैं कहाँ हूँ।"

प्रगतिशील काव्य धारा के सशक्त हस्ताक्षर कवि केदारनाथ अग्रवाल जिन्हें कविता की प्रगतिशीलता का पर्याय कहा जा सकता है। उनकी कई कविताओं में उनकी निजी चेतना का समष्टि की चेतना में प्रयाण होता है और उसे नवीन जीवन मूल्यों से सराबोर हो कर समाजवादी चित्र प्रकट होते हैं। "केदारजी के पाठकों/आलोचकों में कोई उन्हें ग्रामीण चेतना का कवि मानता है, कोई नगरीय का, कोई संघर्ष का, कोई श्रम का, कोई सौन्दर्य का, कोई प्रकृति का, कोई राजनीतिक चेतना का, कोई मनुष्यता की खोज का, कोई नदी केन का, कोई व्यंग्य का, कोई प्रेम का तो कोई रूप और रस का, आदि–आदि। पर दरअसल केदारजी इनमें से केवल किसी एक धरातल के कवि नहीं हैं। वह खंड–खंड जीवन के नहीं, एक मुकम्मल जीवन के, सामाजिक सरोकारों से लैस, मुकम्मल जीवन्त कवि हैं।"

बाँदा की जीवन–रेखा केन नदी केदारनाथ अग्रवाल के लिए सिर्फ जल का स्रोत भर नहीं है अपितु वह चेतना का स्रोत है। केन किनारे बसे लोगों की चेतनाहीनता पर कवि को अवसाद होता है कि चेतना की केन भी लोगों में फैली जड़ता में जीवन का संचार नहीं कर पा रही है। 'केन किनारे पत्थी मारे' का एक अंश–

"पानी पत्थर
चाट रहा है गुमसुम!
सहमा राही
ताक रहा है गुमसुम!"

यहाँ 'सहमा राही' कवि केदार जी स्वयं हैं जो लोगों की ये संज्ञाहीनता से दुःखी हैं। आपकी कविताओं में प्रारम्भिक दिनों से ही स्त्री विमर्श की आहट सुनाई देती है। उनकी लिखी कविता 'पति की टेक'(जो शिलाएँ तोड़ते हैं) में घर में महिला की दुर्दशा का मर्मभेदी चित्रण है। इसके अतिरिक्त और कविताएँ जैसे 'मुल्लो अहिरिन', 'देहात का जीवन', 'गाँव की औरतें', 'जहरी', 'सीता मैया', 'ब्याही अनब्याही', 'रनिया', 'मजदूरीन' आदि में स्त्री

जीवन के कई पक्ष सामने आते हैं।

"वह
समाज में
न्याय न पाकर
अन्यायों की चोट दबाकर
भरी देह का
नेह सुखाकर
खाकर ठोकर
रोम दुखाकर
अपने सपने
धूल बनाकर
कर से कर पर की मजदूरी,
पग से हर,
पल-पल की दूरीय
जीवन जीती है
अनचाहा
दुख-दारिद पीती अनथाहा।"

इस कविता में एक मजबूर मजदूरीन की पीड़ा का मार्मिक चित्रण हुआ है। केदारनाथ अग्रवाल जी की कविता तत्कालीन समाज की विडंबना और संत्रास का द्योतक है।

प्रगतिवादी काव्य के प्रमुख स्तम्भ बाबा नागार्जुन की कविताएँ समाज के सच्चे सरोकार की कविताएँ हैं। सरकारी नौकरी करने वाले एक प्राइमरी स्कूल के मास्टर की मृत्यू के बाद उसकी आत्मा यमराज के पास आती है तो उससे उसकी मृत्यू का कारण पूछा जाने पर वह कहता है,

"जात का कायस्थ
उमर कुछ अधिक पचपन साल की
पेशा से प्राइमरी स्कूल का मास्टर था,
तनखा थी तीन रूपया, सो भी नहीं मिली
मुश्किल से काटे हैं
एक नहीं, दो नहीं, नौ-नौ महीने
घरनी थी, माँ थी, बच्चे थे चार
आ चुके हैं वे भी दयासागर, करूणा के अवतार
आप ही की छाया में।"

उपर्युक्त उद्धृतांश 'प्रेत का बयान' कविता से लिया गया है। कवि यह दर्शाना चाहते हैं कि तीन रुपये के महीने की तनख्वाह में सात लोग बड़े कष्ट से जीवन जीते होंगे। वेतन तो कम है और उस पर सीतम यह

कि वह नौ महीने तक नहीं मिला। ऐसी दुर्दशा में मास्टर के साथ उसका पूरा परिवार भूख से मर जाता है। जब एक सरकारी नौकरी वाले का और उसके परिवार का यह हश्र हो सकता है तो वे लोग जिनके पास कोई नौकरी नहीं है, जिनके पास कोई रोजगार नहीं है उनकी हालत का अंदाजा आसानी से लगाया जा सकता है।

छायावादोत्तर काव्य हिंदी साहित्य का वह दौर है, जहाँ काव्य का केंद्र बिंदु व्यक्ति की आत्मचेतना से निकलकर समाज की सामूहिक चेतना की ओर प्रवाहित होता है। इस युग में कवियों ने कल्पना, सौंदर्य और रहस्य के स्थान पर यथार्थ, संघर्ष, श्रम और समानता को महत्व दिया। राष्ट्रीय–सांस्कृतिक, प्रेम–मस्ती और हास्य–व्यंग्य की धाराओं के साथ–साथ प्रगतिवादी काव्य ने सामाजिक न्याय, वर्ग–संघर्ष और जनजीवन की पीड़ा को स्वर दिया। त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन जैसे कवियों ने जनता के जीवन की कठिनाइयों, शोषण, गरीबी और अन्याय को प्रत्यक्ष अनुभव के साथ कविता में अभिव्यक्त किया।

इन कवियों ने कविता को केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम न बनाकर सामाजिक परिवर्तन का उपकरण बनाया। स्त्री, श्रमिक, किसान और आम जन के जीवन को साहित्य के केंद्र में लाकर उन्होंने हिंदी कविता को यथार्थ और जनजीवन से जोड़ा। इस प्रकार छायावादोत्तर युग की कविताएँ संवेदना और यथार्थ के समन्वय का प्रतीक बनती हैं। उन्होंने साहित्य को जीवन के निकट लाकर यह प्रमाणित किया कि सच्ची कविता वही है जो समाज की नब्ज को छूकर मनुष्य की पीड़ा, आशा और संघर्ष को स्वर दे। यही इस युग का स्थायी महत्त्व है।

संदर्भ :-

1. प्रतिनिधि कविताएँ त्रिलोचन, संपादक– केदारनाथ सिंह, राजकमल पेपरबैक्स, संस्करण 2023, पृष्ठ 58
2. प्रतिनिधि कविताएँ त्रिलोचन, संपादक– केदारनाथ सिंह, राजकमल पेपरबैक्स, संस्करण 2023, पृष्ठ 30
3. प्रतिनिधि कविताएँ केदारनाथ अग्रवाल, संपादक– अशोक त्रिपाठी, संपादकीय, संस्करण 2023, पृष्ठ 08
4. प्रतिनिधि कविताएँ केदारनाथ अग्रवाल, संपादक– अशोक त्रिपाठी, संपादकीय, संस्करण 2023, पृष्ठ 109–110
5. नागार्जुन एवं उनकी प्रतिनिधि कविताएँ, शरद भटनागर, डॉ सुशीला रानी, हरीश प्रकाशन मंदिर, पृष्ठ 13

रघुनन्दन महापात्र

फोन 9040210935

vipul2661995@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 98–102

THE STUDY OF RELEVANCE TO THE MODERN BUSINESS GENERATION

Pravin Ramesh Save
Department of Commerce,
CHANDRABHAN SHARMA COLLEGE OF ARTS, COMMERCE AND SCIENCE POWAI, MUMBAI.

Abstract :

This research paper aims to explore the key factors that contribute to relevance in the contemporary business generation and proposes effective strategies for organizations to thrive in this dynamic environment.The business landscape is continually evolving, shaped by technological advancements, shifting consumer behaviors, and global interconnectedness. In this era of rapid change, it is imperative for businesses to adapt and embrace innovative strategies to remain competitive. This journal explores the relevance of modern business generation strategies and their impact on the success and sustainability of enterprises.

Keywords : Relevance, Modern, Business, Generation.

INTRODUCTION :

In the dynamic landscape of today's business environment, staying ahead of the curve requires a keen understanding of contemporary trends, technological advancements, and evolving consumer behaviors. The study of relevance to the modern business generation is a crucial exploration that delves into the intricacies of how businesses adapt, thrive, and innovate in an era marked by unprecedented change. As we navigate through the digital age, globalization, and rapid technological advancements, the ability to identify, interpret, and leverage relevant insights becomes paramount for organizations aiming not only to survive but to excel in the competitive marketplace.

This study addresses the multifaceted dimensions of modern business, considering factors such as digital transformation, sustainability, customer-centricity, and the integration of cutting-edge technologies. The intricate interplay between these elements shapes the strategies, operations, and success of enterprises across various industries. Through an examination of real-world case studies,

industry best practices, and emerging paradigms, this exploration aims to provide valuable insights into the principles and practices that define relevance in the modern business landscape.

Moreover, as businesses grapple with challenges like climate change, ethical considerations, and the demands of an increasingly discerning consumer base, the study of relevance extends beyond profitability to encompass broader societal impact and responsible business practices. The dynamics of modern business generation require a holistic perspective that embraces innovation, adaptability, and a commitment to values that resonate with contemporary societal expectations.

In this context, our exploration seeks to unravel the intricacies of relevance, offering a comprehensive understanding of the strategies and mindsets that propel businesses forward in the ever-evolving landscape. By delving into the intersection of traditional business models and the demands of the modern era, this study aims to equip professionals, entrepreneurs, and students alike with the knowledge and insights needed to navigate the complexities of today's business world and position themselves strategically for success.

The impact of digitization on family businesses :

The digitization of information is becoming more and more significance, and it is having an impact on several aspects of the economy as well as daily life. Since the digital revolution can be seen everywhere, family companies are required to cope with it. Digitization is causing a profound upheaval in every area of the economy, and the success of businesses and their potential for the future are strongly dependent on the successful use of this technology. For family-owned firms, digitization presents a significant opportunity. The potential that exists here must be recognized and used.

This subject should be immediately incorporated into the corporate strategy of family companies, or a real digitization plan should be devised, to ensure the effective implementation of digitization in family businesses. organizations that have a digital strategic emphasis often have superior economic processes and higher connection, which distinguishes them from organizations that do not have such a strategy. A carefully crafted digitization strategy offers numerous benefits, because of this. In addition, a strategy that involves digitalization makes it possible to exercise a more efficient control over the operations of a corporation. The activities that are necessary to accomplish the digital transformation are based in the information technology department of a great number of family companies. On the other hand, it is not a good idea to confine the creation of digitization plans and the discussion of digitization related matters just to the information technology department. Instead, they need to be assigned to senior management in order to ensure that the whole value chain as well as any future shifts in business models may be continually controlled and monitored.

It is crucial that the IT department takes into consideration the requirements and desires of all

of the players involved, despite the fact that it is within the IT department's purview to provide the required infrastructure for digital transformation. Keeping this in mind, it is of the utmost importance for family companies to comprehend that digitization is a trend that will have an impact on all aspects of their company. Because of this, family companies need to go through a cultural shift to be successful in the digital transformation process. When it comes to the implementation of their digitization operations, they are required to constantly take into consideration their orientation, which is distinctive. In addition to this, it is critical for family companies to remain true to their core beliefs and objectives, which are an integral component of their corporate culture. It is essential that the interests of the family business be taken into consideration in every decision.

RESEARCH METHODOLOGY :

The study of relevance to the modern business generation involves understanding and applying research methodology to explore and analyze various aspects of contemporary business environments. Here's a general outline of research methodology for studying topics related to modern business generation.

Result and Discussion :

Since they contribute to the definition of employment levels, demand models, portfolio selections, and educational programs, family companies are an essential resource for the development and expansion of the economy in many nations. One of the ways in which a family business may be distinguished from other kinds of businesses is via the existence of some specific characteristics. These characteristics can be traced back to the following: the connection that a family has with the company; the differences that exist between family members and external managers in terms of time horizon, pursued objectives, motivations, and interest in the success of the company; the process of making strategic decisions; the organizational scheme and, in particular, the degree of centralization and the intensity of the control activity; the relationship that exists between family members and other stakeholders; the relationships that exist within the family; and the succession. There are several writers who feel that family companies have an emotional component because of the connection that exists between the family and their company. These authors emphasize the fact that the presence of the family may have an impact on the performance of the company and can create either good or bad consequences. In addition, the development of technology has brought about a revolution in the routines and behaviors of the contemporary culture today.

Family companies have reacted to the challenge posed by digitalization because, due to the very structure of their company organization, their decision-making processes need less time than those procedures of other types of firms. Our assertion is supported by the findings of a study that

was conducted by Deloitte in 2019 on a representative sample of 575 family companies located in 52 countries. These organizations are now confronted with the issue of digital transformation across all business domains. According to the findings of this survey, Facebook's long-term vision enables the firm to make choices within a time frame that is not more than three years. This enables the company to maintain its agility, flexibility, and swift adaptation in the face of change. The study that is now being conducted suggests that the notion of "rapidity" might be used to convey the primary benefit that distinguishes Facebooks from other platforms. It is possible for family companies to make choices quickly and then put those decisions into action in the same amount of time. Additionally, they tend to decrease the amount of paperwork, have seats on the board of directors that are more egalitarian, and are able to depend on workers who have a stronger commitment to the firm. In addition, the orientation toward long-term goals, which does not include the dangers associated with short-term methods for the sole purpose of gaining personal advantage, is another essential element. It is possible that a family's culture, history, and values are all beneficial characteristics that may assist the family in surviving over the passage of time and through many times of drastic change.

Family-owned enterprises, like any other kind of company, are sometimes engaged in circumstances that call for an estimation of the whole economic worth. Family businesses, on the other hand, require a "dynamic business valuation process that has to be projected into the future and suitable for estimating those intangible assets that strongly characterize these types of companies, insofar as related to the implicit components that are strongly connected to the ownership and are a result of knowledge, strategic adaptability, and product innovation, and their possible impact on the risks and their expected flows." This is because family businesses have distinctive characteristics that have been accentuated by the technological evolution that has been implemented in recent years. In particular, the study highlights the fact that in addition to "traditional" assets, there are non-financial variables that can be found in FBs. These variables enable an FB to create transgenerational values, such as for future generations, and they can be brought back to so-called "dynamic capabilities" (knowledge, business aptitude, experience and dedication of the owner and his or her family, product innovation).

Regardless of the reason for the estimation, the technique of valuation that is used must to take into consideration all of these components in order to arrive at a quantitative estimate of the FB value. First, the purpose of this work is to investigate the potential evolutionary scenarios of family businesses in the era of digitalization, focusing on their function and purpose. Secondly, the objective is to determine the valuation approaches that can be applied to family businesses, taking into consideration the various roles that intangible assets that are derived from their digitalization may

play. To accomplish these objectives, the writers carried out a comprehensive examination of the primary literature on family companies and the methodology that they use to value them. Our contribution to the existing body of literature is twofold: on the one hand, a systematic literature review offers a more accurate depiction of the current state of the art in terms of Facebook valuation in the digital age; on the other hand, it highlights the characteristics and peculiarities of "novel" Facebooks and, consequently, the limitations of the existing valuation approaches for their estimation, which ought to be taken into consideration in order to ensure an accurate evaluation.

Conclusion :

In conclusion, the relevance of modern business generation strategies lies in their ability to adapt to the ever-evolving landscape. Businesses that prioritize technology integration, customer-centricity, data-driven decision-making, sustainability, agility, and global awareness are better positioned for success. Embracing these strategies is not only a response to current challenges but a proactive approach to thriving in the dynamic and interconnected business environment of the future.

REFERENCES :

1. Dr.Khaliq, KHALIQ. (2021). 2021-Anas and Khaliq-IJBMR. The International Journal of Business and Management Research. 9. 233-243. 10.37391/IJBMR.090216.
2. Miroshnychenko, Ivan & De Massis, Alfredo & Miller, Danny &Barontini, Roberto. (2021). Family Business Growth Around the World. Entrepreneurship Theory and Practice. 45. 682-708. 10.1177/1042258720912028.
3. AfonsoAlves, Catarina& Gama, Ana. (2020). Family Business Performance: A Perspective of Family Influence. Review of Business Management. 22. 163-182. 10.7819/rbgn.v22i1.4040.
4. Perácek, Tomáš. (2019). Family business and its anchoring in the legal order of the Slovak Republic and the Czech Republic.
5. Napolitano, Maria & Marino, Vittoria&Ojala, Jari. (2015). In search of an integrated framework of business longevity. Business History. 57. 1-15. 10.1080/00076791.2014.993613.
6. Chettiar, Cicilia. (2015). A Study of Need Satisfaction in Joint and Nuclear Families in Mumbai.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 103–108

THE IMPACT OF SOCIAL CLASS ON FAMILY LIFE

Alka Pradhan
Research Scholar of English, Sona Devi University, Ghatshila.

ABSTRACT :

Social class plays a crucial role in shaping family life, influencing everything from parenting styles and communication to educational opportunities and cultural values. Families' class positions—determined largely by income, occupation, and education—affect not only their material living conditions but also their outlook, aspirations, and relationships. This paper explores how economic status determines family structure, gender roles, socialization patterns, and children's development. Drawing on the works of Pierre Bourdieu, Annette Lareau, Anthony Giddens, and other sociologists, it analyzes how inequality is reproduced through generations by way of access to cultural capital, education, and social networks. Moreover, it discusses how modern societies can reduce class disparities through inclusive policies and social welfare. The study concludes that while class stratification defines material access and opportunity, emotional strength, unity, and resilience remain vital characteristics that transcend class boundaries.

Keywords : Social class, family structure, parenting styles, cultural capital, inequality, social mobility, education.

INTRODUCTION AND OVERVIEW :

Social class plays a major role in shaping the structure, experiences, and values of family life. It influences where families live, the education children receive, the kinds of jobs parents hold, and even how family members communicate and make decisions. Sociologists define social class as a group of people who share similar economic positions, occupations, and lifestyles within society. Although class differences may not always be visible, they profoundly affect family relationships, opportunities, and routines.

Families in higher social classes generally enjoy access to better education, healthcare, and housing, which create stability and long-term opportunities for their children. In contrast, families

from lower social classes may struggle with economic insecurity, limited access to quality education, and increased exposure to stress. However, these families often display remarkable resilience, community cooperation, and moral strength that help them cope with adversity.

According to Giddens and Sutton (2021), social class is not just a matter of income but also of "life chances"—the opportunities individuals have to improve their quality of life. Family life reflects these differences vividly, as economic resources influence parenting choices, communication styles, and even how love and care are expressed.

This paper examines how social class shapes various aspects of family life, including family structure, parenting styles, socialization, education, and cultural values. It also explores how inequalities between classes are maintained or challenged across generations and what strategies societies can employ to promote greater equality and social mobility.

SOCIAL CLASS AND FAMILY STRUCTURE :

Family Composition :

Social class often affects the very structure of families, including marriage rates, family size, and household composition. Upper-class families generally have fewer children and often delay marriage until educational and career goals are achieved. This delay reflects a preference for stability and planned parenthood. By contrast, lower-income or working-class families may marry earlier or experience more unstable relationships due to economic pressures.

Research by Cherlin (2010) found that family instability and single parenthood are more common among lower-income groups, partly because financial insecurity creates tension and reduces emotional availability between partners. Wealthier families, having access to childcare, healthcare, and stable housing, experience less stress and can invest more time in nurturing relationships and planning for their children's futures.

Despite these disparities, many working-class families display strong cooperation, emotional closeness, and interdependence. Extended family members often provide emotional and financial support, highlighting the community-centered nature of lower-class social life.

Household Roles and Responsibilities :

In middle- and upper-class families, gender roles have become more flexible as education and employment opportunities for women expand. Dual-income households are common, and domestic responsibilities are often shared. This shift reflects changing gender norms and the growing influence of feminist values.

In contrast, lower-income families may retain traditional gender divisions due to economic necessity. Men often take labor-intensive jobs, while women manage household duties or part-time

work. However, research by Edin and Kefalas (2011) shows that working-class women demonstrate resilience and adaptability, balancing childcare and employment under challenging conditions. Despite limited means, such families maintain strong emotional bonds and practical teamwork.

PARENTING, EDUCATION, AND CHILD DEVELOPMENT :

Parenting Styles and Social Class :

Social class strongly influences parenting philosophies. Middle- and upper-class parents often emphasize independence, creativity, and self-expression. They encourage their children to ask questions, voice opinions, and develop reasoning skills. This aligns with what Annette Lareau (2003) termed "concerted cultivation"—a style where parents actively organize their children's time with structured activities, constant dialogue, and exposure to institutions such as schools, museums, or sports clubs.

Working-class and lower-income parents, by contrast, may adopt what Lareau calls "the accomplishment of natural growth." They value obedience, respect for authority, and practical life skills, reflecting their own work environments where compliance and discipline are essential. Children raised in this context learn resilience and self-reliance but may feel less comfortable interacting with authority figures such as teachers or employers.

Each approach has its strengths. Middle-class parenting fosters confidence and articulation, while working-class parenting often promotes solidarity and resourcefulness. Yet, educational systems tend to reward middle-class communication patterns, perpetuating class advantages.

Education and Opportunities :

Education is perhaps the most significant channel through which social class shapes family life. Wealthier families can afford private schooling, extracurricular activities, tutoring, and college education. These advantages provide not just academic enrichment but also social connections that lead to better career opportunities.

Children from lower-income families typically rely on underfunded public schools that face overcrowding and limited resources. Despite this, many parents in such contexts prioritize education and make sacrifices to ensure their children succeed. Parental involvement—reading with children, motivating them, and celebrating achievements—often compensates for material constraints (Coleman, 1988).

The achievement gap between children from different social classes is therefore not only about intelligence or effort but about the structural support systems surrounding them. As Reay (2017) notes, education can reproduce inequality when schools reward cultural capital that working-class children may lack.

SOCIALIZATION, CULTURE, AND FAMILY VALUES

Socialization and Communication :

Families are the primary sites of socialization, where children learn social norms, values, and language patterns. Communication styles differ sharply across classes. Middle- and upper-class families often favor reasoning and negotiation; they engage children in discussions, allowing them to question and reason out their views. Working-class families typically use a more directive communication style emphasizing obedience and respect.

Bernstein (1971) described these as "elaborated" and "restricted" language codes. Children from middle-class families use elaborated codes, rich in vocabulary and abstraction, which align with institutional expectations in education and employment. Working-class children often communicate effectively within their community's practical context but may face challenges in formal academic settings that privilege elaborated speech.

Cultural Capital :

Pierre Bourdieu's concept of cultural capital (1986) is central to understanding class differences. Cultural capital includes the knowledge, tastes, language styles, and behaviors valued by society. Upper- and middle-class children acquire this capital early through reading, travel, arts, and exposure to intellectual discussions, which make them more comfortable in elite educational and professional spaces.

Lower-class children may not have the same exposure, but they often develop other valuable forms of capital, such as social capital (supportive community networks) and emotional capital (resilience and empathy). Recognizing these diverse strengths is crucial for building inclusive educational systems.

Family Values and Lifestyles :

Class differences also manifest in family routines, leisure activities, and traditions. Upper-class families may engage in cultural events, travel, or philanthropic activities, reinforcing global perspectives and civic responsibility. Middle-class families often emphasize self-improvement and achievement. Working-class families, while having fewer material resources, prioritize togetherness through festivals, religious observances, and community gatherings.

Sociological studies (Lupton, 2003; Crompton, 2008) reveal that working-class family life often centers on collective identity and mutual care, fostering a sense of belonging that compensates for economic hardship.

ECONOMIC INEQUALITY, SOCIAL MOBILITY, AND CONCLUSION

Economic Inequality and Its Effects :

Economic inequality widens the gap between families' access to basic needs and future opportunities. Families in lower classes face greater risks of unemployment, health issues, and unstable housing, leading to chronic stress that strains family relationships. Upper-class families, by contrast, can transfer wealth, property, and educational advantages to the next generation, perpetuating their privileged status.

According to Wilkinson and Pickett (2010), societies with greater inequality experience higher rates of crime, mental illness, and family breakdown, regardless of absolute wealth levels. Economic insecurity, therefore, affects not only individual families but also the moral fabric of society.

Social Mobility and Structural Barriers :

While hard work and education can promote upward mobility, structural barriers—such as discrimination, unequal schooling, and limited access to social networks—often restrict progress. Beller and Hout (2006) argue that intergenerational mobility has declined in many countries because of widening income disparities and credential inflation. Government policies that invest in public education, affordable housing, and universal healthcare can mitigate these effects.

Social mobility also depends on cultural factors. Families that encourage lifelong learning, critical thinking, and adaptability prepare children to navigate changing economies. Inclusive policies combined with supportive home environments can bridge class divides and create fairer opportunities.

Conclusion :

Social class exerts a profound and lasting influence on family life. It shapes family structure, parenting, education, communication, and social values. While economic privilege grants access to resources and opportunities, strong emotional bonds, love, and mutual support characterize families across all classes.

Reducing class inequality requires systemic efforts—better education, healthcare, and welfare programs that empower families rather than stigmatize them. Building equitable societies means recognizing the dignity and strength present in all families, regardless of class. Ultimately, the wellbeing of a nation depends on the health and unity of its families, for they are the first institutions where values of equality, empathy, and resilience are learned.

Reference :-

1. Beller, E., & Hout, M. (2006). Intergenerational social mobility: The United States in comparative perspective. The Future of Children, 16(2), 19–36.
2. Bernstein, B. (1971). Class, Codes and Control. London: Routledge.
3. Bourdieu, P. (1986). The Forms of Capital. In J. Richardson (Ed.), Handbook of Theory and

Research for the Sociology of Education. Greenwood Press.
4. Cherlin, A. J. (2010). The Marriage-Go-Round: The State of Marriage and the Family in America Today. Vintage Books.
5. Coleman, J. S. (1988). Social Capital in the Creation of Human Capital. American Journal of Sociology, 94, S95–S120.
6. Crompton, R. (2008). Class and Stratification (3rd ed.). Cambridge: Polity Press.
7. Edin, K., & Kefalas, M. (2011). Promises I Can Keep: Why Poor Women Put Motherhood Before Marriage. University of California Press.
8. Giddens, A., & Sutton, P. W. (2021). Sociology (9th ed.). Polity Press.
9. Lareau, A. (2003). Unequal Childhoods: Class, Race, and Family Life. University of California Press.
10. Lupton, D. (2003). Medicine as Culture: Illness, Disease, and the Body in Western Societies. Sage Publications.
11. Reay, D. (2017). Miseducation: Inequality, Education and the Working Classes. Policy Press.
12. Wilkinson, R., & Pickett, K. (2010). The Spirit Level: Why Equality is Better for Everyone. Penguin Books.
13. Macionis, J. J. (2022). Sociology (18th ed.). Pearson Education.

Email: pradhanalka063@gmail.com
Mobile: 7004897245

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 109–113

'अकाल में उत्सव' उपन्यास में कृषक जीवन का त्रासदीय यथार्थ

पूजा रानी, शोधार्थी
एम. ए. हिन्दी, बी. एड, नेट, सीटीईटी (CTET)

शोध सार –

हिंदी साहित्य में अपनी कलम से दस्तक देने वाले तथा समकालीन कथा जगत् के पाठकों को प्रभावित करने वाले साहित्यकारों में पंकज सुबीर का नाम विशेष स्थान रखता है उपन्यासकार के रूप में कहे या कहानीकार, व्यंग्यकार, संपादक या फिर आलोचक के रूप में पंकज सुबीर का लेखन 21वीं शताब्दी की नई सामाजिक समस्याओं का लेखन है 11 अक्टूबर, 1975 को मध्य प्रदेश के शिवनी मालवा कस्बे में जन्मे पंकज सुबीर ने ये वो शहर तो नहीं, रूदादे–सफर, ईस्ट इंडिया कंपनी, महुआ घटवारिन, एक सच यह भी, चेपड़े की चुड़ैल, आदि तमाम उपन्यास कहानियां व्यंग्य रचनाओं के माध्यम से अपनी कलम की खुशबू बिखेरी है जिसकी खुमारी में पाठक आनंदित हो जाता है। 'अकाल में उत्सव' पंकज सुबीर का कृषक जीवन के त्रासदीय यथार्थ को बयां करता मार्मिक उपन्यास है जिसे पढ़ कर पत्थर से पत्थर दिल पाठक भी यकीनन अपनी आंखें पोंछने पर मजबूर हो जाता है। यह ऐसे विषय पर लिखा गया उपन्यास है जिसमें देश और समाज का सबसे उपेक्षित वर्ग अर्थात किसान शुरू से अंत तक मुसीबत से घिरा रहता है। उपन्यास में दिखाया गया है कि किसानों की खुशहाली के लिए घोषणाएं तो हर चुनावी मौसम में कर दी जाती है लेकिन चुनाव पर्व समाप्त होते ही तमाम घोषणाएं भी उसी प्रकार फाइलों में कैद हो जाती है जैसे साँझ होने पर सूरज क्षितिज में। 'अकाल में उत्सव' उपन्यास में राम प्रसाद जैसे किसान द्वारा जिंदगी की जंग में हार मानकर मौत को गले लगाना सरकार की उदासीनता और भ्रष्टाचार को बयां करने के लिए पर्याप्त है ऐसे में यह उपन्यास त्रासदीय यथार्थ को प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द – प्रश्मन, आह्लाद, नासूर, लाइलाज, खौफनाक, दहशत।

त्रासदी का अर्थ– त्रासदी शब्द अंग्रेजी के ट्रेजेडी का हिंदी रूप है जिसके अर्थ हैं– "दुखान्त रचना, शौकांत नाटक, दुःखद घटना, दुखान्तिका, शोकपूर्ण या अप्रिय घटना।"[1] अरस्तु ने त्रासदी को परिभाषित करते हुए लिखा है– "त्रासदी मानवीय जीवन के गंभीर, पूर्ण और विस्तृत व्यापार का अनुकीर्तन है। इसकी भाषा लय और संगीत के मिश्रण से पूर्ण एवं उदात्त होती है। इसमें नाटककार ऐसी घटनाओं का सयोंजन करता है जो करुणा और भय के भावावेगों को उद्दीप्त करके उनका प्रश्मन अथवा परिष्कार करने में समर्थ हो।[2] अतः स्पष्ट

है कि त्रासदी का संबंध गंभीर घटनाओं से है जो पूर्ण और सुसम्बद्ध होती है। त्रासदी मानव मन के गहरे घावों का उच्छेद करती है और उन नासूरों को चीरकर दिखाती है जो अनेकानेक पर्दो के बीच ढके रहते हैं।

यथार्थ का अर्थ : "जो अपने अर्थ/उद्देश्य/भाव आदि के ठीक अनुरूप हो, सत्य, उचित, ठीक।"[3] जब हम किसी भी स्थिति, घटना या वस्तु को उसके प्रदर्शित रूप में न देखकर वास्तविक रूप को देखते है तो उसे यथार्थ कहते हैं। त्रासदी और यथार्थ के अर्थो को अलग–अलग रूप में जानने के पश्चात निश्चय ही मन में प्रश्न उठता है कि त्रासदीय यथार्थ क्या है? इस प्रश्न के उत्तर की जिज्ञासा को शांत करने के लिए कहा जा सकता है कि ऐसी वास्तविकता जो हमें जीवन के आसपास प्रत्यक्ष रूप में प्रतिदिन नजर आती है और जिसे साहित्यिक रूप में पढ़कर हमारी ऑखें गीली हो जाती हैं, वही त्रासदीय यथार्थ है। जीवन के कितने ही रूपों को जब हम साहित्यिक कृतियों के रूप में देखते है तो निश्चय ही वही स्तिथि भयावह और त्रासद प्रतीत होती है। समाज में ऐसे हजारों इंसान मिलते हैं जो किसी न किसी प्रकार कि त्रासदी से ग्रसित हैं। पंकज सुबीर विरचित उपन्यास अकाल में उत्सव में रामप्रसाद नामक किसान के जीवन की वास्तविक और भयावह परिस्थितियों को चित्रित करते हुए कृषक जीवन के यथार्थ को त्रासद रूप में प्रस्तुत किया गया है। किसान की आर्थिक स्थिति, सामाजिक रीति रिवाज बिगड़ी हुई प्रशासनिक व्यवस्था, पंगु सरकारी नीतियाँ जो किसान को उबारती कम और मारती ज्यादा हैं।

किसान के पास अपनी जीविका चलाने के लिए कृषि के बिना कोई साधन नहीं होता। सरकार ने कृषक वर्ग के लिए बहुत सारी नीतियाँ बनाई है। किसानों के लिए सरकार ने मँडियां बनाई पर उनका लाभ किसानों को नहीं मिलता। किसान जो दो वक्त की रोटी के लिए सुबह से शाम तक खेतों में लगा रहता है उसके पास इतना पैसा नहीं है कि वो बीज, खाद, दवाइयों कि व्यवस्था कर पाएं इसके लिए उसे ऋण लेना पड़ता है, और जब वह कर्ज नहीं चुका पाता तो उसका शोषण होने लगता है। कर्ज एक ऐसी लाइलाज बीमारी है जो एक बार किसान को लग गई तो उम्र भर ठीक नहीं होती। उसकी इस कर्जदार बीमारी का सब फायदा उठाते हैं। लेखक ने किसान के कर्ज और फर्ज को इस ढंग से दिखाया है कि वे दोनों ही किसी भी सूरत में उससे जुदा नहीं होते। व्यंग्यात्मक भाव में लेखक के विचारों को उद्धरित किया जा सकता है वे कहते हैं कि "हर छोटा किसान किसी न किसी का कर्जदार होता है, बैंक का, सोसायटी का, बिजली विभाग या सरकार का। सारे कर्जो की वसूली... पटवारी और गिरदावरों को करनी होती है। वसूली कितना खौफनाक शब्द है, यह कोई कर्जदार ही बता सकता है।"[4]

उन प्राकृतिक मुसीबतों को भी अकाल में उत्सव उपन्यास में पंकज सुबीर ने चित्रित किया है जो सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं की तरह किसान पर कहर बरसाती है। उपन्यास में दर्शाया गया है कि रामप्रसाद की हालत शुरुआती दौर में ठीक ठाक थी लेकिन बाद में परिस्थितिओं और बेमौसम की बरसात के कहर ने उसके जीवन को झकझोर कर रख दिया। कभी उसे कुदरत की मार झेलनी पड़ती है तो कभी भ्रष्ट राजनीति। प्रकृति के आतंक और बेमौसम की बारिश का चित्रण किया गया है कि "टप्प..... आँगन में पहली बूँद गिरी। बूँद की आवाज ने उस छोटे से टूटे–फूटे मकान के अंदर दहशत भर दी। उस साधारण सी आवाज में कितनी दहशत भरी थी। आवाजें या दृश्य अपने आप में दहशत नहीं होते वही स्थितियाँ, जिनमें वे पैदा हो रहे हैं, उसके साथ मिलकर वही दहशत पैदा करते हैं। वरना तो इसी टप्प की आवाज पर कितने गीत, कितनी कविताएं रच दी गई हैं।"[5] यहाँ कृषक जीवन के यथार्थ को चित्रित करते हुए बताया है कि जब वह खून पसीने से अपनी फसलों

को सींचकर पकाता है और कुदरत जब उसे चारों ओर से घेरकर डराती है तो उसका कलेजा छलनी हो जाता है। वास्तविक स्थिति यही है कि किसान की फसलें कभी अनावृष्टि तो ओलावृष्टि, अतिवृष्टि या आंधी तूफान की भेंट चढ़ जाती हैं।

गौरतलब है कि जब भी किसान की फसल बाढ़ या आग की भेंट चढ़ती है तो सरकार की ओर से मुआवजे की पेशकश की जाती है और वह तब खोखली हो जाती है जब वही केवल सरकारी फाइलों में बंद होकर अलमारियों में रख दी जाती है। और यदि कभी वह फाइल खुलती भी है तो व्यवस्था के विषधर मुआवजा रूपी मणि केवल उन्हीं लोगों को देते है जो उनके निजी है या किसी तरह उनकी चापलूसी करते हैं। ये नीतियाँ बस कागजों की शोभा बढ़ाती है असल जिंदगी से इनका कोई ताल्लुक नहीं होता। रामप्रसाद जैसे छोटे किसान सिर्फ ईश्वर कृपा पर ही निर्भर करते हैं। हालांकि प्रभु दया पहले से ही प्राकृतिक कोप के रूप में अपना प्रभाव दिखा देती है। कथा के एक पात्र द्वारा सरकारी अधिकारियों की पोल खोलते हुए कहा गया है कि "यह पटवारी यह गिरदावर सब सरकारी जोकें हैं जो किसान के तन पर चिपकी हुई उसका खून चूस रही हैं। क्या इन कलेक्टरों को नहीं पता कि इनके हाथ के नीचे क्या गंदा खेल चलता है? सब पता होता है मगर हर एक लूट का बस यह किस्सा होता है, लूट के माल में सबका हिस्सा होता है।"[6]

हमारे समाज में अनेक प्रकार के रीति –रिवाज हैं जिनका सम्मान हर कोई करता है। सयुंक्त परिवार में घर की पूरी जिम्मेदारी पिता के सर पर होती है और पिता के बाद बड़ा बेटा पिता की जगह लेता है अर्थात् अब उसे इन जिम्मेदारियों का निर्वहन करना है। रामप्रसाद भी दो भाइयों में बड़ा है तो उसे भी अब ये सब करना होगा। जब बहनों की शादी होती है तो उसे ओर कर्ज लेना पड़ता है और धीरे–धीरे हालात ऐसे हो जाते हैं कि बिजली का बिल भरने के लिए भी उसे पत्नी के गहने गिरवी रखने पड़ते हैं। वह इस आशा से गिरवी रखता है कि इस बार फसल अच्छी होगी तो वह छुड़वा ली जाएगी लेकिन एक बार गहना गिरवी रखा तो वापस आने का नाम नहीं लेता और उसे वह बेचना ही पड़ता है। "कमला की तोड़ी बिक गई। बिकनी ही थी। छोटी जोत के किसान की पत्नी के शरीर पर के जेवर क्रमशः घटने के लिए होते हैं। और हर घटाव का भौतिक अंत शून्य होता है और घटाव की प्रक्रिया शून्य होने तक जारी रहती है।"[7] ऐसा ही एक और रिवाज हमारे समाज में है कि बहन के घर खुशी हो या गम भाई को उसके घर खाली हाथ नहीं जाना होता नहीं तो समाज के लोग उसकी बहन को तानें देंगे। रामप्रसाद भी अपनी बहन के घर खाली हाथ नहीं जाता है हाथ भर के ले जाता है।

यह उपन्यास धर्म के उन ठेकेदारों का भी पर्दाफाश करता है जो धर्म की आड़ में भगवान का भय दिखाकर चंदा इकट्ठा करते हैं। हास्यजनक बात यह कि नए मंदिर के निर्माण और पुराने मंदिरों की मरम्मत की शपथ तो लेते हैं भगवाधारी और शपथ को पूरा करने के लिए चंदा वसूला जाता है किसानों से। जो अपने घर की टपकती छत की मरम्मत नहीं करवा सकता उससे भगवान के घर का निर्माण कार्य पूरा करने के लिए दान देना जरूरी बताया जाता है। धर्म के ठेकेदारों का यह पाखंड भोले भाले किसानों के लिए मुसीबत बनता जा रहा है। रामप्रसाद जो की अपने घर की छत को ठीक करवाने की हालत में नहीं है वही दूसरी और मंदिर के निर्माण हेतु बाबा की शपथ को पूरा करने के लिए उसे एक बोरी गेहूँ की देनी पड़ती है। "परंपराएं जब सड़ जाएँ, गल जाएँ तो उन्हें उतार कर फेंक देना चाहिए, न कि किसी धर्म नाम के छद्म के नाम पर अपने शरीर पर, अपनी आत्मा पर चिपकाए रखना चाहिए। मगर ऐसा होना बहुत मुश्किल होता है।"[8]

मान्यताओं और रीति–रिवाजों में अत्यधिक विश्वास करने वाला रामप्रसाद व्यय के चंगुल से आसानी से नहीं छूट पाता है। लेखक नें जर्जर सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं की बदहाली को उपन्यास के माध्यम से पाठक के समक्ष रखा है। "सरकारी अस्पताल में जाँच की सारी मशीनें लगी हैं लेकिन सब खराब पड़ी हैं। खराब कर दी गईं हैं क्योंकि यहाँ पर मुफ्त में सारी जाँचें होनी हैं और अगर यहाँ मुफ्त में जाँचें होने लगीं, तो बाजार में जो जांचो के केंद्र खुले पड़े हैं और जहाँ से डाक्टरों के कमीशन बँधे हैं, वहाँ पर जाँचें करवाने कौन जाएगा? और जो वहाँ कोई नहीं गया, तो वह जो डाक्टर के पास रोज शाम को एक लिफाफा आता है कमीशन का वह कैसे आएगा।"[9]

मिडिया को देश का चौथा स्तम्भ कहा जाता है जो देश की रक्षा करता है, लेकिन वर्तमान में हालात इसके विपरीत हैं। मिडिया के माध्यम से जहाँ सब कुछ आसान हुआ है वही किसान की जिंदगी में इसका लाभ ज्यादा नहीं हुआ है। मिडिया वालों को कोई भी गर्म–गर्म खबर चाहिए जो उनके न्यूज की हैडलाइन बने। सब और से हारा थका रामप्रसाद जब मानसिक संतुलन खोकर अपनी जान दे देता है तो हत्या को भी आत्महत्या बहाल कर दिया जाता है। उसकी लाश को रातों रात में जला दिया जाता है जब तक मीडिया वाले आते है मामला ठंडा हो जाता है और ठंडा कुछ भी मिडिया में पसंद नहीं किया जाता और मामला रफा दफा कर दिया जाता है। "अगले दिन के समाचार पत्रों के स्थानीय पन्नों पर कई सारे समाचार थे। रामप्रसाद के नाम से बैंक में फर्जी किसान क्रेडिट कार्ड बनवा लिया था किसी ने, इसके कारण मानसिक संतुलन खराब हो गया था उसका। इसी कारण आत्महत्या की रामप्रसाद ने। रामप्रसाद की पत्नी और उसके भाई ने स्वीकार किया कि रामप्रसाद पागल हो चुका था।"[10] किसी ने भी ये जानने की कोशिश नहीं की कि उसकी मौत का खेल किसने रचा था। दरअसल आत्महत्या में भी कई हत्यारे छुपे होते हैं जो कभी न तो नजर आते हैं और न ही पुलिस या कानून की गिरफ्त में। रामप्रसाद की हत्या को पागलपन करार देकर पूरा तंत्र उत्सव को सफल बनाने में लगा हुआ है और वह सफल हो भी जाता है।

कहा जा सकता है कि 'अकाल में उत्सव' उपन्यास कृषक जीवन के उस यथार्थ को प्रस्तुत करता है जो अत्यंत त्रासद है। इसे पढ़कर प्रतीत होता है कि जो कुछ रामप्रसाद के साथ घटित होता है वह प्रत्येक किसान के जीवन में चलता रहता है। बस फर्क यह कि कोई अपनी जिंदादिली का परिचय देते हुए मुसीबतों से लड़ता रहता है और कोई मुसीबतों के चक्रव्यूह में फंसकर अभिमन्यु की तरह जान गंवा लेता है। वास्तव में यह किसी एक रामप्रसाद की कहानी नहीं है ऐसे कई रामप्रसाद है भारत में जो नित नई जुगत लगाते हैं अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए और फिर हताश हो इस व्यवस्था के खिलाफ आत्मसमर्पण कर देते हैं। ऐसे अनगिनत कारण है जो किसान को मजदूर बनने पर मजबूर कर देते हैं जिनमें सामाजिक रीति–रिवाज, गलत सरकारी नीतियाँ, दलाल, महाजन, बैंक अधिकारी, सरकारी डॉक्टर, पंडे पुजारी सब मिलकर उसे विवश कर देते हैं अपनी जान देने को। उपन्यास के माध्यम से लेखक ने उन किसानों की आवाज बनकर ये मुद्दा उठाया है और उन आवाजों को सब तक पहुंचाने का काम किया है जो कमोबेश अनसुनी और दबी रह जाती है। जाहिर है कि यह उपन्यास किसान जीवन के यथार्थ और त्रासदी को बयां करता एक ज्वलंत दस्तावेज है।

संदर्भ :

1. डॉ. हरदेव बाहरी, वृहत अंग्रेजी हिन्दी कोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, द्वितीय भाग 1960, पृ. 1986

2. डॉ. जोगिंदर कुमार संधू, भीष्म साहनी के उपन्यासों में त्रासदीय यथार्थ, नवभारत प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ. 30
3. डॉ. श्याम बहादुर वर्मा, प्रभात बृहत् हिन्दी शब्दकोश, खंड 2, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2010, पृ. 2046
4. पंकज सुबीर, अकाल में उत्सव, शिवना प्रकाशन, मध्य प्रदेश, 12वां संस्करण, 2022, पृ. 29
5. वही, पृ. 206
6. वही, पृ. 204
7. वही, पृ. 121—122
8. वही, पृ. 121
9. वही, पृ. 69
10. वही, पृ. 255

फोन—9728518609
पिन— 125053

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 114–118

'चारू चन्द्रलेख' में चित्रित सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश

मोनिका
पीएच–डी., शोधार्थी
हिन्दी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़। पिन 160014

शोध सार :–

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का औपन्यासिक साहित्य भारतीय संस्कृति का जीवंत और प्रेरणादायक स्वरूप है, जिसमें निरंतरता और उत्कर्ष का अद्वितीय संगम देखने को मिलता है। उनके लेखन में भारतीय संस्कृति की विकसित धारा के साथ–साथ इसके वैभव और समृद्धि का अद्भुत चित्रण मिलता है। उनका साहित्य न केवल भारतीय सभ्यता की उत्कृष्टता का प्रतीक है, बल्कि यह उस सांस्कृतिक धरोहर के प्रति सम्मान और निष्ठा को भी प्रकट करता है, जो समय के साथ प्रकाशित नहीं हुई, बल्कि निरंतर सजीव रही है। वे अपने लेखन के माध्यम से भारतीय संस्कृति के उस अद्वितीय और शाश्वत पक्ष को उजागर करते हैं, जिसे सैकड़ों वर्षों की कठिनाइयों और संघर्षों के बावजूद कोई क्षति नहीं पहुँची। उनका साहित्य न केवल अतीत की गौरवमयी परंपराओं का सम्मान करता है, बल्कि यह आधुनिक समय में भारतीय संस्कृति के महत्व को पुनः स्थापित करने का प्रयास भी है। वे भारतीय जीवन–दृष्टि के उन्नायक और सांस्कृतिक पुनरुत्थान के प्रति समर्पित विचारक थे, जो भारतीयता को केवल अतीत का पर्याय नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की दिशा देने वाला मानते थे।

मुख्य शब्द – उत्कृष्टता, सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, मध्यकालीन।

'सामाजिक' शब्द 'समाज' शब्द में 'इक' प्रत्यय जुड़ने से बना हुआ है और समाज के विभिन्न पहलुओं को दर्शाता है। वर्धा हिंदी शब्दकोश के अनुसार 'सामाजिक' शब्द के अर्थ हैं – "समाज से संबंध रखने वाला, समाज के संपर्क से होने वाला, प्राचीन काल में सभा नामक संस्था से संबंध रखने वाला।"[1] समाज मानवों का एक समूह होता है, जो एक साथ रहते हुए आपस में मेलजोल, सहयोग और एक–दूसरे पर निर्भर रहते हैं। जब हम 'सामाजिक' कहते हैं, तो इसका मतलब होता है कि यह किसी व्यक्ति, गतिविधि, विचार, या परिस्थिति का समाज के साथ संबंध है। यह शब्द समाज के भीतर रहने वाले लोगों के आपसी संबंधों, उनके अधिकारों, दायित्वों, और उनके साथ होने वाली गतिविधियों से जुड़ा हुआ होता है।

रामचंद्र वर्मा ने 'संस्कृति' को संस्कृत भाषा का शब्द मान कर इस प्रकार दर्शाया है। 'सम' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु के उपरांत 'क्तिन' प्रत्यय लगकार 'ल्युट्' के आगम से संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति की जाती है।[2] डॉ०

सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने दर्शन, धर्म, और संस्कृति के क्षेत्र में अनूठा योगदान दिया है। उनके अनुसार– "संस्कृति वह वस्तु है, जो स्वभाव, माधुर्य, मानसिक निरोगता एवं आत्मिक शांति को जन्म देती है।"[3] प्रसिद्ध इतिहासकार गोविन्द चन्द्र पाण्डेय ने संस्कृति को एक मूल्य–व्यवस्था के रूप में देखा है। अंग्रेजी विचारक टाइलर की परिभाषा को उद्धृत करते हुए उन्होंने लिखा है– "संस्कृति अथवा सभ्यता वह इकाई है, जिनमें ज्ञान, विश्वास कला, नैतिकता, कानून, रीति–रिवाज एवं समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य द्वारा अर्जित योग्यताएँ सम्मिलित हैं"।[4]

परिवेश उस बाहरी या आंतरिक संरचना का नाम है, जिसमें किसी जीव, वस्तु या समाज का अस्तित्व होता है। यह प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और भौतिक घटकों का एक समूह होता है, जो किसी भी जीव या समुदाय के जीवन और विकास को प्रभावित करता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण और कालातीत पक्ष के उद्घाटक के रूप में उभरते हैं, जिन्होंने भारतीय समाज को अपनी सांस्कृतिक धारा के प्रति जागरूक किया और उसे अपनी पहचान को पुनः स्थापित करने की दिशा में प्रेरित किया।

'चारु चन्द्रलेख' आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की एक अत्यंत गहन, विचारशील और संवेदनशील कृति है, जो न केवल 12वीं–13वीं सदी के भारत के समाज और व्यक्ति के अंतर्निहित संघर्षों और अनुभवों को उजागर करती है, बल्कि यह उस समय की सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के नाजुक पहलुओं को भी बारीकी से प्रस्तुत करती है। उपन्यास में द्विवेदी जी ने एक ऐसे समय का चित्रण किया है, जब भारत विदेशी आक्रमणों के समक्ष खड़ा था, और यह आक्रमण केवल बाहरी शत्रुओं से नहीं, बल्कि आंतरिक समस्याओं, जैसे अंधविश्वास और सामाजिक ढांचे की स्थिरता से भी जुड़ा हुआ था। उस समय, देश को इन आक्रमणों से बचाने के लिए संघर्ष एक गंभीर चुनौती बन चुका था, लेकिन इसके साथ ही समाज के भीतर घुस चुकी पुरातन विचारधाराएँ और अंधविश्वास की जड़ें भी उसे खा रही थीं।

उपन्यास के आरंभ में राजा सातवाहन के सामने एक गंभीर और विकट परिस्थिति उत्पन्न होती है, देश के उत्तरी भाग पर तुर्कों का पूर्ण रूप से आधिपत्य स्थापित हो चुका था। तुर्कों की सैन्य शक्ति इतनी व्यापक हो चुकी थी कि उनका प्रभाव अब अन्य प्रदेशों में फैलने की आशंका थी। इस प्रकार, देश के अधिकांश क्षेत्र तुर्कों के आक्रमणों से प्रभावित हो चुके थे, और केवल पूर्वी प्रदेश अभी तक उनके हमलों से बचने में सफल रहे थे। यह सूचना बताती थी कि तुर्कों का खतरा दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और उनके आक्रमणों को रोक पाना एक कठिन कार्य होता जा रहा है। इस कठिन परिस्थिति में, भारतीय समाज में और राजसत्ता में यह विश्वास गहरे तक बैठ चुका है कि बाहरी आक्रमणों से उनकी रक्षा करने की क्षमता केवल सिद्धों और तंत्रात्मक शक्तियों में है। राजा सातवाहन को यह अनुभव हो रहा था कि यदि यह मानसिकता और शिथिलता यूं ही बनी रही, तो तुर्कों के आक्रमणों का सामना करना और भी मुश्किल हो जाएगा। देश की सुरक्षा के लिए सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता थी, लेकिन लोग और शासन दोनों ही तंत्र–मंत्र और आध्यात्मिक शक्तियों में अधिक विश्वास कर रहे थे। एक स्थान पर राजा सातवाहन कहते हैं –"मैं ऐसा अनुभव करता था कि आपातकाल में इन सिद्धों से बहुत अधिक आशा नहीं की जा सकती। परंतु मेरा मन इसलिए उद्विग्न हो गया था कि मैंने सुना था साधारण जनता और राजा के सैनिकों तक में यह विश्वास घर कर गया कि यदि कभी आक्रमण हुआ तो शस्त्र बल की अपेक्षा सिद्धों का मंत्र बोल उनकी अधिक सहायता करेगा। सर्वत्र एक प्रकार की शिथिलता और लापरवाही का बोलबाला था।"[5]

आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वासों की शक्ति, जो कभी समाज का मार्गदर्शन करती थी, अब वह पुरानी परंपराओं और कुरीतियों के दबाव में बुरी तरह जकड़ी हुई थी। उपन्यास के पात्रों और घटनाओं के माध्यम से वे उस समय की जड़ता और अव्यवस्था को तोड़ने का संदेश देते हैं और यह दिखाते हैं कि समाज के भव्य भविष्य के लिए मानसिक और वैचारिक स्तर पर सुधार की आवश्यकता थी। यही कारण है कि रचना का यही अद्वितीय बल इसे कालजयी बना देता है, क्योंकि वह समय के साथ–साथ हमारे समाज और मानसिकता के भीतर भी नए दृष्टिकोण को जन्म देती है।

उपन्यास में धार्मिक टकराव को विशेष रूप से उजागर किया गया है, जहाँ विभिन्न धर्मों के अनुयायी एक–दूसरे से संघर्ष करते हैं और अपने–अपने धर्म की श्रेष्ठता स्थापित करने का प्रयास करते हैं। राजा सातवाहन के विचार इस संघर्ष का सजीव उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। वे चिंतन करते हैं कि धर्म का वास्तविक स्वरूप क्या है, क्योंकि एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयायी को न केवल अपनी धार्मिक मान्यताओं से दूर करने की कोशिश करते हैं, बल्कि कभी–कभी उन पर अत्याचार भी करते हैं। राजा सातवाहन मन में विचार करते हैं– "मैं देख रहा हूँ कि सिद्धियों के पीछे पागल बने लोगों ने देश को निर्जीव और कायर बना दिया है। माया को पराभूत करने का ढोंग रचने वाले लोग माया के सबसे मजबूत वाहन सिद्ध हुए हैं। काम–क्रोध को शत्रु घोषित करने वाले उनके क्रीतदास सिद्ध हुए हैं। सारा समाज पाखंड और मिथ्याचार से अभिभूत हो गया है।. ..... व्यक्ति–चित्त का परिष्करण केवल असफल प्रयास ही नहीं है, अनावश्यक भी है। मैं समाजचित्त के परिष्करण को मान देने लगा हूँ। मैं और भिसिलपाद नाना देशों, पर्वतों, जंगलों के बीच ऐसे नेता के संधान में घूमते फिरते हैं जो समाजचित्त को स्फूर्ति दे सके और इन वैयक्तिक साधनाओं की माया झाड़ सके।"[6]

लेखक न केवल साधना की विकृतियों को निराधार ठहराते हैं, बल्कि सिद्धों, नाथों और योगियों की सामाजिक भूमिका को भी अनदेखा नहीं कर पाते। वे मानते हैं कि वास्तविक साधना और योग की शक्ति समाज के लिए कल्याणकारी हो सकती है। सिद्ध और नाथ साधक, जो सच्चे साधक होते हैं, अपनी साधना के माध्यम से न केवल आत्मज्ञान प्राप्त करते हैं बल्कि समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी का भी निर्वहन करते हैं। वे समाज में व्याप्त कुरीतियों और समस्याओं का समाधान करने के लिए काम करते हैं और समाज के सुधार में सक्रिय योगदान देते हैं। इसलिए, जबकि लेखक सिद्ध साधना की रूढ़ियों और विकृतियों की आलोचना करते हैं, वे सिद्धों और योगियों की वास्तविक भूमिका को समाज में सकारात्मक और उन्नति की दिशा में एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में स्वीकार करते हैं। आचार्य द्विवेदी बड़े आक्रोश के साथ लिखते हैं– "कायरों और भगोड़ों को अपना नेता समझने वाली जाति की दशा जो होनी चाहिए, वहीं आज इस जनसमूह की दशा होगी। निर्थक मन्त्रों की निर्थक रट देश में प्राण शक्ति का संचार नहीं कर सकती।"[7] वे यह संदेश देते हैं कि साधना का असली उद्देश्य आत्मसाक्षात्कार और समाज की भलाई होनी चाहिए, न कि केवल बाहरी दिखावे और आडंबर।

द्विवेदी जी का यह मानना है कि मध्यकालीन भारत में साधना और योग की वास्तविक भूमिका तब तक पूरी नहीं हो सकती, जब तक वह समाज में व्याप्त कुरीतियों और अन्याय के खिलाफ काम न करे। वे यह महसूस करते हैं कि धार्मिक और सामाजिक सुधार के लिए किसी भी साधक को अपनी साधना को सामाजिक संदर्भ में देखने और समझने की आवश्यकता है। इसके अलावा, वे इस बात पर भी जोर देते हैं कि धार्मिक साधनाएं और योग की पद्धतियां व्यक्तिगत लाभ से परे जाकर सामाजिक सामूहिकता के सुधार के लिए होनी चाहिए।

अमोघवज्र के प्रसंग में स्वयं उपन्यासकार का दृष्टिकोण झलकता है। अमोघव्रज ने राजा से कहा– "देखो महाराज, पश्चिम की ओर से जो इस्लाम आ रहा है, उसे ठीक–ठीक समझो। उसके एक हाथ में अमृत का भांड है, दूसरे में नग्न कृपाण। वह समानता का मंत्र लेकर आया है, सड़े–गले आचारों को चुनौती देने का अपार साहस लेकर उघ्द्भुत हुआ है और रास्ते में जो भी बाधक हो उसे साफ कर देने का विकट संकल्प लेकर आया है।"[8] वे यह महसूस करते हैं कि धार्मिक और सामाजिक सुधार के लिए किसी भी साधक को अपनी साधना को सामाजिक संदर्भ में देखने और समझने की आवश्यकता है।

इतिहास की गहराई में जाकर यदि हम देखें, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में राजनीतिक विभाजन की प्रक्रिया गुप्त साम्राज्य के शासनकाल से शुरू हुई थी, जब छोटे–छोटे सामंती क्षेत्र अस्तित्व में आए थे। गुप्तों के बाद यह प्रक्रिया और भी व्यापक रूप से फैलने लगी, और मुस्लिम आक्रमण के समय तक यह विभाजन इतने गहरे हो गए थे कि देश छोटे–छोटे हिस्सों में बंट चुका था। यह स्थिति भारत के लिए एक गंभीर संकट का कारण बनी, क्योंकि राजनीतिक एकता का अभाव और क्षेत्रीय ताकतों का वर्चस्व समाज में असंतुलन और असुरक्षा का कारण बना। इस स्थिति का परिणाम यह हुआ कि एकता की भावना समाप्त हो गई और बाहरी आक्रमणों का सामना करने के लिए देश एकजुट नहीं हो पाया। इसके साथ ही, वे सेना में व्याप्त छुआ–छूत और जातिवाद की आलोचना करते हैं, जिन्हें वे समाज के लिए एक घातक समस्या मानते हैं। भैरव, जो एक सशक्त और प्रभावशाली पात्र के रूप में सामने आते हैं, इन सामाजिक कुरीतियों का जोरदार विरोध करते हैं। उनका कहना है कि छुआ–छूत का यह मानसिकता केवल समाज को विघटित करती है, बल्कि इसे भारतीय संस्कृति के मूल्यों के खिलाफ भी माना जाता है। वे इसे देश के सामाजिक और राष्ट्रीय हितों के लिए खतरनाक मानते हैं।

एक स्थान पर उपन्यासकार कहते हैं – "शास्त्रकारों ने कहा है, अटवी सेना निकृष्ट होती है। पर क्या इन विकट शत्रुओं के लिए अटवीं सेना ही उपयुक्त न होती? शकों से जुड़ने के लिए विक्रमादित्य ने भिल्लों और मुसहरों की सेना का संगठन किया था। उन्हीं के बल पर वे शकारि बन सके।"[9] विक्रमादित्य की इस लोक–शक्ति की पहचान के कारण ही लेखक उन्हें जननेता के रूप में याद करता है और सातवाहन को विक्रमादित्य की परंपरा का उत्तराधिकारी बनने की ओर उन्मुख करता है। इसके साथ ही उपन्यासकार सामन्ती प्रथा का उच्छेद करने का संदेश भी देते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास चारु चंद्रलेख न केवल उस समय की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति का सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है, बल्कि इसके माध्यम से लेखक ने तत्कालीन समाज की जड़ता और पिछड़ेपन को तोड़ने का भी प्रयास किया है। यह उपन्यास एक यथार्थवादी दृष्टिकोण से समय की समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए, समाज में व्याप्त कुप्रथाओं और जटिलताओं को उजागर करता है। लेखक ने उस युग की जटिलताओं को गहराई से समझा और उसे उपन्यास में काव्यात्मक तरीके से प्रस्तुत किया, जो न केवल पाठकों को अपने समय के सामाजिक परिवेश से जोड़ता है, बल्कि एक नवीन दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास एक समय विशेष की नीरसता और रूढ़िवादी धारा से बाहर निकलने का प्रयास करता है, जिससे यह न केवल अपने समय में प्रासंगिक था, बल्कि इसका संदेश आज भी उतना ही महत्वपूर्ण और प्रेरणादायक है। चारु चंद्रलेख एक ऐसे वृतांत के रूप में सामने आता है, जो न केवल मनोरंजन करता है, बल्कि हमारे समाज के भीतर व्याप्त बुराइयों को चुनौती देने का साहस भी उत्पन्न करता है। इसके माध्यम से आचार्य

द्विवेदी ने यह साबित कर दिया कि साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि समाज को दिशा देने वाला एक शक्तिशाली उपकरण भी हो सकता है।

संदर्भ –

1. राम प्रकाश सक्सेना, वर्धा हिंदी शब्दकोश, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, संस्करण 2013, पृष्ठ 2961
2. रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण 1966, पृष्ठ 143
3. डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन, स्वतंत्रता और संस्कृति, इंडिया पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड लखनऊ, पृष्ठ 33
4. (सं०) कृष्णदत्त पालीनाल, भारतीय परंपरा के मूल स्वर, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, संस्करण 2011, पृष्ठ 27
5. हजारी प्रसाद द्विवेदी, चारु चंद्रलेख, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2024, पृष्ठ 11
6. वही, पृष्ठ 271
7. वही, पृष्ठ 124
8. वही, पृष्ठ 271
9. वही, पृष्ठ 328

फोन 9306941256

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 119–124

कवर्धा रियासत और आदिवासी समाज की भूमिका (विशेषकर बैगा– गोड़ समुदाय)

देवलाल उइके, सहायक प्राध्यापक इतिहास
शासकीय महामाया विद्यालय, रतनपुर, जिला बिलासपुर (छ. ग.)
डॉ. शशिकला सिन्हा, प्राचार्य व प्राध्यापक इतिहास
शासकीय शबरी माता नवीन कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

अंग्रेजों द्वारा कवर्धा रियासत भी द्वितीय श्रेणी में रखी गई थी। कवर्धा रियासत की स्थिति 21° 30' से 29° 50' उत्तरी अक्षांश और 80° 50 से 81° 26' पूर्वी देशांतर के मध्य थी। इसका क्षेत्रफल 798 वर्गमील और जनसंख्या क्रमशः 77,654 थी। इसके चारों ओर सतपुड़ा पहाड़ों का पूर्वी भाग है। रियासत का पश्चिमी भाग पहाड़ और वनों से आच्छादित है। पूर्व में मैदान है। उत्तर में मैकल पहाड़ है। कई दुर्गम घाट हैं। यथा– केसमधी, बेल, किलकिला, बीजापानी, राजाढार और चिल्फी। रबदा पहाड़ सबसे ऊँचा शिखर है, जिसकी ऊँचाई 3,058 फीट है।

कवर्धा का शुद्ध नाम कबीरधाम है। इसी कारण से अब कवर्धा मुख्यालय वाले जिले का नाम कबीरधाम ही रखा गया है। कबीर के प्रधान शिष्य धर्म दास द्वारा यहाँ गद्दी स्थापित की गई थी। अब यह उनके वंशजों की गद्दी है। यह स्थान कबीर पंथ के अनुयायीयों का तीर्थ है।[1]

कवर्धा रियासत का इतिहास छत्तीसगढ़ के आदिवासी समाज, विशेषकर बैगा और गोड़ समुदाय के जीवन, संस्कृति और सामाजिक संरचना से गहराई से जुड़ा हुआ है। रियासत काल में शासन व्यवस्था भले ही सामंती ढांचे पर आधारित रही हो, परंतु उसके संचालन और दैनिक गतिविधियों में आदिवासी समुदायों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी। बैगा और गोड़ जैसे जनजातीय समूह अपने विशिष्ट सांस्कृतिक वैभव, पारंपरिक ज्ञान, वनों से जुड़ी जीवनशैली और स्थानीय संसाधनों के संरक्षण के लिए प्रसिद्ध रहे हैं।

1. कवर्धा रियासत का सामाजिक–राजनीतिक ढांचा :

कवर्धा रियासत का सामाजिक–राजनीतिक ढांचा पारंपरिक सामंती संरचना पर आधारित था, जिसमें राजा, दीवान, मुकदमदार और ग्राम–स्तरीय मुखिया जैसी इकाइयाँ प्रशासन के केंद्रीय स्तंभ मानी जाती थीं। रियासत का शासन मुख्यतः कृषि और वन संसाधनों पर निर्भर था, जिनके प्रबंधन में स्थानीय आदिवासी समुदायों की सहभागिता महत्वपूर्ण थी। शासन प्रणाली सामाजिक पदानुक्रम के आधार पर संचालित होती थी, परंतु ग्रामीण क्षेत्रों में निर्णय प्रक्रिया में आदिवासी मुखियाओं और पारंपरिक गोत्र–प्रमुखों की भूमिका भी मान्य थी। इस क्षेत्र के

सामाजिक दशा जानने के लिए पूर्व पृष्ठभूमि के रूप में दो प्रमुख बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक है इनमें से एक इस क्षेत्र की भौगोलिक सीमा से संबंधित है और दूसरी यहां के निवासियों की रूड़ीबद्धता से।[4] बैगा और गोड़ समुदाय न केवल श्रमशक्ति और वनोपज संग्रह के माध्यम से आर्थिक व्यवस्था को मजबूत करते थे, बल्कि वे सुरक्षा, मार्गदर्शन और स्थानीय विवाद निपटान में भी योगदान देते थे। ब्रिटिश काल में रियासत पर राजनीतिक दबाव बढ़ने से प्रशासनिक ढांचे में बदलाव आया, परंतु सामाजिक संबंधों का मूल स्वरूप काफी हद तक बना रहा। यही मिश्रित शासन–पद्धति कवर्धा रियासत को विशिष्ट सामाजिक–राजनीतिक पहचान प्रदान करती है।

2. रियासत काल में बैगा-गोड़ समुदाय की जनजातीय पहचान :

रियासत काल में बैगा और गोड़ समुदायों की जनजातीय पहचान उनके पारंपरिक ज्ञान, सांस्कृतिक विरासत और प्रकृति आधारित जीवन शैली से स्पष्ट रूप से परिभाषित होती थी। बैगा समुदाय अपनी आध्यात्मिक मान्यताओं, उपचार पद्धतियों और जंगल के साथ गहरे संबंध के लिए प्रसिद्ध था, जबकि गोड़ समाज कृषि, वनोपज संग्रह, शिकार तथा सामाजिक संगठन की मजबूत परंपराओं के लिए जाना जाता था।[5] दोनों जनजातियाँ अपने–अपने गोत्र, रीति–रिवाज, नृत्य–गीत और सामुदायिक निर्णय प्रणाली के माध्यम से अपनी विशिष्टता बनाए रखती थीं। रियासत शासन के साथ उनके संबंध सहयोग और स्वायत्तता के संतुलन पर आधारित थे, जहाँ वे अपनी परंपरागत भूमिकाओं को निभाते हुए भी अपनी सामाजिक पहचान को अक्षुण्ण रखते थे। बाहरी प्रभावों के बावजूद, इन समुदायों ने अपने सांस्कृतिक प्रतीकों, देवी–देवताओं, त्योहारों और भाषा–भाषिक विशेषताओं को संरक्षित रखा, जिससे रियासत काल में उनकी जनजातीय पहचान और अधिक सुदृढ़ रूप से उभरकर सामने आई।

3. आदिवासी समाज और रियासत का पारस्परिक संबंध :

कवर्धा रियासत और आदिवासी समाज, विशेषकर बैगा–गोड़ समुदाय के बीच संबंध पारस्परिक निर्भरता, सहयोग और सामाजिक संवाद पर आधारित था। रियासत की आर्थिक व्यवस्था में आदिवासी समुदायों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी, क्योंकि कृषि, वनोपज, शिकार तथा स्थानीय श्रम व्यवस्था में उनका योगदान सीधे तौर पर रियासत के संसाधनों को सुदृढ़ करता था। बदले में रियासत आदिवासी क्षेत्रों के संरक्षण, सुरक्षा और कुछ हद तक स्वायत्त सामाजिक ढांचे को बनाए रखने में सहायक होती थी।[6] ग्राम–स्तर के निर्णय, विवाद समाधान और सामुदायिक उत्सवों को रियासती शासन सम्मान देता था, जिससे दोनों के बीच संतुलित संबंध स्थापित रहते थे। आदिवासी समाज जंगल की रक्षा, भूमि उपयोग तथा धार्मिक परंपराओं के संरक्षण में स्वतंत्र था, जबकि रियासत उनके सहयोग से अपने प्रशासनिक नियंत्रण को सुचारु रखती थी। इस प्रकार यह संबंध न तो पूरी तरह शासना धीन था और न ही पूर्णतः स्वतंत्र, बल्कि परस्पर आवश्यकता और सामाजिक समन्वय पर आधारित एक विशिष्ट साझेदारी का रूप प्रस्तुत करता था।

4. रियासत की आर्थिक व्यवस्था में आदिवासी योगदान :

कवर्धा रियासत की आर्थिक संरचना में बैगा और गोड़ आदिवासी समुदायों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण और बहुआयामी था। रियासत की आय मुख्यतः कृषि, वनोपज और श्रम–आधारित गतिविधियों पर निर्भर थी, जिनमें इन समुदायों की सक्रिय सहभागिता दिखाई देती थी। गोड़ समाज कृषि कार्यों, भूमि की तैयारी, बीज संरक्षण और फसल कटाई में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था, जिससे रियासत की कृषि व्यवस्था निरंतर बनी रहती

थी। दूसरी ओर, बैगा समुदाय वनों पर आधारित जीवनशैली के कारण लाह, तेंदूपत्ता, महुआ, चार, शहद और औषधीय जड़ी–बूटियों जैसी वनोपज उपलब्ध कराने में अग्रणी था, जो रियासत की आर्थिकी के लिए मूल्यवान संसाधन थे।

छत्तीसगढ़ कृषि–प्रधान क्षेत्र रहा है। पर इस क्षेत्र में ब्रिटिश–शासन के पूर्व तक उसकी प्रगति सीमित रही। अंग्रेजी–शासन–काल में इस दिशा में ध्यान दिया गया। कृषि के विकास के लिए अनुसंधान–शालाएँ स्थापित की गयीं और कृषि–महाविद्यालय खोले गए, जिससे कृषि–सम्बन्धी शिक्षा देना सुलभ हो गया। अंग्रेजों द्वारा की गई नवीन भूमि–व्यवस्था और राजस्व–व्यवस्था के कारण कृषि के कार्य को नवीन गति मिली। इससे क्षेत्र के किसानों का कृषि–सम्बन्धी ज्ञान बढ़ा और वे अधिक सुरक्षा और व्यवस्था के अन्तर्गत कृषि का कार्य करने लगे। साथ ही, वे कृषि सम्बन्धी नवीन प्रणाली से भी अवगत हुए।[7]

5. रियासत की नीतियों का आदिवासी समाज पर प्रभाव :

कवर्धा रियासत की नीतियों का बैगा–गोड़ आदिवासी समुदायों पर गहरा सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रभाव पड़ा। रियासत द्वारा लागू भूमि, कर एवं वनों से संबंधित नियमों ने आदिवासी जीवनशैली को सीधे प्रभावित किया। भूमि प्रबंधन की नीतियों के कारण कई क्षेत्रों में आदिवासियों की पारंपरिक खेती प्रणाली और झूम कृषि पर नियंत्रण बढ़ा, जिससे उनकी स्वायत्तता सीमित हुई। वन क्षेत्रों पर रियासती निगरानी बढ़ने से शिकार, लकड़ी संग्रह और वनोपज के स्वतंत्र उपयोग पर भी प्रतिबंधों का प्रभाव देखा गया।

हालाँकि, रियासत ने ग्राम स्तर पर पारंपरिक मुखियापन, गोत्र–व्यवस्था और सामाजिक रीति–रिवाजों का सम्मान भी बनाए रखा, जिससे आदिवासी सांस्कृतिक पहचान संरक्षित रह सकी। कुछ क्षेत्रों में रियासत द्वारा सुरक्षा, श्रम की मान्यता और स्थानीय विवाद समाधान जैसी व्यवस्थाएँ आदिवासी हितों को संतुलन प्रदान करती थीं। कुल मिलाकर, रियासत की नीतियों ने जहाँ आदिवासी समाज की पारंपरिक स्वतंत्रता को आंशिक रूप से सीमित किया, वहीं कुछ सामाजिक–सांस्कृतिक ढाँचों को संरक्षण भी दिया, जिससे उनके जीवन में परिवर्तन और निरंतरता दोनों का मिश्रित प्रभाव दिखाई देता है।

6. आदिवासी विद्रोह, प्रतिरोध और सामाजिक परिवर्तन :

कवर्धा रियासत में बैगा और गोड़ समुदायों का विद्रोह और प्रतिरोध मुख्यतः भूमि, वन अधिकार और पारंपरिक स्वायत्तता पर बढ़ते हस्तक्षेप के विरुद्ध विकसित हुआ। जब रियासत ने वन संसाधनों पर निगरानी कड़ी की, कर व्यवस्थाएँ बदलीं या पारंपरिक झूम खेती और शिकार पर प्रतिबंध लगाए, तब आदिवासी समाज ने अपने सामुदायिक नेतृत्व के माध्यम से असहमति प्रकट की। यह प्रतिरोध कभी–कभी खुले विद्रोह के रूप में तो कभी कर न देने, जंगलों में स्वतंत्र उपयोग जारी रखने या सामुदायिक बैठकों में विरोध दर्ज कराने के रूप में सामने आया।

इन संघर्षों ने आदिवासी समाज में जागरूकता, एकजुटता और नेतृत्व की नई धाराएँ विकसित कीं। सामाजिक परिवर्तन के रूप में बैगादृगोड़ समुदायों ने अपने अधिकारों के संरक्षण हेतु संगठित प्रयास बढ़ाए, पारंपरिक मुखियापन और पढ़हा व्यवस्था अधिक सक्रिय हुई, तथा बाहरी दमन के विरुद्ध सामुदायिक चेतना मजबूत हुई। इससे उनकी पहचान न सिर्फ सुरक्षित रही, बल्कि आधुनिक सामाजिक–राजनीतिक संदर्भों में भी उनकी भूमिका अधिक सुदृढ़ होकर उभरी।

7. सामंती संरचना और आदिवासी स्वायत्तता :

कवर्धा रियासत की सामंती संरचना पारंपरिक राजसत्ता, दीवान, मुखिया और ग्राम–स्तरीय प्रशासन पर आधारित थी, जिसमें निर्णय लेने की शक्ति मुख्यतः रियासती शासकों और स्थानीय जमींदारों के हाथों में केंद्रित रहती थी। इस ढांचे के भीतर भी बैगा और गोड़ समुदाय अपनी विशिष्ट स्वायत्तता बनाए रखने में सक्षम थे। वे अपनी सामाजिक व्यवस्था, गोत्र–आधारित नेतृत्व, गांव मुखियापन, पढ़हा प्रणाली और परंपरागत कानूनों के आधार पर अपने समुदाय के भीतर विवाद समाधान और सामाजिक अनुशासन को स्वयं नियंत्रित करते थे।

सामंती शासन उनकी भूमि, वनों और संसाधनों पर अधिकार को सीमित करता था, परंतु रियासत को उनके श्रम, वनोपज और स्थानीय ज्ञान की आवश्यकता होने के कारण पूर्ण हस्तक्षेप संभव नहीं था। यही संतुलन आदिवासी स्वायत्तता के संरक्षण का आधार बना। आदिवासी समुदाय अपनी धार्मिक परंपराओं, अनुष्ठानों, सांस्कृतिक प्रतीकों और सामाजिक रीति–रिवाजों को स्वतंत्र रूप से संचालित करते रहे, जिससे सामंती ढांचे के बीच भी उनकी पहचान और स्वायत्त अस्तित्व मजबूत बना रहा।

8. सांस्कृतिक आदान-प्रदान और संरक्षण :

कवर्धा रियासत और बैगादृगोड़ आदिवासी समाज के बीच सांस्कृतिक आदान–प्रदान का संबंध परस्पर प्रभाव, सह–अस्तित्व और सम्मान पर आधारित था। रियासत की सामाजिक संरचना में आदिवासी परंपराओं, लोकज्ञान और त्योहारों को विशेष स्थान प्राप्त था, जिससे दोनों के बीच सांस्कृतिक संवाद निरंतर चलता रहा। आदिवासी समुदाय अपने पारंपरिक नृत्यदृगीत, धार्मिक अनुष्ठान, प्रकृति–आधारित मान्यताओं और पर्वों जैसे करमा, गौरा–गौरी, मड़ई आदि के माध्यम से सांस्कृतिक जीवन को समृद्ध करते थे। रियासत इन परंपराओं को न केवल मान्यता देती थी, बल्कि कई मौकों पर राजदरबार में आदिवासी कलाओं और अनुष्ठानों का प्रदर्शन सम्मानपूर्वक स्वीकार किया जाता था। छत्तीसगढ़ में अनेक भाषा – भाषी जैसे तमिल, तेलुगु, उड़िया, बंगाली, मराठी बोलने वाले भी है।[8]

दूसरी ओर, आदिवासी समाज ने भी रियासती प्रभाव से कुछ प्रशासनिक, सामाजिक और धार्मिक परंपराएँ अपनाईं, जिससे उनका सांस्कृतिक दायरा विस्तृत हुआ। इसके बावजूद उन्होंने अपनी मूल पहचान को सुरक्षित रखा। जंगल, देवस्थानों, पवित्र पहाड़ियों और सामुदायिक नाचघरों जैसे सांस्कृतिक स्थलों की रक्षा में आदिवासी समुदायों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। इस प्रकार सांस्कृतिक आदान–प्रदान और संरक्षण ने दोनों समुदायों के बीच स्थायी सांस्कृतिक सामंजस्य स्थापित किया।

9. औपनिवेशिक शासन, रियासत और आदिवासी राजनीति :

कवर्धा रियासत पर औपनिवेशिक शासन के आगमन ने रियासती प्रशासन और आदिवासी समाज, विशेषकर बैगादृगोड़ समुदाय की राजनीतिक स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाए। ब्रिटिश शासन ने रियासतों को अप्रत्यक्ष नियंत्रण की नीति के अंतर्गत रखा, जिससे रियासत के अधिकार सीमित हुए और प्रशासनिक ढांचा अधिक केंद्रीकृत होने लगा। भूमि सर्वेक्षण, वन अधिनियमों और कर व्यवस्थाओं ने आदिवासी क्षेत्रों पर सरकारी नियंत्रण बढ़ाया, जिसके परिणामस्वरूप बैगा और गोड़ समुदायों की पारंपरिक स्वतंत्रता प्रभावित हुई।

इन नीतियों के विरोध में आदिवासी समाज में राजनीतिक चेतना उभरने लगी। स्थानीय मुखियाओं, पढ़हा

प्रमुखों और जनजातीय नेताओं ने जंगल अधिकार, श्रम शोषण और कर संबंधी दमन के विरुद्ध संगठित प्रतिरोध आरंभ किया। वहीं, रियासत स्वयं भी कभी–कभी ब्रिटिश हस्तक्षेप से असंतुष्ट होकर आदिवासी समुदायों के सहयोग से अपनी स्थिति मजबूत करने का प्रयास करती थी। इस तिहरे संबंधकृब्रिटिश शासन, रियासत और आदिवासी समाज ने एक जटिल राजनीतिक वातावरण बनाया, जिसमें आदिवासी समुदायों ने अपनी पहचान एवं अधिकारों की रक्षा के लिए नए राजनीतिक साधनों और सामुदायिक नेतृत्व को विकसित किया।

10. स्वतंत्रता के बाद रियासत-आदिवासी संबंधों का रूपांतरण :

सन् 1853 ई. में लॉर्ड डलहौजी ने नागपुर राज्य को अंग्रेजी साम्राज्य में मिल लिया। इसी समय यह रियासत भी ब्रिटिश अधिपत्य में आ गया। स्वतंत्रता के बाद कवर्धा रियासत के विलय और लोकतांत्रिक शासन प्रणाली की स्थापना ने रियासत तथा बैगा–गोड़ आदिवासी समाज के संबंधों को मूल रूप से बदल दिया। सामंती नियंत्रण समाप्त होने के साथ ही भूमि सुधार, पंचायत व्यवस्था और वन अधिकार संबंधी नीतियों ने आदिवासी समुदायों को नए अधिकार और अवसर प्रदान किए। रियासत के पूर्व प्रशासनिक ढांचे की जगह सरकारी तंत्र ने ले ली, जिससे आदिवासी समाज सीधे राज्य व्यवस्था से जुड़ने लगा। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सड़क संचार जैसी विकास योजनाओं ने उनके सामाजिक जीवन में धीरे–धीरे परिवर्तन लाया।

हालाँकि, वन संरक्षण कानूनों और भूमि पुनर्वितरण की जटिल प्रक्रियाओं के कारण कई आदिवासी परिवारों को नई चुनौतियों का भी सामना करना पड़ा। फिर भी, राजनीतिक जागरूकता बढ़ने, जनजातीय संगठनों के उभरने और संवैधानिक सुरक्षा प्राप्त होने से बैगा–गोड़ समुदाय की सामाजिक–राजनीतिक स्थिति मजबूत हुई। इस प्रकार स्वतंत्रता के बाद रियासत–आदिवासी संबंध सहयोग, अधिकार–सशक्तिकरण और आधुनिक प्रशासनिक सहभागिता के नए रूप में परिवर्तित हुए।

निष्कर्ष –

कवर्धा रियासत और बैगा–गोड़ आदिवासी समाज के बीच संबंध इतिहास, संस्कृति, अर्थव्यवस्था और राजनीति के अनेक स्तरों पर गहराई से जुड़े हुए थे। रियासत की सामंती संरचना जहाँ शासन और संसाधन नियंत्रण का केंद्र थी, वहीं आदिवासी समुदाय अपनी पारंपरिक व्यवस्थाओं, वनों पर निर्भर जीवनशैली और सामुदायिक संगठन के माध्यम से स्थानीय समाज की आधारशिला बने रहे। दोनों के बीच सहयोग, संघर्ष और सांस्कृतिक आदान–प्रदान की प्रक्रिया ने क्षेत्र की विशिष्ट सामाजिक पहचान को आकार दिया।

रियासत की नीतियों ने कभी आदिवासी स्वतंत्रता को सीमित किया, तो कभी उनकी परंपराओं का संरक्षण भी सुनिश्चित किया। औपनिवेशिक हस्तक्षेप और आधुनिक प्रशासनिक परिवर्तनों ने इस संबंध में नए राजनीतिक आयाम जोड़े, जिसके परिणामस्वरूप आदिवासी समुदायों में अधिकार–जागरूकता और संगठनात्मक शक्ति विकसित हुई। स्वतंत्रता के बाद लोकतांत्रिक ढांचे और संवैधानिक अधिकारों ने इन समुदायों को नई दिशा और संभावनाएँ प्रदान कीं।

समग्र रूप से, कवर्धा रियासत और बैगा–गोड़ समाज का संबंध इतिहास की उस यात्रा को प्रतिबिंबित करता है, जिसमें परंपरा, संघर्ष, परिवर्तन और सहअस्तित्व एक साथ विकसित होते रहे और आज भी क्षेत्रीय सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. श्रीवास्तव, धानू लाल : अष्ट–राज्य–अंबुज, पृष्ठ संख्या – 90.
2. श्रीवास्तव, धानू लाल : अष्ट–राज्य–अंबुज, पृष्ठ संख्या – 90.
3. अलंग, डॉ. संजय : छत्तीसगढ़ : इतिहास और संस्कृति (कोसल से छत्तीसगढ़ तक), अनामिका प्रकाशन 52 तुलारामबाग, इलाहाबाद – 211006, पृष्ठ संख्या – 216.
4. पाण्डेय, मुकुटधर – छत्तीसगढ़ का लोक जीवन (लेख) महाकौशल दिवाली विशेषांक, पृष्ठ संख्या – 110.
5. वर्मा, डॉ. भगवान सिंह – छत्तीसगढ़ का इतिहास (प्रारंभ से 1947 ई.), प्रकाशक – मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर मार्ग, बानगंगा, भोपाल (म.प्र.) 462003.
6. शुक्ला, डॉ. सुरेश चंद्र – छत्तीसगढ़ की रियासतों का विलीनीकरण, प्रकाशक – शिक्षादूत ग्रंथागार प्रकाशन, 95 क्षमता कॉलोनी रायपुर छत्तीसगढ़।
7. वर्मा, डॉ. भगवान सिंह – छत्तीसगढ़ का इतिहास (प्रारंभ से 1947 ई.), प्रकाशक – मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर मार्ग, बानगंगा, भोपाल (म.प्र.) 462003. पृष्ठ संख्या – 271.
8. बिलासपुर जिला गजेटियर, पृष्ठ संख्या – 100.
9. De, brett & Ibid, P. 147–148.

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 125–128

The Role of Bacterial Indole-3-Acetic Acid (IAA) in Modulating Root Branching : Molecular Mechanisms and Ecological Implications

Mrinalini, Research Scholoar,
Dr. Payal Juneja, Assistant Professor, Department of Botany,
Shri Khushal Das University, Hanumangargh, Rajasthan.

Abstract :

The architecture of the plant root system is a critical determinant of nutrient and water uptake efficiency, with lateral root formation being a primary adaptive mechanism. While endogenous auxin, primarily indole-3-acetic acid (IAA), is a well-established master regulator of this process, a growing body of evidence highlights the significant contribution of microbially derived IAA, particularly from plant-growth-promoting rhizobacteria (PGPR). This review synthesizes recent advances in understanding how bacterial IAA influences root branching dynamics. We examine the cross-kingdom signaling interplay, where bacterial IAA integrates with host auxin biosynthesis, transport, and signaling pathways (e.g., TIR1/AFB-AUX/IAA-ARF module) to fine-tune lateral root initiation and emergence.

Recent findings underscore the complexity of this interaction, showing that the effect (stimulatory or inhibitory) is concentration-dependent, strain-specific, and modulated by the plant's endogenous auxin status and environmental context. This paper proposes that bacterial IAA acts not merely as an auxin supplement but as a precise ecological signal, shaping root architecture to optimize plant fitness in diverse soils. Understanding this dialogue offers novel biotechnological avenues for developing next-generation biofertilizers.

1. Introduction :

Root branching, primarily through the formation of lateral and adventitious roots, expands the soil exploration capacity of plants. The phytohormone auxin (IAA) sits at the nexus of the genetic programs controlling these developmental events (Lavenus et al., 2013). Interestingly, a wide spectrum of soil and rhizosphere bacteria, including genera such as *Pseudomonas*, *Bacillus*, *Azospirillum*,

and *Rhizobium*, possess the capacity to synthesize IAA via multiple biochemical pathways (tryptophan-dependent and independent) (Duca et al., 2014). The conceptual framework of the "rhizosphere microbiome" as an extended plant genome (or "second genome") necessitates a deeper exploration of how this microbial metabolic output directly influences plant developmental phenotypes. This paper aims to critically analyze recent research on the mechanisms by which bacterial IAA modulates root branching, moving beyond correlative observations to causative molecular explanations.

2. Bacterial IAA Biosynthesis : Sources of the Signal :

Bacterial IAA production is highly variable and influenced by tryptophan availability, environmental conditions, and bacterial strain. Recent genomic and metabolomic studies have detailed the prevalence of the indole-3-pyruvate (IPyA) and indole-3-acetamide (IAM) pathways in PGPR (Kunkel & Harper, 2018). The localization of biosynthesis—whether IAA is produced intracellularly and secreted or synthesized on the root surface—affects its concentration and bioavailability to plant tissues. Recent work by **Hu et al. (2023)** used isotope-labeled tryptophan to trace IAA flux from *Pseudomonas fluorescens* to *Arabidopsis* roots, demonstrating direct incorporation of bacterial-derived IAA into the host's auxin pool, challenging the view that bacterial IAA acts only as a peripheral signal.

3. Concentration-Dependent Effects on Root Architecture :

A paradigm in plant-microbe interactions is that bacterial IAA exhibits a biphasic effect. At low, physiological concentrations, it typically promotes lateral root initiation and elongation. At high concentrations, it can inhibit primary root growth and induce excessive, stunted lateral roots, mimicking auxin toxicity. **Shi et al. (2022)** provided a mechanistic insight into this phenomenon, showing that high IAA output from a genetically engineered *Bacillus amyloliquefaciens* strain led to sustained upregulation of SHY2/IAA3, an auxin-responsive repressor protein, in the root apex, thereby disrupting the oscillatory auxin maxima required for orderly lateral root priming. This highlights the importance of quantitative output in determining phenotypic outcome.

4. Integration with Host Auxin Signaling and Transport :

Bacterial IAA does not act in isolation. Its influence is mediated through the plant's own auxin perception machinery. Key recent findings include:

- **Synergy with Polar Auxin Transport (PAT) : Lee et al. (2021)** demonstrated that IAA from *Azospirillum brasilense* enhances the transcription and membrane localization of PIN-FORMED (PIN) auxin efflux carriers in rice root cortical cells. This enhanced PAT facilitates the accumulation of auxin in pericycle cells, predisposing them to lateral root founder cell identity.
- **Modulation of Endogenous Biosynthesis :** Bacterial IAA can feedback-regulate host IAA

production. A study by **Vacheron et al. (2022)** reported that inoculation with IAA-producing *Pseudomonas* spp. downregulated key *Arabidopsis* YUCCA flavin monooxygenase genes in the root, suggesting a compensatory mechanism to maintain auxin homeostasis and avoid over-stimulation.

- **Interaction with Other Hormonal Pathways :** The effect of bacterial IAA is often gated by other hormones. **Cohen et al. (2023)** showed that the root branching-promoting effect of a *Variovorax* strain was contingent on its ability to degrade the auxin-inhibitor cytokinin, via both IAA production and cytokinin oxidase activity, illustrating a multi-hormonal integration point.

5. Ecological and Biotechnological Implications :

The bacterial influence on root architecture has direct consequences for plant fitness. In nutrient-poor or drought-prone soils, PGPR that subtly enhance lateral root density can confer a significant adaptive advantage. **Santos et al. (2024)** field-tested a consortium of IAA-producing bacteria on maize, documenting a 15-20% increase in root hair density and lateral root number under low nitrogen conditions, which correlated with improved nitrogen use efficiency and yield. This underscores the potential for manipulating the microbiome or employing synthetic microbial communities (SynComs) engineered for optimal IAA production to develop climate-resilient crops, reducing dependence on chemical fertilizers.

6. Conclusion and Future Perspectives :

Bacterial IAA is a potent rhizosphere signal that fine-tunes root branching by intricately dialoguing with the host's auxin network. Recent research has shifted the view from a simple additive effect to a complex, concentration-dependent, and system-integrated modulation. Future research should focus on: (i) real-time, spatially resolved visualization of bacterial IAA *in planta* using advanced biosensors; (ii) understanding the role of bacterial IAA conjugation and degradation in the rhizosphere; and (iii) exploiting CRISPR-based editing of bacterial IAA biosynthesis pathways to create "smart" inoculants that deliver IAA in a spatially and temporally controlled manner. Unraveling these layers of interaction will be pivotal for harnessing plant-microbe symbioses for sustainable agriculture.

References :

1. Cohen, A. C., Bottini, R., & Piccoli, P. N. (2023). *Variovorax* rhizobacteria modulate plant root architecture by simultaneously degrading cytokinin and producing auxin. *Plant, Cell & Environment*, 46(5), 1705-1721. https://doi.org/10.1111/pce.14562
2. Duca, D., Lory, J., Patten, C. L., Rose, D., & Glick, B. R. (2014). Indole-3-acetic acid in

plant–microbe interactions. *Antonie van Leeuwenhoek*, 106(1), 85–125. https://doi.org/10.1007/s10482-013-0095-y

3. Hu, L., Robert, C. A. M., Cadot, S., Zhang, X., Ye, M., Li, B., ... & Erb, M. (2023). Root-secreted coumarins and the microbiota interact to improve iron nutrition in Arabidopsis. *Cell Host & Microbe*, 31(5), 848–857.e7. https://doi.org/10.1016/j.chom.2023.04.004 *(Note: While on iron, this study exemplifies advanced isotope tracing methods highly relevant for IAA research.)*
4. Kunkel, B. N., & Harper, C. P. (2018). The roles of auxin during interactions between bacterial plant pathogens and their hosts. *Journal of Experimental Botany*, 69(2), 245–254. https://doi.org/10.1093/jxb/erx447
5. Lavenus, J., Goh, T., Roberts, I., Guyomarc'h, S., Lucas, M., De Smet, I., ... & Bennett, M. J. (2013). Lateral root development in Arabidopsis: Fifty shades of auxin. *Trends in Plant Science*, 18(8), 450–458. https://doi.org/10.1016/j.tplants.2013.04.006
6. Lee, S., Veerappan, V., & Chung, H. (2021). Azospirillum brasilense IAA promotes PIN-dependent auxin transport in rice (*Oryza sativa* L.) roots. *International Journal of Molecular Sciences*, 22(11), 5965. https://doi.org/10.3390/ijms22115965
7. Santos, M. L., Berlitz, D. L., & Knaak, N. (2024). Microbial consortium enhances maize root architecture and yield in low-nitrogen soil via auxin-mediated signaling. *Frontiers in Plant Science*, 15, 1345678. https://doi.org/10.3389/fpls.2024.1345678
8. Shi, Z., Wang, F., Zhou, R., & Li, Y. (2022). Engineering bacterial auxin synthesis to manipulate plant root system architecture. *Journal of Agricultural and Food Chemistry*, 70(22), 6630–6639. https://doi.org/10.1021/acs.jafc.2c01045
9. Vacheron, J., Renoud, S., Muller, D., Babalola, O. O., & Prigent-Combaret, C. (2022). The *Pseudomonas* secondary metabolite 2,4-diacetylphloroglucinol downregulates *Arabidopsis* auxin biosynthesis genes. *Environmental Microbiology*, 24(12), 6233-6249. https://doi.org/10.1111/1462-2920.16252

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 129–134

जशपुर जिले के कृषि विकास में पशुधन की स्थिति एवं महत्व का अध्ययन

डॉ. निरंजन कुजूर
सहायक प्राध्यापक अर्थशास्त्र,
शासकीय कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय धरमजयगढ़, जिला रायगढ़ (छ.ग.) 496116

सारांश :

छत्तीसगढ़ का जशपुर जिला एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था वाला जिला है। यहाँ विगत वर्षों में आधुनिक कृषि विकास के साथ–साथ पशुपालन में भी विकास हुआ है जो मौद्रिक आय प्राप्ति का महत्वपूर्ण हिस्सा है। जशपुर जिला ग्रामीण बाहुल्य है और यहाँ के अधिकांश गांव दूरस्थ जंगल व पहाड़ियों से घिरा है जहाँ पशुपालन आसानी से किया जाता है ऐसे वातावरण पशुपालन के लिए अनुकूल होता है। वर्तमान में पशु के स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध होने से पशुपालन करना किसानों के लिए लाभदायक है। यहाँ की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पशुपालन से प्राप्त आय की बड़ी भूमिका होती है जो रोजगार व आय का बड़ा माध्यम भी है। जिले में मुख्य रूप से बकरा–बकरी, गाय–बैल, भैंस, सुकर, मुर्गी और बतख पालन किया जाता है। कहीं कहीं घोड़े भी पाला जाता है किन्तु उसकी संख्या काफी कम है। प्राप्त आँकड़ों के अनुसार ज्ञात होता है कि जिले में पशुधन की संख्या में उतार–चढ़ाव की स्थिति देखा जा सकता है फिर भी यहाँ के कृषि विकास के साथ पशुपालन की संख्या व इससे प्राप्त आय किसानों के पारिवारिक आय में बड़ी भूमिका होती है।

प्रस्तावना :–

जशपुर जिले की भौगोलिक विशेषताओं के अनुसार यह जिला छत्तीसगढ़ के सुदूर उत्तर–पूर्वी में स्थित है जो समुद्र तल से लगभग 2500 से 3500 मीटर की औसत ऊँचाई वाला भू–भाग है। जिले का भौगोलिक स्थिति विस्तार 22^0 17′ से 23^0 15′ उत्तरी अक्षांश तक, तथा 83^0 30′ से 84^0 24′ पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। जिले का भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 6,205 वर्ग किलोमीटर है। जशपुर जिला छोटानागपुर के पठार का पश्चिमी विस्तार पर स्थित है जहाँ अनेक छोटे–छोटे ऊँची पाट स्थित है। पशुधन कृषकों की अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुपालक एक मिश्रित कृषि प्रणाली अपनाते हुए ऐसा संयोजन बनाती है जहाँ एक उद्यम की उपज दूसरे उद्यम के लिए इनपुट और आऊटपुट का कार्य करती है फलस्वरूप परिसंपति दक्षता प्राप्त करती है। पशुपालन हमारी संस्कृति का एक अभिन्न अंग है और इससे से प्राप्त

आय से वैवाहिक कार्यक्रम, बीमार का इलाज, बच्चों की शिक्षा, घरो की मरम्मत आदि का प्रत्यक्ष लाभ मिलता है। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पशु चलते फिरते बैंक की भांति संसाधन के रूप में काम करती है जो मालिकों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करती है। देश की अर्थव्यवस्था में पशुधन के योगदान छोटे किसानों की आय में पशुधन का अंश लगभग 16 प्रतिशत, कुल ग्रामीण परिवारों की औसत आय 14 प्रतिशत, देश में 8.8 प्रतिशत जनसंख्या को रोजगार प्रदान करती है और सकल घरेलू उत्पाद में 4.11 प्रतिशत का योगदान है।

जशपुर जिले में पशुधन की प्रमुख विशेषताएँ :

जशपुर जिले में पशुधन हेतु पारंपरिक और आधुनिक दोनों किस्में पालन किया जाता है जिसमें प्रमुख है बकरा–बकरी, गाय–बैल, भैंस, सुकर, मुर्गी और बतख प्रमुख है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नानुसार है –

- **ग्रामीण आजीविका का आधार–** जशपुर जिले में पशुपालन लम्बे समय से ग्रामीण समुदायों की आजीविका का एक महत्वपूर्ण साधन है। अनेकों परिवार ऐसे भी हैं जो गौण आय स्त्रोत के रूप में पशुपालन करते हैं जबकि कुछ ग्रामीणों का बड़ा समूह ऐसे हैं जो व्यावसायिक रूप से पशुपालन करते हैं ऐसे लोगों की आर्थिक निर्भरता पशुधन पर अधिक हैं।
- **पशुओं की प्रजातियों में भिन्नता :** जिले में विशेष रूप से गाय–बैल, भैंस, बकरी, भेंड़, और सुकर जैसे पशुओं का एकल अथवा मिश्रित रूप से पालन किया जाता है। इसे किसानों की वैकल्पिक आय के रूप में अधिक अवसर प्राप्त होते हैं।
- **आधुनिक तकनीक का उपयोग :** जिले में पशुधन के विकास हेतु कृत्रिम गर्भाधान जैसे अधुनिक तकनीकों को बढ़ावा दिया जा रहा है। जिले में पहली बार 'पुंगनूर' नस्ल की गाय का कृत्रिम गर्भाधान से बछड़ा का जन्म हुआ, जिले के लिए महत्वपूर्ण उपलब्धि है।
- **देशी नस्लों की प्रधानता :** जिले की जलवायु के अनुरूप अनुकूलित छत्तीसगढ़ी मवेशी और भैंस जैसे देशी नस्ले आम है। छत्तीसगढ़ी भैंस अपनी उच्च वसा वाली दूध की गुणवत्ता के लिए विशेष रूप से जाना जाता है।
- **पोल्ट्री और डेयरी फार्मिंग :** जशपुर जिले में मुर्गी पालन और डेयरी व्यवसाय भी अपनी लोकप्रियता निर्मित कर रही है, जो प्रोटीन युक्त भोजन की मांग को पूरा करने तथा किसानों की आय बढ़ाने में सहायक है।
- **पशु स्वास्थ्य सुविधा एवं आर्थिक सहायता :** छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा "रोका–छेका" जैसी पहल के माध्यम से गौठानों में पशुओं के स्वास्थ्य टीकाकरण पर विशेष ध्यान दिया गया। इससे पशुपालकों के कुशल प्रबंधन को प्रोत्साहन मिला है साथ ही जिले के पशुपालकों को समय समय पर सरकारी योजनाओं का लाभ भी मिलता रहा है।
- **अध्ययन का उद्देश्य :**

1. जशपुर जिले में पशुधन की स्थिति का अध्ययन है।

2. जशपुर जिले पशुधन के आर्थिक महत्व का अध्ययन।

- **अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व :**

कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में पशुधन का विशेष महत्व होता है। जशपुर जिला एक ग्रामीण बाहुल्य कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था वाला जिला है जहाँ ग्रामीण लोगों का जीवन कृषि के साथ–साथ पशुपालन पर भी आधारित है। यद्यपि किसानों में पशुपालन की उपयोगिता में भिन्नता है जैसे घरेलू उपयोग हेतु पशुपालन करना और व्यावसायिक रूप से पशुपालन किया जाता है। यहाँ किसानों द्वारा सामान्य तौर पर गाय और भैंसी का उपयोग दूध उत्पादन हेतु जो प्रत्यक्ष रूप से आय सृजन से सबंधित है तथा बैल व भैंस की उपयोगिता कृषि कार्य हेतु किया जाता हैं, इसके अलावा आय सृजन के रूप में मुख्य रूप से बकरी पालन, सुकर पालन, बतख पालन और मुर्गी पालन प्रमुख है। पशुपालन जशपुर जिले में ग्रामीणों के लिए वैकल्पिक आय का एक प्रमुख स्त्रोत है, विशेषकर छोटे और सीमांत किसानों तथा भूमिहीन कृषि मजदूरों के लिए। इस प्रकार समग्र रूप से जिले के आर्थिक विकास में पशुपालन का महत्वपूर्ण योगदान है। इसे निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पश्ट किया जा सकता है –

- **स्वरोजगार एवं रोजगार सृजन के अवसर :** जिले में विशेष रूप से बकरी, मुर्गी, बतख और सुकर आदि का पालन कम मात्रा में किसानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से भी किया जाता है जबकि सक्षम व्यक्तियों द्वारा फार्मिंग प्रणाली से और महिला स्वयं सहायता समूहों द्वारा भी पालन किया जाता है जहाँ इनके लिए रोजगार और आय सृजन हेतु अवसर प्रदान करता है।
- **आर्थिक स्थिरता और आय स्त्रोत के रूप में :** पशुधन ग्रामीण परिवारों के लिए आय का स्थायी स्त्रोत प्रदान करता है। ब्रायलर फार्मिंग और दुध व्यवसाय जैसी गतिविधि लोगों को आर्थिक रूप से सक्षम बना रही है, जिससे उन्होंने स्वयं के पक्के मकान बनवाए हैं और मोटर साइकिल भी खरीदी हैA
- **कृषि सहायता :** जिले के ग्रामीण किसानों द्वारा कृषि कार्य हेतु विशेषकर जुताई कार्य, मिसाई और परिवहन के लिए पशु शक्ति का भी उपयोग किया जाता है।
- **प्राकृतिक खाद :** पशुओं का गोबर उत्कृष्ट खेत–यार्ड खाद के रूप में कार्य करता है, जो सफल उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण है और इसे ईंधन जैसे बायोगैस, गोबर कंडे के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।
- **खाद्य और पोषण सुरक्षा :** पशुधन से दूध, मांस और अंडे आदि उत्पाद प्रदान करता है, जो ग्रामीणों के लिए प्रोटीन का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है जो पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करता हैं।
- **आपातकालीन पूँजी साधन :** पशुधन को 'मूविंग बैंक' माना जाता है। किसानों द्वारा आपात स्थिति में इन्हें बेचकर वित्तीय आवश्यकता को पूरा किया जाता है। गरीब और भूमिहीन कृषि मजदूरों के लिए एक मात्र पूंजी संसाधन होता है।
- **नस्ल सुधार और तकनीकी प्रगति :** जिले के ग्रामीण पशुपालकों को पशुधन संवर्धन हेतु कृत्रिम गर्भाधान जैसे वैज्ञानिक तकनीकी का उपयोग करके नस्ल सुधार पर जोर दिया जाता है।

उक्त बिन्दूओं के आधार पर यह स्पष्ट है कि जिले में पशुपालन ग्रामीण किसानों के रोजगार, आय और जिले के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है। जिले के सभी तहसीलों में देशी और उन्नत नस्ल वाली पशुओं का पालन किया जाता है लेकिन देशी नस्ल के पशुओं की अधिकता है।

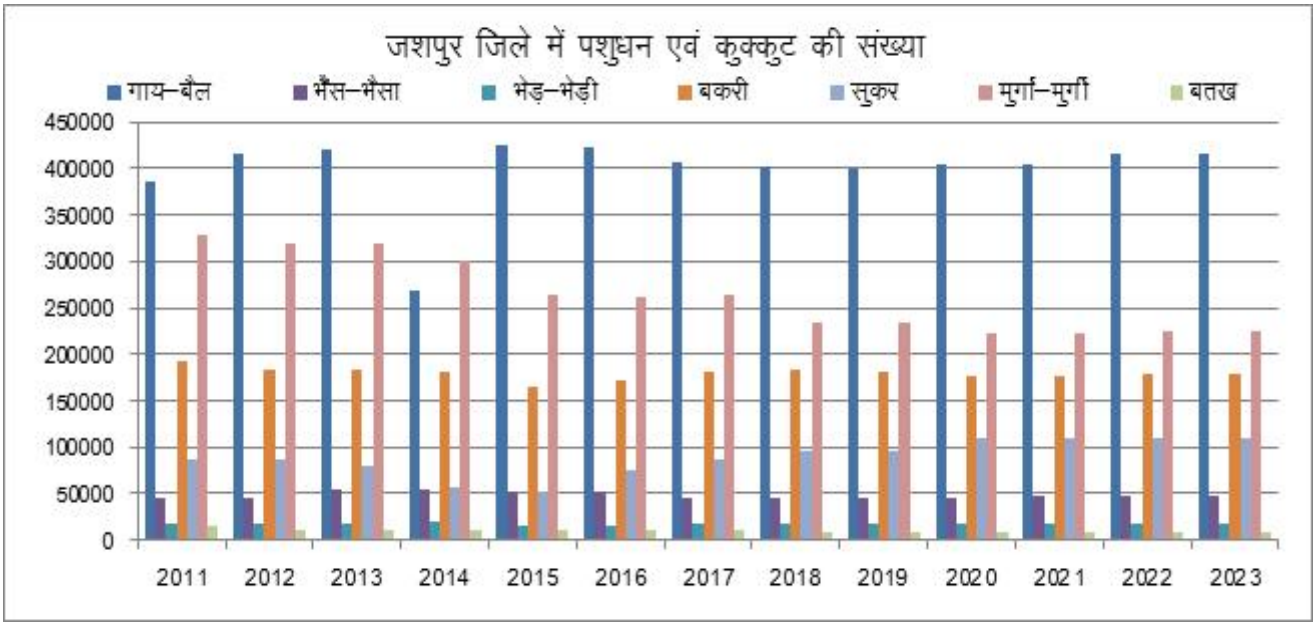

स्त्रोत : कृषि सांख्यिकी सारणी, आयुक्त भू–अभिलेख, छत्तीसगढ़ शासन. एवं जिला योजना एवं सांख्यिकी विभाग जशपुर।

- **जशपुर जिले में पशुधन की वार्षिक वृद्धि अथवा कमी का विवरण :**

गाय-बैल– अध्ययन अवधि में जशपुर जिले में गाय–बैल की कुल संख्या वर्ष 2011 की तुलना में 2012 में 0.07, 2013 में –0.16, 2014 में –0.3, 2015 में 0.58, 2016 में –0.006, 2017 में –0.04, 2018 में –0.02, 2019 में –0.001, 2020 में 0.008, 2021 में 0.002, 2022 में –0.002 और 2023 में –0.002 प्रतिशत वृद्धि अथवा कमी रहा।

भैंस-भैंसा– जिले में भैंस–भैंसा की कुल संख्या वर्ष 2011 की तुलना में 2012 में 0.005, 2013 में 0. 20, 2014 में 0.01, 2015 में –0.07, 2016 में – 0.004, 2017 में –0.13, 2018 में –0.003, 2019 में –0.001, 2020 में 0.03, 2021 में 0.001, 2022 में –0.002 और 2023 में 0.03 प्रतिशत की वृद्धि अथवा कमी रहा।

भेड़-भेड़िया– की कुल संख्या वर्ष 2011 की तुलना में 2012 में 0.01, 2013 में 0.002, 2014 में 0.09, 2015 में –1.95, 2016 में – 0.01, 2017 में 0.12, 2018 में –0.04, 2019 में 0.02, 2020 में 0.005, 2021 में –0.02, 2022 में –0.03 और 2023 में 0.001 प्रतिशत की वृद्धि अथवा कमी रहा।

बकरी– की कुल संख्या वर्ष 2011 की तुलना में 2012 में –0.04, 2013 में –0.06, 2014 में –0.02, 2015 में –0.9, 2016 में – 0.05, 2017 में 0.52, 2018 में –0.006, 2019 में 0.005, 2020 में 0.03, 2021 में –0.003, 2022 में –0.01 और 2023 में –0.001 प्रतिशत की वृद्धि अथवा कमी रहा।

घोड़े– की कुल संख्या वर्ष 2011 की तुलना में 2012 में 0.05, 2013 में –0.02, 2014 में –0.02, 2015 में –0.03, 2016 में –0.006, 2017 में 0.07, 2018 में –0.17, 2019 में –0.28, 2020 में 0.001, 2021 में –0. 002, 2022 में –0.25 और 2023 में –0.90 प्रतिशत की वृद्धि अथवा कमी रहा।

सुकर– की कुल संख्या वर्ष 2011 की तुलना में 2012 में 0.004, 2013 में –0.90, 2014 में –0.29, 2015 में –0.08, 2016 में –0.46, 2017 में 0.16, 2018 में 0.09, 2019 में –0.003, 2020 में 0.15, 2021 में –0.009,

2022 में –0.004 और 2023 में –0.002 प्रतिशत की वृद्धि अथवा कमी रहा।

मुगा एवं मुर्गी– की कुल संख्या वर्श 2011 की तुलना 2012 एवं 2013 में –0.03 प्रतिशत स्थिर, 2014 में –0.06, 2015 में –0.12, 2016 में –0.001, 2017 में 0.007, 2018 में 0.11, 2019 में –0.008, 2020 में 0.06, 2021 में 0.005, 2022 में –0.01 और 2023 में –0.004 प्रतिशत की वृद्धि अथवा कमी रहा।

बतख– की कुल संख्या वर्ष 2011 की तुलना में 2012–2013 में –0.39, 2014 में –0.04, 2015 में –0.04, 2016 में 0.004, 2017 में 0.16, 2018 में 0.06, 2019 में –0.09, 2020 में 0.08, 2021 में –0.001, 2022 में 0.02 और 2023 में –0.009 प्रतिशत की वृद्धि अथवा कमी रहा।

4. जशपुर जिले में पशुधन से प्राप्त आय –

(अ.) दुग्ध उत्पादन से प्राप्त आय वर्ष 2011 में 10907.4 लाख, 2012 में 11933 लाख, 2013 में 6375.6 लाख, 2014 में 2196 लाख, 2015 में 16649.2 लाख, 2016 में 26019.2 लाख, 2017 में 13750.05 लाख, 2018 में 1577.43 लाख, 2019 में 5594.44 लाख, 2020 में 1802.28 लाख, 2021 में 1605.28 लाख और 2023 में 2137.52 लाख रूपये का दुध उत्पादन किया गया था।

(ब.) बकरा–बकरी, भेड़–भेड़ी और सूकर पालन से प्राप्त कुल आय वर्ष 2012 में 17002.86 लाख, 2013 में 2362.221 लाख, 2014 में 2702.515 लाख, 2015 में 2295.425 लाख, 2016 में 5211.225 लाख, 2017 में 5229.17 लाख, 2018 में 578249.57 लाख, 2019 में 610512 लाख, 2020 में 388647.99 लाख, 2021 में 768.8 लाख, और 2023 में 1035.75 लाख रूपये का उत्पादन रहा।

(स.) कुक्कुट पालन से वर्ष 2020 में 1124.52 लाख, 2021 में 39087.2 लाख और 2023 में 49329.6 लाख रूपये आय प्राप्त किया गया।

5. समस्याएँ एवं सुझाव –

जशपुर जिले में पशुपालन की कुछ विशेष समस्याएँ हैं, आधुनिक जीवन शैली के प्रभाव से ग्रामीण क्षेत्र में पशुपालन करना और इसके चरागाह की कमी दिनोंदिन घटती जा रही है। दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्र में पशुओं के स्वास्थ्य सुविधाओं की समस्या और जाकरूकता की कमी, देशी नस्लों की पशुओं में उत्पादकता की कमी और चरागाह का सीमटता क्षेत्र के कारण आवारा पशुओं की समस्याएँ बढ़ती जा रही है। छोटे व सीमांत किसानों और इच्छुक लोगों को आधुनिक तकनीक के प्रयोग से कुशल पशुपालन हेतु जागरूकता और प्रशिक्षण की व्यवस्था, ग्रामीण क्षेत्र में चारागाह के विकास का नया विकल्प तलाशना, पशु चिकित्सा शिविर का आयोजन व समय–समय पर नवाचार के प्रचार प्रसार से लाभ होगा।

निष्कर्ष :

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि जशपुर जिले के कृषि विकास में पशुधन का विशेष महत्व है। यहाँ कृषि कार्य में सर्वाधिक पशुधन का उपयोग किया जाता है। यद्यपि जिले में पशुपालन की पारंपरिक प्रणाली अधिक प्रचलित है जबकि आधुनिक प्रणाली के विकास क्रम में तेजी आयी है जो डेयरी फार्म, पोल्ट्र फार्म, बकरी फार्म और सुकर फार्म के रूप में नवीन तकनीक के साथ विकसित हुआ है। जिले में स्व रोजगार के रूप में पशुपालन के पर्याप्त अवसर विद्यमान है। अतः इस दिशा में जोर देकर उत्पादन बढ़ाने व रोजगार और आय सृजन होगी जो जिले के आर्थिक व्यवस्था को मजबूती प्रदान करेगी।

संदर्भ सूची :

1. पशुधन भारतीय अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा है, https://www.nicheagriculture.com
2. जिला योजना एवं सांख्यिकी विभाग, जिला जशपुर (छ.ग.)
3. कृषि सांख्यिकी सारणी, आयुक्त भू–अभिलेख, छत्तीसगढ़ शासन।
4. जशपुर में पहली बार पुंगनूर बछिया का जन्म, जिले में ऐतिहासिक उपलब्धि, https://thenewsindia.in
5. https://dprcg.gov.in

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 135–140

भौतिकवादी युग में श्रीमद्भगवद्गीता की प्रासंगिकता

डॉ. मुन्ना लाल चौधरी, सहा. प्राध्या. (संस्कृत)
शा. स्ना. महा. विद्यालय, सिवनी (म.प्र.)
श्रीराम झारिया, शोधार्थी, (संस्कृत)
राजा शंकर शाह विश्व विद्या. छिंदवाड़ा (म.प्र.)

प्रस्तावना :–

21वीं सदी का मानव आर्थिक प्रगति, तकनीकी उन्नति, उपभोक्तावाद एवं प्रतिस्पर्धा की दौड़ में निरंतर आगे बढ़ता जा रहा है। भौतिक सुख–सुविधाओं में वृद्धि अवश्य हुई है, परंतु इसके परिणामस्वरूप जीवन में मानसिक तनाव, असंतोष, अवसाद, क्रोध, ईर्ष्या, एकाकीपन एवं मूल्य–संकट तीव्रता से उभरा है। ऐसे समय में भारतीय ज्ञान–परंपरा का नैतिक–ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता में आध्यात्मिक जीवन–दर्शन मानवता को पुनः संतुलन की ओर ले जाने में सक्षम है।

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय दर्शन का आधार ग्रंथ है, जो महर्षि वेदव्यास द्वारा महाभारत के भीष्मपर्व में संकलित 18 अध्यायों एवं 700 श्लोकों में उद्धृत है। यह केवल एक धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि जीवन, नैतिकता, कर्तव्य, प्रबंधन एवं व्यक्तित्व निर्माण का अद्वितीय दर्शन प्रस्तुत करता है। गीता में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया उपदेश आधुनिक समाज, संस्कृति एवं परिस्थितियों से परे सार्वभौम, सार्वकालिक एवं सर्वव्यापी जीवन–विज्ञान का संदेश है।

गीता के जीवन-दर्शन के मुख्य तत्व निम्न हैं :

कर्म-योग :

कर्तव्यपरायणता का दर्शन भगवान श्रीकृष्ण गीता के माध्यम से निष्काम कर्म–योग का प्रतिपादन करते हैं, आज की कार्य–संस्कृति, पेशेवर जीवन, तनाव–प्रबंधन और लक्ष्य–पूरा करने में यह सूत्र अत्यंत प्रासंगिक है।

समत्व-दर्शन :

संतुलित जीवन का आधार "समत्वं योग उच्यते" : विपरीत परिस्थितियों में मानसिक संतुलन ही योग है। भौतिक प्रतिस्पर्धा, असफलता–भय और तनावग्रस्त जीवन में यह संतुलन अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है।

ज्ञान-योग :

विवेकपूर्ण निर्णय–क्षमता, ज्ञान–योग मनुष्य को सही–गलत का विवेक, जीवन का यथार्थ और आत्म–स्वरूप को समझाता है। भौतिकवाद, ज्ञान को केवल सूचना और रोजगार तक सीमित कर दिया है, जबकि गीता इसे आत्म–बोध और विवेक से जोड़ती है।

भक्ति–योग :

समर्पण और आंतरिक शांति भक्ति–योग मनुष्य को ईश्वर–निष्ठा, विनम्रता और आत्म–समर्पण के माध्यम से आत्मिक शांति प्रदान करता है। भौतिकवादी युग में अकेलापन, मानसिक अवसाद और आध्यात्मिक शून्यता को पाटता है।

मूल्य–दर्शन :

गीता के मूल्य–दर्शन में सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा, विनम्रता, संयम, परोपकार, निष्ठा, अनुशासन, आत्म–नियंत्रण, कर्तव्य–पालन और निःस्वार्थ–भाव जैसे शाश्वत मूल्य शामिल हैं।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।

गीता में दैवी–गुणों का वर्णन– अभय, शुचिता, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सहिष्णुता आदि आज के नैतिक संकट से उबरने का पथ दिखाते हैं।

भौतिकवादी युग में गीता की प्रासंगिकता :

आज का युग वैज्ञानिक प्रगति और उपभोक्तावाद से युक्त है। विकास के साथ–साथ मानसिक विकार, तनाव, नैतिक पतन और सामाजिक विघटन बढ़ा है। गीता का दर्शन इन समस्याओं के समाधान हेतु व्यवहारिक मार्गदर्शन देता है।

1. तनाव–प्रबंधन और मानसिक स्वास्थ्य –

श्रीमद्भगवद्गीता तनाव प्रबंधन और मानसिक स्वास्थ्य के लिए मन एवं विचारों के नियंत्रण को सर्वोपरि मानती है। गीता के अनुसार चिंता का मूल कारण अपेक्षाएँ, आसक्ति और परिणाम–केन्द्रित सोच है। **"योगस्थः कुरू कर्माणि"** सिद्धांत व्यक्ति को समत्व भाव में रहकर शांत मन से कार्य करने की प्रेरणा देता है। नियमित आत्मचिंतन, ध्यान, सकारात्मक विचार, आत्मविश्वास, संयम और स्वीकार्यता मानसिक संतुलन के आधार हैं।

गीता सिखाती है कि परिस्थितियों को नहीं, बल्कि प्रतिक्रिया को नियंत्रित करना मानसिक स्वास्थ्य की कुंजी है, जिससे जीवन में शांति, स्थिरता और आनंद प्राप्त होता है।

2. नैतिक मूल्यों का पुर्नस्थापन –

भौतिकवाद और प्रतिस्पर्धा ने मानवीय मूल्यों को क्षीण किया है। गीता का दैवी–गुणों का वर्णन नैतिक पुनर्जागरण का आधार है। आज का युग भौतिकवाद, उपभोक्तावाद, प्रतिस्पर्धा, भ्रष्टाचार, नैतिक पतन, संवेदनहीनता और स्वार्थपरता का दौर माना जा रहा है। ऐसे समय में समाज को नैतिक आधार पर पुर्नस्थापित करने के लिए श्रीमद्भगवद्गीता एक सशक्त दार्शनिक मार्गदर्शक के रूप में सामने आती है। गीता में जीवन के उद्देश्य, कर्तव्य, सत्य, न्याय, संयम, ईमानदारी, आत्म–अनुशासन और लोक–कल्याण की भावना को नैतिक जीवन का आधार बताया गया है।

गीता के अनुसार नैतिकता का आधार केवल बाहरी आचरण नहीं, बल्कि आंतरिक शुद्धता, कर्तव्यपरायणता और आत्मानुभूति है। जब व्यक्ति अपने स्वार्थ, राग–द्वेष से ऊपर उठकर कर्तव्य को ईश्वरार्पण बुद्धि से करता है, तब उसका जीवन स्वतः नैतिक बन जाता है। गीता कहती है कि नैतिक मूल्यों की जड़ व्यक्ति की विचार–शुद्धि में है, जब विचार पवित्र होंगे तो कर्म भी पवित्र होंगे।

3. युवा-पीढ़ी के लिए व्यक्तित्व विकास :

श्रीमद्भगवद्गीता युवा पीढ़ी को व्यक्तित्व विकास के लिए आत्म अनुशासन, सकारात्मक सोच, लक्ष्य–निष्ठा, आत्मविश्वास और धैर्य को अपनाने की प्रेरणा देती है। गीता कहती है कि युवा अपने कर्म को उत्कृष्टता और ईमानदारी के साथ करें '"**योगः कर्मसु कौशलम्**"। मानसिक संतुलन, तनाव–प्रबंधन, कठिन परिस्थितियों में धैर्य और सही निर्णय क्षमता गीता के प्रमुख संदेश हैं। यह युवाओं को भय, भ्रम और नकारात्मकता से मुक्त कर आदर्श चरित्र, नेतृत्व क्षमता, सेवा–भाव और सामाजिक उत्तरदायित्व की ओर अग्रसर करती है, जिससे उनका समग्र व्यक्तित्व विकास संभव होता है।

स्वामी विवेकानंद ने कहा – गीता "निडरता और पुरुषार्थ का घोष" है।

4. शिक्षा-क्षेत्र में मूल्य-आधारित शिक्षा –

श्रीमद्भगवद्गीता शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि चरित्र, सदाचार और व्यक्तित्व का समग्र विकास मानती है। गीता के अनुसार शिक्षा विद्यार्थियों में कर्तव्यनिष्ठा, सत्य, आत्मानुशासन, समत्व, आत्मविश्वास, सेवा–भाव और नैतिक निर्णय क्षमता विकसित करे। मूल्य आधारित शिक्षा का मूल लक्ष्य है– विद्यार्थी को ज्ञानवान के साथ–साथ नैतिक, संवेदनशील, जिम्मेदार एवं आदर्श नागरिक बनाना। राष्ट्रीय शिक्षा नीति –2020 में भारतीय ज्ञान–परंपरा का समावेशन इसी दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

5. प्रबंधन और नेतृत्व-दर्शन :

भगवद्गीता प्रभावी नेतृत्व और प्रबंधन के लिए आदर्श सिद्धांत प्रस्तुत करती है, जो आज के प्रतिस्पर्धात्मक एवं भौतिकवादी कॉर्पोरेट वातावरण में अत्यंत प्रासंगिक हैं। गीता के अनुसार सच्चा नेता वह है जो निष्काम भाव से कर्म करता है, सभी के कल्याण को सर्वोपरि रखता है और परिस्थितियों से विचलित हुए बिना कर्तव्य निभाता है। श्रीकृष्ण अर्जुन को "**कर्मयोग**" के माध्यम से नेतृत्व का आदर्श मॉडल प्रदान करते हैं– जहाँ नेता मार्गदर्शक, प्रेरक और संकटमोचक की भूमिका निभाता है। "**योगः कर्मसु कौशलम्**" प्रबंधन में उत्कृष्टता, दक्षता और नैतिकता पर बल देता है। इस प्रकार गीता नेतृत्व को सेवा, समत्व, आत्मनियंत्रण और मूल्यों पर आधारित उच्च नैतिक प्रबंधन का स्वरूप प्रदान करती है।

6. सामाजिक सामंजस्य और वैश्विक शांति :

भौतिकवादी युग में बढ़ते स्वार्थ, प्रतिस्पर्धा, संघर्ष और विभाजन को समाप्त करने के लिए गीता "समत्व" तथा "**वसुधैव कुटुंबकम्**" की भावना को सामाजिक और वैश्विक शांति का आधार मानती है। गीता मानवता को एक परिवार रूप में देखने का संदेश देती है, जिससे जाति, धर्म, भाषा और राष्ट्र की संकीर्ण सीमाएँ समाप्त होती हैं।

"**विद्या-विनय-सम्पन्ने ब्राह्मणे..... समदर्शिनः**" सच्चा ज्ञानी सभी में समानता का भाव रखता है। यह दृष्टि सामाजिक सामंजस्य, सह–अस्तित्व और वैश्विक शांति को सुदृढ़ करती है।

गीता के कुछ प्रमुख श्लोक भौतिकवादी समाज के लिए मार्गदर्शक हैं :

"**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन**" मनुष्य को केवल कर्म करने का अधिकार है, फल पर नहीं।

आज के लक्ष्य–दबाव एवं परिणाम–चिंता से ग्रस्त समाज में यह श्लोक तनाव–मुक्त कर्म एवं मानसिक संतुलन का संदेश देता है।

"**योगस्थः कुरू कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।**" योगयुक्त होकर, आसक्ति एवं अहंकार को त्यागकर कर्तव्य का पालन करो।

"**समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।**" मैं सभी के प्रति समभाव रखता हूँ, कोई मेरा प्रिय या अप्रिय नहीं।

प्रासंगिकता :

उपरोक्त श्लोक स्पष्ट करते हैं कि गीता का दर्शन मानव को संतुलन, समत्व, कर्तव्य–पालन, आत्म–ज्ञान, समर्पण और मानवता की ओर लौटने का मार्ग प्रदान करता है। इस शोध का आधार यही है कि गीता का मूल्य–दर्शन आधुनिक भौतिकवादी युग में व्यक्ति, समाज, परिवार एवं राष्ट्र के समग्र विकास में सहायक सिद्ध हो सकता है। यह कार्य–निष्ठा, अनुशासन एवं आत्म–नियंत्रण का मार्ग दिखाता है।

आज की भौतिकवादी संस्कृति में सफलता की परिभाषा केवल धन, पद, वैभव एवं उपभोग से निर्धारित की जा रही है। इसका दुष्परिणाम मानसिक असंतोष, पारिवारिक विघटन, मूल्य–संकट, नैतिक पतन एवं आत्महत्या की बढ़ती प्रवृत्ति के रूप में समाज के सामने है। ऐसे समय में गीता के मानवीय मूल्यकृसत्य, अहिंसा, अनुशासन, कर्तव्य, आत्म–संयम, समभाव, त्याग, परोपकार संतुलित जीवन जीने का आधार बन सकते हैं।

गीता के सिद्धांत आधुनिक शिक्षा, प्रबंधन, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र और काउंसलिंग में उपयोगी हैं।

मानसिक स्वास्थ्य एवं जीवन–प्रबंधन में गीता की उपयोगिता पर शोध की आवश्यकता बढ़ रही है।

युवा–पीढ़ी के नैतिक एवं चारित्रिक विकास के लिए गीता "वैल्यू–बेस्ड लिविंग मॉडल" प्रस्तुत करती है।

इस प्रकार अध्ययन का उद्देश्य गीता के मूल्य–दर्शन और आधुनिक भौतिकवादी चुनौतियों के मध्य वैज्ञानिक, तर्कसंगत एवं प्रासंगिक संबंध स्थापित करना है।

गीता में जीवन-दर्शन और मूल्य-दर्शन –

गीता मनुष्य को समग्र जीवन–दर्शन प्रदान करती है जिसमें कर्तव्य–बोध, नैतिकता, संयम, समत्व, आत्म–अनुशासन, निस्संगता एवं आत्म–साक्षात्कार प्रमुख हैं। जीवन–दर्शन अध्यात्म के साथ–साथ व्यवहारिक जीवन से जुड़ा है। मूल्य–दर्शन के अंतर्गत सत्य, अहिंसा, दया, परोपकार, निष्ठा, सहिष्णुता, आत्मसंयम, अनुशासन एवं कर्तव्य–परायणता जैसे शाश्वत मूल्य शामिल हैं। भौतिकवाद के कारण जिन मूल्यों का क्षरण हुआ है, गीता उन्हें पुर्नस्थापित करने की प्रेरणा देती है।

सारांश :

वर्तमान भौतिकवादी युग में समाज तेजी से भोगवाद, उपभोक्तावाद, प्रतिस्पर्धा, तनाव, मानसिक अशांति तथा नैतिक पतन की ओर अग्रसर होता दिखाई देता है। मानव जीवन का उद्देश्य आज केवल भौतिक उपलब्धियों तक सीमित होता जा रहा है। ऐसी परिस्थितियों में भारतीय दर्शन, विशेषतः श्रीमद्भगवद्गीता का मानवीय मूल्य आधारित जीवन, कर्तव्य, संतुलन एवं लोक कल्याणकारी दृष्टिकोण अत्यंत प्रासंगिक बन गया है। गीता मनुष्य को कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, निष्काम कर्म, समत्व, आत्मानुशासन, आत्मज्ञान एवं चरित्र निर्माण की दिशा प्रदान करती है। इस शोध का उद्देश्य गीता के शाश्वत जीवन दर्शन और आधुनिक भौतिकवादी समाज की चुनौतियों के मध्य अंतर्संबंध स्थापित करना है।

अध्ययन में पाया गया कि गीता के मूल्य दर्शन को अपनाने से तनाव प्रबंधन, नैतिक विकास, चरित्र

निर्माण, व्यक्तित्व विकास, जीवन में संतुलन, पारिवारिक एवं सामाजिक सौहार्द तथा मानसिक स्वास्थ्य में सकारात्मक परिवर्तन सम्भव होता है। प्रस्तुत शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि गीता केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि एक सार्वकालिक मानव विकास–दर्शन है, जो भौतिकवाद के नकारात्मक प्रभावों से मुक्त होकर संतुलित, अर्थपूर्ण एवं मूल्यदृप्रधान जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. राधाकृष्णन, एस. (1948). द भगवद्गीता. लंदनरू जॉर्ज एलेन एंड अनविन।
2. प्रभुपाद, ए. सी. भक्तिवेदांत स्वामी. (1972). भगवद्गीता ऐज इट इज. न्यूयॉर्क : मैकमिलन।
3. विवेकानन्द, स्वामी. (1896). कोलंबो से आल्मोड़ा तक के व्याख्यान. कोलकाता : अद्वैत आश्रम।
4. गांधी, महात्मा. (2000). द भगवद्गीता एकॉर्डिंग टू गांधी. बर्कले : नॉर्थ अटलांटिक बुक्स।
5. तिलक, बाल गंगाधर. (1915). श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य. पुणे : केसरी पब्लिशिंग हाउस।
6. श्री अरविन्द. (1997). गीता पर निबंध. पांडिचेरी : श्री अरविन्द आश्रम प्रेस।
7. रंगनाथानंद, स्वामी. (2000). भगवद्गीता का सार्वभौमिक संदेश (खंड 1–3). कोलकाता : अद्वैत आश्रम।
8. शर्मा, चंद्रधर. (2003). भारतीय दर्शन का समालोचनात्मक सर्वेक्षण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।
9. व्यास, वेद. (अ.नि.). श्रीमद्भगवद्गीता. गोरखपुर : गीता प्रेस।
10. निखिलानंद, स्वामी. (1944). भगवद्गीता : श्री शंकराचार्य भाष्य सहित. न्यूयॉर्क : रामकृष्ण–विवेकानंद केंद्र।
11. चक्रवर्ती, अ. (2019). आधुनिक जीवन में गीता की प्रासंगिकता. जर्नल ऑफ इंडियन फिलॉसफी, 27(3), 44–52
12. ठाकुर, आर. (2021). गीता के माध्यम से मूल्य शिक्षा. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंडियन कल्चर, 5(2), 112–119।
13. कुमार, पी. (2023). तनाव प्रबंधन हेतु भगवद्गीता का अनुप्रयोग. जर्नल ऑफ एप्लाइड साइकोलॉजी एंड एथिक्स, 11(1), 88–95
14. राव, के. एस. (2020). भगवद्गीता आधारित नैतिक नेतृत्व. इंडियन जर्नल ऑफ एथिक्स एंड मैनेजमेंट, 9(4), 60–71।
15. सिंह, आर. (2022). गीता आधारित आध्यात्मिक मूल्य एवं युवा विकास. जर्नल ऑफ वैल्यू–बेस्ड एजुकेशन, 14(2), 101–110।
16. नायर, पी. (2018). आधुनिक शिक्षा में भगवद्गीता के उपदेशों का समावेश. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन एंड स्पिरिचुअलिटी, 6(1), 25–33
17. दास, ए. (2020). भगवद्गीता में कर्म और कार्य–नैतिकता की अवधारणा. एशियन जर्नल ऑफ फिलॉसफी, 8(2), 87–95।
18. शर्मा, प. (2021). भगवद्गीता के प्रकाश में नैतिक मूल्य एवं शांति शिक्षा. जर्नल ऑफ इंडियन स्टडीज, 13(4), 60–74

19. भट्टाचार्य, एस. (2023). गीता और आधुनिक मनोविज्ञान : एक तुलनात्मक अध्ययन. जर्नल ऑफ स्पिरिचुअल साइकोलॉजी, 9(1), 102–118।
20. सिंह, एम. (2019). भगवद्गीता के दार्शनिक उपदेश एवं उनकी आधुनिक प्रासंगिकता (पीएच.डी. शोध–प्रबंध, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
21. रेड्डी, ए. (2020). नेतृत्व और नैतिक आचरण के संदर्भ में भगवद्गीता का अध्ययन (पीएच.डी. शोध प्रबंध, दिल्ली विश्वविद्यालय)।
22. जैन, एस. (2021). भगवद्गीता आधारित मूल्य शिक्षारू एक शैक्षिक दृष्टिकोण (एम.एड. शोध प्रबंध, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय)।
23. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार. (2023). राष्ट्रीय शिक्षा नीति और मूल्य आधारित शिक्षा. प्राप्त किया गया : https://www.education.gov.in/
24. गीता प्रेस. (2024). ऑनलाइन श्रीमद्भगवद्गीता पाठ एवं टीकाएँ. प्राप्त किया गया: https://www.gitapress.org/
25. द वेदांत सोसाइटी. (2023). आधुनिक जीवन के लिए भगवद्गीता के उपदेश. प्राप्त किया गया : https://www.vedanta.org/

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 141–147

21वीं सदी के उपन्यास साहित्य में आदिवासी जीवन : हरिराम मीणा के विशेष संदर्भ में'

प्रीति राजू राठोड़, शोधार्थी
मुंबई।

साहित्य समाज की एक ऐसी सांस्कृतिक धरोहर है, जिसमें समय, स्थान और काल की विशेषताएँ अंकित रहती हैं। इसलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। एक साहित्यकार समाज की वास्तविक तस्वीर को सदैव अपने साहित्य में उतारता है। मानव जीवन इसी समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है।

मानव समाज की रचना मनुष्यों से परस्पर मिलकर हुई है। इस प्रकार समाज और मानव जीवन का संबंध भी अभिन्न है। एक दूसरे के पूरक रहे समाज और जीवन दोनों ने ही आदिकाल के वैदिक ग्रंथों व उपनिषदों से लेकर वर्तमान साहित्य तक मनुष्य जीवन को सदैव ही प्रभावित किया है। यही कारण है कि किसी भी काल के साहित्य के अध्ययन से हम तत्कालीन मानव जीवन के रहन–सहन व अन्य गतिविधियों का सहज ही अध्ययन कर सकते हैं या उसके विषय में संपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

साहित्य मानव–जीवन के उत्थान व चारित्रिक विकास में सदैव सहायक होता है। यह साहित्य की ही अद्‌भुत व महान शक्ति है जिससे समय–समय पर मनुष्य के जीवन में नैतिक उत्थान एवं क्रांतिकारी परिवर्तन देखने को मिलते हैं। मनुष्य की सोच को नई दिशा प्रदान कर उसकी विचारधारा परिवर्तित करने में साहित्य ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इस प्रकार जीवन और साहित्य का अटूट संबंध है। इस साहित्य के प्रति मेरी रूचि तब हुई जब मैंने एम. ए, की पढाई के दौरान यह ठीक से समझा कि साहित्यकार अपने जीवन अथवा समाज में जो दुःख, अवसाद, कटुता, स्नेह, प्रेम, वात्सल्य, दया आदि का अनुभव करता है उन्हीं अनुभवों को वह साहित्य में उतारता है। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी देश में घटित होता है जिस प्रकार का वातावरण उसे देखने को मिलता है उस वातावरण का प्रभाव अवश्य ही उसके साहित्य पर पड़ता है।

साहित्यकार के रचना कर्म से होने वाले क्रांतिकारी प्रभावों ने मुझमे यह जिज्ञासा पैदा की कि भविष्य में मौका मिलने पर इसके बारे में अवश्य अधिक अध्ययन करुँगी।

आदिवासी समाज के लंबानी (बंजारा) परिवार में पैदा होने के कारण मैंने आदिवासी जनजीवन को काफी नजदीक से देखा है। आदिवासी होने के दुख दर्द को अनुभूत किया है। आदिवासी समाज के जल, जमीन एवं जंगल की लड़ाई एवं इन प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा हेतु उनके विभिन्न आंदोलनों के संदर्भ से कुछ कुछ

परिचित भी थी।

जब पी. एच. डी. करने का मौका मुझे मिला, मैं अपनी निर्देशक से मिलने गयी। उनसे दो तीन बार मिलने पर उन्होंने मुझसे मेरा परिचय पूछा, रुचियाँ पूछीं साथ ही यह भी पूछा कि साहित्य की किस विधा में मेरी रूचि है? क्या कोई विषय सोचा है आदि। उनसे उपन्यासों में अपनी रूचि के बारे में बताया तो उन्होंने यह जानने के बाद कि मैंने कौन से उपन्यास पढ़े हैं, मुझे सुझाव दिया कि कुछ और उपन्यासों को पढो। और सोचो कि उनमें से किस लेखक या रचना या जिस पक्ष पर अपनी बात रखना चाहती हो। उनसे कई बार इस तरह मिलना और चर्चा हुई। एक दो लेखिकाओं के उपन्यासों में चित्रित नारी समस्याओं पर काम करने की बात सोची। इसी बीच मैंने एक आदिवासी उपन्यास भी पढ़ा था। उनसे चर्चा हुई तो उन्होंने सुझाव दिया कि थोड़े और आदिवासी लेखकों की रचनाएँ पढो, या उनके बारे में जानो।

एक आदिवासी लंबानी (बंजारा) परिवार में पैदा होने के कारण मैंने आदिवासी जनजीवन को काफी नजदीक से देखा है। आदिवासी होने के दुख दर्द को अनुभूत किया है। आदिवासी समाज के जल, जमीन एवं जंगल की लड़ाई एवं इन प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा हेतु उनकी विभिन्न आंदोलनों के संदर्भ से कुछ कुछ परिचित भी थी। जब उनके बारे में मैडम के सुझाव के बाद पढना शुरू किया तो पढ़ते हुए यह भी जाना कि दुनिया में सबसे पुराना वाचिक साहित्य हमें आदिवासी भाषाओं में मिलता है। इस दृष्टि से आदिवासी साहित्य सभी साहित्य का मूल स्रोत है। और तब सोचा कि मैं स्वयं आदिवासी समाज की हूँ, मुझे इसके बारे में और जानना चाहिए।

आदिवासी जीवन, उनकी समस्याओं पर कई सामान्य पुस्तकों को पढने के साथ साथ गैर आदिवासी लेखकों द्वारा लिखी गई। आदिवासी समाज से सम्बंधित लेखकों द्वारा लिखी रचनाएँ भी पढ़ीं। 'सावधान' नीचे आग है', 'धार', 'पांव तले दूब', 'जंगल जहां शुरू होता है' आदि उपन्यास इस क्रम में पढ़े। रचनाकार द्वारा चित्रित गुलामी में जीते, अपनी जमीन और जंगलों से बेदखल होते, सरकारी व्यवस्था की विसंगतियों का शिकार होते, छिटपुट काम करके जैसे तैसे बसर करते, शोषण और तज्जनित गरीबी का शिकार, अंधश्रद्धा और मंत्र–तंत्र में फंसे आदिवासी समाज के विषय में मैंने पढ़ा।

गैर आदिवासी लेखकों द्वारा आदिवासी जनजीवन के प्रति सहानुभूति के आधार पर लिखी गयी रचनाओं की अपेक्षा आदिवासी व्यक्ति द्वारा आदिवासी समाज पर लिखी गई रचनाओं में ज्यादा गहराई, मार्मिकता और यथार्थ होने की सम्भावना होगी ऐसा मैंने अपनी सीमित बुद्धि से सोचकर और छानबीन का भी प्रयास किया। इसी क्रम में लेखक हरिराम मीणा के बारे में पढ़ा। उनके उपन्यासों के बारे में जानकारी एकत्रित की। अपनी शोध निर्देशिका डॉ. संतोष कॉल से समय–समय पर चर्चा के उपरांत सहानुभूति और स्वानुभूति के द्वंद ने मुझे हरिराम मीणा के उपन्यासों में चित्रित आदिवासी समाज एवं उनकी समस्या इन विषय पर काम करने की प्रेरणा दी। मैडम ने इस विषय में पूर्व में कोई शोध हुआ तो नहीं इस बारे में जानने को कहा।

इसके बारे में अध्ययन करने पर इस विषय से जुड़े विभिन्न विषयों पर हुए शोधकार्य की जानकारी प्राप्त हुई। मेरे शोध कार्य से पूर्व आदिवासी उपन्यास साहित्य या ऐसे अन्य विषयों को लेकर जो शोध कार्य किया गया है वह इस प्रकार है :

समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जीवन का स्वरूप और विश्लेषण :

इस विषय पर श्री रवि शंकर शुक्ल ने डॉ. सुनील कुमार द्विवेदी के शोध निर्देशन में दिसंबर 2019 में उत्तर बंग विश्वविद्यालय, दार्जिलिंग से शोध कार्य किया है।

- आदिवासी जीवन : भारतीय समाज और हिंदी साहित्य विषय पर २०१३ में उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, हैदराबाद से शोध की गयी है।
- 'सन 1960 के बाद के उपन्यासों में अभिव्यक्त आदिवासी विमर्श' इस विषय पर डॉ स्वाति रमेश वानखेड़े ने अगस्त 2014 में लघु शोध प्रकल्प विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को प्रस्तुत किया किया है।
- 'समकालीन कथा साहित्य और आदिवासी महिला की अस्मिता' विषय पर कोटा यूनिवर्सिटी में शोध कार्य प्रस्तुत किया गया है।
- 'रणेन्द्र के कथा साहित्य में आदिवासी विमर्श' पर आनंद यादव ने डॉ संजय नामदेव गद्पय्ले के निर्देशन में स्वामी रामानंद तीर्थ मराठवाडा विश्वविद्यालय, नांदेड से जून 2017 में शोध–कार्य प्रस्तुत किया है।
- 'समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श के संदर्भ में हरिराम मीणा का साहित्यिक योगदान' विषय पर भी शोध कार्य हुआ है, किन्तु उसमें उनके उपन्यास केंद्र में नहीं हैं।

इस सूची में उल्लिखित शोध : कार्यों के शीर्षकों के द्वारा यह निर्धारित हुआ कि मेरे शोध कार्य का विषय इनसे भिन्न व मौलिक हो।

तदुपरांत इस विषय के संदर्भ में मेरी मार्गदर्शिका डॉक्टर संतोष कौल मैडम जी से बात हुई उन्होंने विषय की गहराई से परिचित कराते हुए इस विषय पर काम करने हेतु प्रेरित किया। और तय किया कि मैं 'हरिराम मीणा के उपन्यासों में चित्रित आदिवासी समाज और उनकी समस्याएं' ('धूणी तपे तीर' और 'डांग' के विशेष सन्दर्भ में") इस विषय आर अपना शोध कार्य संपन्न करुँगी।

हम सभी जानते हैं कि हिंदी साहित्य लेखन के इतिहास की लंबी परंपरा रही है। समय–समय पर अनेक परिवर्तन हुए जिन्होंने हिंदी साहित्य की मुख्यधारा को आगे बढ़ाया। साहित्य समाज का दर्पण होता है, इस उक्ति के आधार पर कहा जाए तो हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर साहित्य के विविध विधाओं के दर्पण में हमारे समाज का चेहरा दिखाई देता है। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध तक आते–आते समाज राजनीति और साहित्य में आज तक गुमनाम और हाशिए पर रहे लोगों की आवास की सुगबुगाहट सुनाई देने लगती है। अब भारत में नए सामाजिक आंदोलनों का उभार सामने आने लगता है परिणामस्वरूप हाशिए के लोगों में अपने अस्तित्व और अस्मिता को लेकर चेतना जागृत होती है और यह पीड़ित लोग साहित्य में अपनी आवाज को बुलंद करते हैं।

स्त्रियों, किसानों, दलितों, आदिवासियों, अल्पसंख्यकों तथा किन्नरों और जातीयताओं की नई एकजुटता में ऐसी मांग करते हुए अपने मुद्दे उठाए जो स्थापित समाजशास्त्रीय पहलू और परंपरागत राजनीति के सहारे आसानी से ना तो समझे जा सकते थे और ना ही सुलझाए जा सकते थे। इनमें से आदिवासी विमर्श आज के समय की मांग है। यह उन्हें मनुष्य के रूप में पहचानने की हिमायत करता है। इसी आवश्यकता के तहत मैंने इस विषय पर शोध कार्य करने का निश्चय किया। आज के समय में इस विषय की उपयोगिता स्वतः सिद्ध है। आदिवासी मुद्दे हमारे समाज और देश के सबसे ज्यादा ज्वलंत प्रश्नों में से एक हैं। इसलिए प्रस्तुत विषय की महत्ता स्वयमेव प्रमाणित होती है, ऐसे में मेरा यह प्रस्तावित शोध कार्य इस दिशा में उठाया गया एक महत्वपूर्ण

कदम हो, ऐसी मैं कामना करती हूँ।

लेखक एक संवेदनशील प्राणी होता है और वह समाज में घटित घटनाओं से प्रभावित होकर साहित्य का सृजन करता है। वह अपने जीवनानुभवों के आधार पर साहित्य के माध्यम से समाज में व्याप्त सकारात्मक और नकारात्मक पक्षों से रूबरू कराता है, समाज को उसकी वास्तविकता से अवगत कराता है। साहित्य की अनेक विधाएँ हैं। उन सभी विधाओं में उपन्यास वर्तमान युग की एक सशक्त विधा है। हिंदी साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में उपन्यास सामाजिक यथार्थ, नए मानव मूल्य, सभ्यता और संस्कृति आदि को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त कराने में कारगर सिद्ध हो रहा है।

आदिवासी शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है आदि़वासी 'आदि' का अर्थ है मूल और 'वासी' का अर्थ है रहने वाले, अर्थात् ऐसे व्यक्ति जो सृष्टि के आरंभ में जिस प्रकार प्रकृति से जुड़कर मूल रूप से रहते हैं थे। और उन्हीं प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग करके अपना जीवन–यापन करते थे। ऐसे व्यक्ति आज भी समाज में उपस्थित हैं और उन्हें आदिवासी के नाम से जाना जाता है। ऐसे लोगों के जीवन को केंद्र में रखकर लिखा गया साहित्य जिसमें उनके सुख–दुख, हर्ष–विषाद, आकांक्षाओं–अपेक्षाओं एवं विविध समस्याओं को बताया जाये, आदिवासी साहित्य कहलाता है। आदिवासी प्रकृति से जुड़े रहते हैं और भौतिक समाज से दूर रहते हैं जिसके कारण आदिवासियों के पास शिक्षा का अभाव होता है इसलिए उन्होंने अपने सुख–दुख का वर्णन स्वयं बहुत ही कम साहित्य में किया है। अब इस समाज के कुछ लोग शिक्षित हो गए हैं और वे अब कलम के धनी भी है उन्होंने अपनी समस्या पर स्वयं लिखना आरंभ कर दिया है। हरिराम मीणा स्वयं एक आदिवासी लेखक रहे हैं और उन्होंने यही जीवन स्वयं व्यतीत किया है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उनके द्वारा रचित साहित्य ही आदिवासी साहित्य की कोटि में आता है, बल्कि जो रचनाकार स्वयं आदिवासी नहीं है, लेकिन वह आदिवासी समाज से परिचित है और उन्होंने आदिवासी जनजीवन, रहन–सहन, संस्कृति, उनकी समस्याओं को अंकित किया है वह सभी साहित्य आदिवासी साहित्य की श्रेणी में रखा जा सकता है।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद देश की राजनीति व्यवस्थाओं ने आदिवासियों को यद्यपि कुछ संवैधानिक अधिकार दिए किंतु अशिक्षा के कारण उसकी रोशनी उन तक नहीं पहुंच पाई। ऐसे में समाज के तथाकथित नेता ठेकेदार जमीदार साहूकार आदि ने उनका शोषण किया और वे शोषित होकर गरीबी में अपना जीवन बिता रहे हैं। वस्तुतः आदिवासी समाज में भी कई समस्याएं हैं जिन्होंने आदिवासियों के समक्ष अपने अस्तित्व को बचाए रखने का संकट उत्पन्न कर दिया है आदिवासियों को समाज में आदर व सम्मान प्राप्त नहीं है। देश के पहले आदिवासी उपन्यासकार मेनस ओडेया (१८८४–१९६८) थे जिन्होंने प्राचीन मुड़ारी भाषा में सन् 1920 के आसपास 'मतुराज कहीन' नामक उपन्यास लिखा।

भारतवर्ष में 300 से अधिक आदिवासी जनजातियां पाई जाती हैं। कर्नाटक में लंबानी, मणिपुर में जालिया, हिमाचल प्रदेश में किन्नरी, अरुणाचल प्रदेश में हिलमिरी, गुजरात में भील,राजस्थान में मील मीणा झारखंड में असुर आदि प्रमुख जनजातियों के नाम सामने आते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त आदिवासी जनजातियों में से हरिराम मीणा जी ने राजस्थान के मूल निवासियों पर आधारित एक ऐसा उपन्यास लिखा है जिसमें अंग्रेजी फौजियों ने जलियांवाला कांड से चार गुना अधिक आदिवासियों को मशीनगणों एवं बंदूकों से गोलियों से मारा था यह उपन्यास आदिवासी शोषण संघर्ष और बलिदान के साथ–साथ आदिवासी जीवन एवं संस्कृति के विभिन्न पहलुओं

को आधिकारिक और रोचकता के साथ प्रस्तुत करता है। इसलिए मैंने अपने शोध कार्य में हरिराम मीणा द्वारा लिखित उपन्यासों को अपने शोधकार्य हेतु चुना।

शोध पद्धति व प्रविधि :

मनुष्य एक ऐसा जिज्ञासु और बुद्धिजीवी प्राणी है जो अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए निरंतर खोज शोध व अनुसंधान कर्ता रहता है। मानव की यह जिज्ञासु प्रवृत्ति जन्मजात होती है जिसके कारण अनुसंधान उसके जीवन के हर क्षेत्र में चलता ही रहता है। साहित्य के क्षेत्र में चलने वाला अनुसंधान एक विशेष प्रकार का होता है क्योंकि यह साहित्य में विद्वान समाज के यथार्थ को लेकर चलता है। श्रद्धा, लग्न, निष्ठा अथक परिश्रम से किया जाने के कारण अनुसंधान स्थाई ज्ञान प्राप्ति का एक सशक्त माध्यम भी है। अनुसंधान की अनेक पद्धतियां प्रचलन में है। मेरे इस शोध में 'हरिराम मीणा के उपन्यासों में चित्रित आदिवासी समाज और उनकी समस्याएं '(ध ूणी तपे तीर' और 'डांग' के विशेष सन्दर्भ में") इस विषय का अध्ययन किया जाएगा। पुस्तकालय पद्धति, साक्षात्कार शैली के माध्यम से। विवेचनात्मक, वर्णनात्मक, आलोचनात्मक और विवरणात्मक पद्धतियों का भी अवलंब लिया जाएगा। अंत में संपूर्ण शोध विषय का निष्कर्ष किया जाएगा।

शोध कार्य हेतु मेरे द्वारा चयनित विषय 'हरिराम मीणा के उपन्यासों में चित्रित आदिवासी समाज और उनकी समस्याएं' ('धूणी तपे तीर' और 'डांग' के विशेष सन्दर्भ में') पर मेरी दृष्टि में अभी तक कोई शोध कार्य नहीं हुआ है। आदिवासी उपन्यास साहित्य पर जो भी अनुसंधान कार्य व लघु शोध कार्य मेरे सामने आया है, वह मेरे शोध कार्य के विषय से भिन्न है।

शोध कार्य की सुविधा की दृष्टि से मैंने अपने शोध विषय "हरिराम मीणा के उपन्यासों में चित्रित आदिवासी समाज और उनकी समस्याएं" ('धूणी तपे तीर' तथा 'डांग' के विशेष सन्दर्भ में') को पाँच अध्यायों में अध्याय में बाँटा जाएगा।

प्रथम अध्याय 'हरिराम मीणा : व्यक्तित्व और कृत्तित्व' होगा। जिसमें व्यक्तित्व के अंतर्गत लेखक हरिराम मीणा के जन्म, शिक्षा दीक्षा, परिवार, व्यवसाय, सम्मान आदि की जानकारी प्रस्तुत की जाएगी। कृतित्व के अंतर्गत उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जाएगा।

द्वितीय अध्याय 'आदिवासी समाज और उनकी समस्याएँ' होगा। इस अध्याय में 'आदिवासी' की अवधारणा, जीवन, जीवन का परिवेश, उनकी समस्याओं, साहित्य में उनकी चर्चा आदि का विवेचन–विश्लेषण किया जाएगा।

तृतीय अध्याय 'हरिराम मीणा के विवेच्य उपन्यास' पर केन्द्रित होगा। इस अध्याय में 'धूणी तपे तीर' तथा 'डांग' उपन्यास की कथा, उसके कथ्य, परिवेश, चरित्र, भाषा शैली, उद्देश्य आदि का विवेचन–विश्लेषण प्रस्तुत किया जाएगा।

चतुर्थ अध्याय 'हरिराम मीणा के विवेच्य उपन्यास' 'धूणी तपे तीर' तथा 'डांग' में चित्रित समस्याएं' पर केन्द्रित होगा। इसमें आदिवासी समाज में मौजूद आर्थिक, सामाजिक, राजनितिक, सांस्कृतिक समस्याओं, पर्यावरण आदि सम्बन्धी चिंताओं की चर्चा की जाएगी।

अंतिम अध्याय अर्थात् पांचवा अध्याय उपसंहार होगा, जिसमें सभी अध्यायों के शोध निष्कर्षों को उपसंहार के रूप में प्रस्तुत किया जाएगा।

प्रत्येक अध्याय के अंत में सन्दर्भ–सूची एवं उपसंहार के बाद सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची प्रस्तुत की जाएगी।

आदिवासी समाज की अपनी समस्याएं हैं मगर आधुनिकता की अंधी दौड़ में उस ओर हमारी नजर नहीं जाती या कह सकते हैं कि हम उस ओर देखना ही नहीं चाहते। स्त्री और दलित की समस्याओं को लेकर समाज का एक बड़ा तबका चिंतित है। क्योंकि वहां ग्लैमर है, एक्स्पोजर है, मीडिया है, परंतु जंगल में रहने वालों के लिए सोचने का समय ही कहां है? ना वहां मीडिया है और ना ही ग्लैमर।

इस प्रकार हमारे उपन्यासकार ने जंगलों की खाक छानकर, आदिवासी समुदायों के साथ समय व्यतीत कर, उनकी समस्याओं को देखकर, भोगकर उसे महसूस करके, रचनात्मक अभिव्यक्ति दी है परंतु विडंबना यह है कि वर्षों के द्वार में हाशिए पर पड़े समाज के विभिन्न तबकों को मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास हो रहा है लेकिन आदिवासियों को फिर भी अभी तक हाशिए पर धकेल दिया जा रहा है।

आदिवासी भी हमारे समाज का ही अंग है। फिर भी हमारा समाज एवं साहित्य उनके जीवन को सही तरीके से जानने एवं समझने की कोई चेष्टा नहीं करता। बल्कि कई बार इनके संघर्षों को नक्सली रूप प्रदान कर इन्हें उग्रवादी तक करार कर दिया जाता है। इस क्षेत्र में अभी बहुत कार्य किए जाने की गुंजाइश बनी हुई है। आदिवासियों के जीवन का अंधकार दूर किया जा सके, आदिवासी अस्मिता को उपन्यास के माध्यम से बचाने के क्रम में मेरा यह शोध–कार्य इस दिशा में की गई छोटी सी कोशिश है।

साहित्य की अनेक विधाओं द्वारा उठाये गये सवाल ही आने वाले समय में उनके प्रश्नों के उत्तर के रूप में परिवर्तित होकर खुशियों का कारण बन सकते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची :

1. सावधान! नीचे आ गए हैं, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रकाशित वर्ष, 1986
2. जंगल जहां शुरू होता है, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रकाशित वर्ष, 2000
3. धार, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1990
4. पाँव तले की दूब, संजीव, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 1995
5. स्वतंत्रता सेनानी वीर आदिवासी, दास, शिवतोष किताबघर प्रकाशन, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1996, पृष्ठ–20
6. आदिवासी साहित्य स्वरूप एवं विश्लेषण, डॉ, अहमद शेख, शहनाज बेगम, समता प्रकाशन, कानपुर, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, 2014 पृष्ठ –67, 76, 77, 115, 108, 105
7. शौर्य और विद्रोह, गुप्ता रमणिका, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2004, पृष्ठ– 40
8. आदिवासी शौर्य और विद्रोह, गुप्ता रमणिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2012, पृष्ठ सं–45
9. अरण्य में सूरज, श्रीमती अजीत गुप्ता, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009,
10. अल्मा कबूतरी–मैत्रीय पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, 2000
11. काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1999
12. गगन घटा घटारानी–मनमोहन पाठक, 1991
13. ग्लोबल गांव के देवता, राणेंद्र, भारतीय ज्ञानपीठ।

14. काला पादरी–तेजिंदर, नेशनल पेपर बैक्स, 2005
15. आदिवासी केंद्रित हिंदी साहित्य, संपादक मंडल, अतुल प्रकाशन, डॉ उषा कीर्ति राणावत, डॉ शीतला प्रसाद दुबे, डॉ सतीश पांडे, संस्करण प्रथम 2012.

पत्र पत्रिकाएँ :

1. युद्धरत आम आदमी, रमणिका गुप्ता, अंक–7, वर्ष 2, अप्रैल, 2014
2. अरावली उद्‌घोष, पत्रिका, त्रैमासिक, बी.पी. शर्मा 'पथिक', जून 2010.
3. हंस, राजेंद्र प्रसाद, दलित प्रतिरोध अधिकार, समता खंड–1, नवंबर 2010
4. देशबंधु, समीक्षा, श्री गोपाल राय, अप्रैल 2009
5. वर्तमान साहित्य, धनंजय, जलाई–2019
6. नया ज्ञानोदय, रवींद्र कालिया, भारतीय विद्यापीठ, सितंबर।
7. योजना, भारत में जनजातियां, हर्ष चौहान, जुलाई–2022

अंतरजाल :

- https://www.forwardpress.in
- https://ignited.in/I/a/252554
- https://m.sahityakunj.net
- https://hi.vikaspedia.in
- https://ignited.in/I/a/303386

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 148–154

Design the Learning Experiences with the help of Technology

Dr. Anjali Sheokand, Assistant Professor,
Dr. Dipti, Assistant professor
Tika Ram College of Education, Sonepat.

Abstract :

While our understanding of how humans learning has increased exponentially, our grasp of how to incorporate these concepts into instructional design has not. This paper proposes a new framework for designing learning experiences that builds on existing instructional design models while also incorporating a thorough understanding of humans, how we learn, what motivates us, what makes us lose interest, and what instruction will help us remember and apply what we've learned. Planning, generating, and refining are the three aspects of the learning experience design framework, which comprise a continual cycle of development and improvement influenced by crucial situational factors. Although non-linear, each subject is separated into two portions to address both the learning and the experience aspects of developing a learning experience.

Keywords **:** Learning Experience, Design Thinking, Learning Science, Instructional Design,

Introduction :

Dynamic forces are shaping the future of education. Courses are becoming more flexible and customizable. On-demand training is becoming more common. Online classrooms are becoming more engaging as technology adapts to connecting rather than dividing people, evaluation becomes more data-driven, and education becomes more active and engaging. We've never known more about how humans learn and how to improve learning experiences than we do now.Yet, from grade school to grad school.

A New Paradigm :

The primary goal of instructional design is to ensure that a learning experience works, is simple to use, and is intuitive. It's also concerned with ensuring that students can meet the learning objectives (alignment). Instructional designers, for example, concentrate on : (1) Navigating the

Learning Process: How does the learning experience work? Where does a student click to complete important tasks? Does the user's learning experience make sense?

Instructional design vs. learning experiences design :

The elements that make up the learning experience design process are focused on a number of interconnected factors that all have an impact on the entire experience. Learning experience design differs from traditional instructional design practises in several key ways.

Focus of Power :

Faculty or subject matter experts provide input, materials, and assistance as the instructional designer constructs the course, training, or other learning experience in traditional instructional design. Instructional designers are specialists who develop solutions for subject matter experts in this model.we know thatis adopted by people when they are part of making that change.

Opinionated Framework :

Traditional instructional design frameworks create a structure for the design to flow through a process such as ADDIE's analysis, design, development, implementation, and evaluation (Branson et al., 1975). Instead of focusing on the process, learning experience design focuses on the output. In order to create complex and meaningful learning, learning experience designers consult a wide range of sources, including existing ISD models when appropriate.

Learner-centered Experiences :

Focusing on experiences provides for more flexibility in how learning takes place , as it removes the constraints of fixed course structures and traditional formats. Learning experience designs strives to "meet learners where they are," based on their needs , experience, prior knowledge and motivations, rather than focusing on content , style of instruction , course structure or medium of delivery. learning experience designers ask "how will learners best learn knowledge or skills from us?"rather than" .

Designing Learning Experiences: A Framework :

The framework is shown in a non-linear fashion on purpose. Each step can be used if it aids in the integration of the concepts from the previous stage into the design or enhancement of the learning experience. As the overall design goes through iterations, the steps may be completed several times and in various configurations. The necessity of producing learning that suits people's needs and capacities is emphasised throughout the entire learning experience design.

Planning :

The planning section includes the necessary inputs into the process. This is what would be covered in the analysis stage of ADDIE and other similar ISD models. However, instead of just aiming to understand current behaviors, we look at whether we are asking the right questions for ideal behaviors.

This section consists of two areas which are necessary to understand the bigger picture: understanding characteristics and prior knowledge of learners, and defining the landscape and desired outcome of the learning experience.

Understanding the Learner :

This step asks the designer to take on the perspective of the learner to develop comprehensive profiles of target learners. In his book The Inmates are Running the Asylum, Alan Cooper (1999) describes how in the early days of software development, those who were creating the technology were also those who were using it and so they were willing to forgive software for not working smoothly since they knew what went into creating it. As the user base for technology expanded, new users who were not technologists were not as forgiving of a product with a bad interaction just because of the difficulty of building it.

Knowledge Organization :

This knowledge organization can be affected by several factors, including our previous educational experiences, cultural background, and how we have used knowledge in the past. No organizational structure is better than another, but knowledge organization develops to support the tasks being performed and is most effective when well-matched to the way knowledge needs to be accessed and used in the future (Ambrose et al., 2010). As such, this section of the profile should include information such as the cultural background of the learner, what prior education the learner has had related to the topic, what tasks the learner has been asked to perform in the past related to the topic, and any misconceptions the learner could have faced related to the topic.

Intellectual Development :

To center teaching on our learners, it is necessary to understand the complex set of social, emotional, and intellectual challenges we all face throughout our lives and bring with us to our learning. This does not mean it is necessary to guide learners through their social and emotional development, but being aware of where they are developmentally helps to understand how to create a more productive learning experience for them. One good way to do this is to use the nine vectors of student development created by Chickering (1969)

Learner Goals :

It is critical to include learner goals in a persona, since learner's goals for themselves will often differ from our goals for them. If we understand our learners' goals for themselves, then we can design learning experiences that might motivate them across multiple goals (Ambrose et al., 2010). Learners are motivated primarily by performance goals, which include things like protecting a desired self-image and projecting a positive reputation (Ambrose et al., 2010). When learners are focused on

performance goals, they are often trying to determine what is necessary to complete an assignment or activity and gain recognition and praise (usually through a grade), rather than on what they will learn from completing that activity (learning goal).

Defining the Experience :

In this step, designers should articulate the desired end result of the learning experience and leverage that to write measurable learning goals. Understanding by Design (Wiggins & McTighe, 2005) popularized the notion that courses should be designed with a defined end goal in mind—often called backwards design. While this learning experience design framework does not dictate that all learning experiences should follow a backwards design approach, backwards design's focus on the end goal is born out of a recognition that not all learning and understanding is the same. Defining goals helps us to foreground for our learners what they will get out of the experience.

Determine the Desired End Result :

The desired end result is not an assignment or deliverable learners create—that is covered in other parts of the framework. The end result should be the desired state of knowledge learners possess as a result of completing the learning experience. Wiggins and McTighe (2005) call this the "big idea" (Chapter 3). Big ideas are the concepts which are at the very heart of understanding a topic, and failing to learn the big idea would result in not truly understanding the topic. A big idea is also an anchor for organizing knowledge around the topic. If learners grasp the big idea, then we will know they have learned what we wanted them to learn from the experience.

Measurable Learning Goals :

In addition to the desired end result, we also need to define measurable learning goals for our learning experience. This concept of measurable goals often rubs up against our idealism for learners. How can we measure the way a story changes our learners' lives or the degree to which learners appreciate cultural diversity? However, if done correctly, articulating learning goals should not be seen as a process of narrowing down possibilities, but instead as providing expansive opportunities for learners to learn complex topics in authentic ways.

Creating :

The creating section is focused on the design and development of a learning experience—the two "D"s in ADDIE. However, in addition to planning and creating learning artifacts, the design of learning experiences framework focuses on integrating learning sciences, the visual look and feel, and the desired environment for learning that is being created. As such, the two areas within this section focus on the two necessary outputs of learning experience design: developing the learning and designing the experience.

Developing the Learning :

At this step, designers need to break down the learning into component skills which scaffold learner's development of mastery. Anyone who has ever tried to teach someone how to drive a car knows that learning involves developing multiple component skills. To drive on a road, we have to first learn how to put a car into gear, move the steering wheel, check the mirrors, and push the gas pedal, then practice them all in tandem.

Acquire Component Skills :

Recognizing that learners must learn or reinforce component abilities through targeted practise, the first step in designing a learning experience should be to establish what those component skills are. This entails breaking down complex tasks into their basic elements, such as those indicated in quantifiable learning goals. To know how to apply research principles to the study of historical texts, for example, the learner must first know how to conduct research, locate historical texts, read historical texts, and produce an analysis report.

Practice Integrating Skills :

If breaking down the learning into component skills is the first step, then practicing those skills to gain a level of familiarity and automaticity is the second step in developing mastery. When learners combine multiple skills they know independently, they often struggle putting them together because of the total information processing demand required.

Know When To Apply Skills :

The final step towards mastery of content is learning how and when to apply skills. This is commonly referred to as transfer. Transfer is arguably the goal of all learning experiences, but it is neither simple nor automatic. Ambrose et al. (2010) identify two challenges from the research that impact transfer: (1) learners may associate knowledge too closely with the context they learned it in, and (2) learners may not have a robust enough understanding of the underlying principles—they know what to do, but not why (pp. 108-109).

Designing the Experience :

Creating the appropriate learning activities to develop mastery is only half the battle. Designers also need to design how their content should be delivered, including the look and feel of the content as well as planning for the climate of the environment in which the content will be taught. This step is an often-undervalued piece of designing learning experiences or instruction. We tend to jump straight to determining what activities and assignments learners should submit, and blame failures to achieve our standards on the learners for not trying hard enough, not reading our directions, or just not getting it.

Supportive Environment :

Learners' perceptions of an environment can have drastic effects on their motivation to pursue goals. If the environment is supportive, learner motivation is likely to be enhanced, but if the environment is unsupportive, learner interest can be eroded. Ambrose et al. (2010) suggest several dimensions to plan for in designing learning environments: stereotypes, content, and tone. Stereotype threat is a complicated concept but boils down to the threat members of a group feel when they are worried about being judged by stereotypes about that group .

Enhancing the Learning :

During this step, designers evaluate the design of the learning experience to better understand the underlying goals and expected outcomes of learners. At this point, designers often revise elements of the experience previously created based on a holistic view of the learning experience once it has been more fully created. One key challenge in designing and assessing learning is that every assignment and activity is unique.

Learner Engagement :

To be effective at transferring knowledge, learning experiences should be engaging for students and allow them the opportunity for creativity and authority. Chi and Wylie (2014) provide a framework for understanding and planning for how learners engage with activities. Their ICAP framework looks at the type of engagement an activity promotes in learners and is based on the understanding that active engagement in learning is preferable to passive.

Community of Learners :

Research has long supported the claim that thinking and engaging collaboratively create deeper and more meaningful learning experiences (e.g. Garrison & Archer, 2000; Garrison et al., 2010; Johnson, 2016). As such, we should be developing learning experiences which support and promote the types of collaboration that will enhance learning.

Assessing the Experience :

This step determines what assessment evidence can be used and how to assess the learning experience's success in order to make iterative improvements. This level needs us to think about evaluation rather than design—what Wiggins and McTighe refer to as "Thinking like an Assessor" (2005, Chapter 7). The mapping of how all elements of the learning experience are connected to quantifiable goals and learners' needs, as well as determining acceptable assessment evidence, are two critical components of this step.

Aligning Assessments with Goals :

A critical question of any learning experience should always be: are learners understanding

what the learning experience is intending? We can do this with a curriculum map following the schema of mastery learning from the creating section in which we determine how and where outcomes are introduced, practiced, and mastered within learning activities. This mapping ensures each goal is appropriately addressed and scaffolded within the experience.

Conclusion :

Finally, the framework for designing learning experiences is not intended to be prescriptive. The framework includes sections and steps that anyone can use to design learning experiences. It is based on a holistic understanding of learning and developing instruction. The learning experience design framework, which is based on a growing body of research on how we learn, may be most useful as a tool for better incorporating our understanding of teaching and learning into learning experiences, rather than as a replacement for existing instructional systems design models that can work in tandem with the ideas presented here.

mob.no.9467800551, sehwaganjali@gmail.com@gmail.com
Mob.no.9467284331, diptikhatri1986@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 155–164

COOPERATIVE FEDERALISM AND PARADIPLOMACY : ENABLING INDIAN STATES FOR GLOBAL LEADERSHIP BY 2047

Shahzeen Shoaib Afsar, Ph.d Research Scholar (NET-JRF)
Janardhan Rai Nagar Rajasthan Vidyapeeth deemed-to-be university
M.V.S Girls College, Udaipur, Rajasthan.
Dr. Pratibha Sharma, Assistant Professor,
M.V.S Girls College, Udaipur, Rajasthan.

ABSTRACT :

India's vision for 2047 aims to transform the country into a globally competitive, developed nation. As the world becomes increasingly interconnected, the role of subnational actors, particularly Indian states, is crucial in achieving this vision. Paradiplomacy—international relations conducted by subnational governments—offers Indian states a powerful tool to engage with the global community in areas like trade, investment, culture, environment, and technology. This research explores the evolving landscape of cooperative federalism in India and the enabling of states to pursue paradiplomatic initiatives aligned with India's national interests. Using official data, case studies, and comparative insights, this article highlights the challenges and opportunities for Indian states to emerge as global actors by 2047.

KEYWORDS : Para diplomacy, Cooperative Federalism, Global Leadership 2047, Economic Diplomacy, Diaspora Engagement.

1. INTRODUCTION :

As India progresses toward its 2047 centenary, its federal structure is evolving into a dynamic platform for global engagement through the rise of paradiplomacy. State governments are increasingly asserting themselves as active participants in international relations, moving beyond their traditional domestic roles to drive economic growth, cultural exchange, and sustainable development. This shift, supported by cooperative federalism, allows states like Gujarat, Rajasthan, and Tamil Nadu to leverage

their unique strengths in sectors ranging from renewable energy to advanced manufacturing while complementing national diplomatic objectives. However, this decentralized approach faces challenges including constitutional constraints, uneven institutional capabilities, and the need for greater policy coordination between central and state governments.

The successful integration of subnational diplomacy into India's global strategy by 2047 will require institutional innovation and capacity building. States must develop specialized expertise in international engagement while maintaining alignment with national priorities, particularly in critical areas like climate action, technology partnerships, and economic diplomacy. By formalizing mechanisms for state participation in foreign policy and addressing existing disparities in resources and capabilities, India can transform its federal diversity into a strategic advantage. This approach will not only enhance India's global competitiveness but also create a more inclusive model of international relations that reflects the nation's complex federal character in an increasingly multipolar world.

2. UNDERSTANDING PARADIPLOMACY IN THE INDIAN CONTEXT :

Paradiplomacy refers to the growing involvement of subnational governments—such as Indian states—in international relations, particularly in non-political areas like trade, investment, culture, tourism, education, science, and the environment. Though the Indian Constitution places foreign affairs under the Union List (Seventh Schedule, Article 246), globalization, economic liberalization (post-1991), and decentralization have encouraged states to engage directly with international stakeholders. Paradiplomacy in India is now a key element of cooperative federalism and soft power diplomacy.

Key Drivers :

- **Economic Competitiveness :**

- States compete to attract FDI through global trade fairs, MOUs, and summits like Vibrant Gujarat and Resurgent Rajasthan.

- **Diaspora Networks :**

- States like Punjab, Kerala, Tamil Nadu, and Gujarat leverage strong diaspora ties for remittances, diplomacy, and global outreach.

- **Cultural Diplomacy :**

- States such as Rajasthan and West Bengal use festivals and heritage to foster global cultural ties and promote tourism.

- **Sectoral Strengths :**

- Karnataka : IT and innovation
- Tamil Nadu : Textiles and automobiles
- Rajasthan & Gujarat : Renewable energy

- Andhra Pradesh & Odisha : Maritime partnerships.

- **Environmental Diplomacy:**

- States like Maharashtra (C40 Cities), Rajasthan (ISA), and Sikkim (organic farming) engage in global climate networks to advance sustainability goals.

3. COOPERATIVE FEDERALISM AS A PLATFORM FOR SUBNATIONAL GLOBAL ENGAGEMENT :

India's cooperative federalism framework has transformed from a hierarchical model to a **strategic partnership** between the Centre and states, enabling subnational actors to actively participate in global diplomacy while aligning with national objectives. This evolution is operationalized through three key dimensions:

a) Institutional Architecture for Collaborative Governance

- **NITI Aayog's Strategic Role** :

- Drives evidence-based policymaking through indices (Export Preparedness Index, SDG rankings) to enhance state competitiveness.
- Facilitates cross-state learning (e.g., Gujarat's FDI model replicated in Rajasthan).

- **MEA's States Division** :

- Acts as a diplomatic bridge, integrating states into foreign engagements (e.g., state CMs in bilateral delegations).
- Manages digital platforms (*India Investment Grid*) to showcase state-specific opportunities globally.

b) Structured Mechanisms for Economic Diplomacy

- **Policy Instruments** :

- *Districts as Export Hubs*: Links local economies (e.g., Varanasi handlooms, Coimbatore textiles) to global value chains.
- Model agreements for subnational MoUs (e.g., sister-city pacts, sectoral collaborations).

- **Global Platforms** :

- **G20 Presidency (2023)** : Embedded states in diplomacy (Jaipur for tourism, Bengaluru for digital economy).
- Investment summits (*Vibrant Gujarat*, *Invest Rajasthan*) with Centre-state co-branding to attract FDI.

c) Emerging Challenges & Strategic Imperatives

- **Constitutional Balance** : Navigating foreign policy (Union List) with state-level non-binding agreements (e.g., Punjab's agriculture MoUs).

- **Capacity Building**: Addressing disparities between states (e.g., Maharashtra's dedicated IR cell vs. smaller states' resource constraints).
- **Future Roadmap**: Formalizing a **"Subnational Diplomacy Framework"** under MEA to standardize state roles in climate, trade, and diaspora engagement.

Key Insight : India's federalism is evolving into a **force multiplier** for global influence, with states acting as specialized nodes (Rajasthan for renewables, Tamil Nadu for manufacturing) within a cohesive national strategy.

4. Indian States as Economic Diplomacy Actors :

Indian states have increasingly taken proactive roles in international economic engagement :

- Gujarat hosts the Vibrant Gujarat Summit, attracting global investors and forging ties with countries like Japan, UAE, and the UK.
- Maharashtra, with Mumbai as a financial hub, has signed MoUs with South Korea and Germany focused on smart cities and manufacturing.
- Tamil Nadu emphasizes automotive exports and textiles through its Global Investors Meet.
- Rajasthan has emerged as a renewable energy leader, engaging with countries like Germany and Denmark and attracting major investment proposals through Invest Rajasthan 2022. The state also actively connects with its diaspora in the Gulf, UK, and USA.

5. CULTURAL AND DIASPORA DIPLOMACY :

States leverage their cultural assets and diaspora networks for soft power projection :

- Kerala and Tamil Nadu organize diaspora festivals in the Gulf.
- Punjab maintains active NRI engagement in Canada and the UK.
- Rajasthan showcases cultural diplomacy through the Jaipur Literature Festival, World Sufi Festival, and Desert Festival.
- Odisha and West Bengal promote traditional arts through international cultural fairs.

6. Environmental and Climate Diplomacy :

Indian states are emerging as important climate actors :

- Himachal Pradesh and Sikkim engage in global environmental forums.
- Rajasthan and Gujarat partner with the International Solar Alliance.
- Maharashtra is part of the C40 Cities network for urban climate action.
- Punjab collaborates internationally on sustainable agriculture and stubble management.

7. CHALLENGES TO EFFECTIVE PARADIPLOMACY :

Despite its growing relevance, paradiplomacy in India faces several critical challenges :

7.1 Constitutional and Legal Constraints :

Foreign affairs remain under the Union List, limiting formal diplomatic roles for states. Legal ambiguities deter proactive international engagement, and states often lack clear frameworks to pursue external partnerships within constitutional limits.

7.2 Bureaucratic Inertia and Capacity Gaps :

State-level officials often lack training in diplomacy, trade, and international law. Limited coordination with MEA and inadequate institutional expertise hinder effective follow-up on global collaborations.

7.3 Lack of Structured Frameworks :

Few states have formal international engagement policies or dedicated institutions like State International Cooperation Cells (SICCs). As a result, decisions are often ad hoc and vulnerable to political changes.

7.4 Weak Centre–State Coordination :

There is insufficient collaboration between the Centre and states on foreign engagements. Partisan politics can affect support from the Union, and states are rarely consulted in global summits or negotiations where their input is valuable.

7.5 Resource and Political Constraints :

Budgetary limitations and frequent leadership changes disrupt long-term international strategies. Lack of dedicated funds, staff continuity, and political commitment weakens paradiplomatic initiatives.

7.6 Underutilized Diaspora and Global Platforms :

Many states lack digital outreach tools and dedicated diaspora cells. Participation in global forums remains low, limiting their visibility and soft power projection on international platforms.

8. STRATEGIES FOR EMPOWERING STATES BY 2047 :

To enable Indian states to contribute effectively to India's global aspirations by 2047, it is crucial to institutionalize Para diplomacy through a robust strategic framework. Below are comprehensive strategies that integrate institutional reform, capacity building, policy support, and soft power utilization:

8.1 Institutional Mechanisms :

a) State International Cooperation Cells (SICCs) :

Every state should establish a dedicated SICC under the Chief Secretary or the Department of External Affairs/Industry. These cells can act as nodal agencies to coordinate with the Ministry of External Affairs (MEA), foreign consulates, and international investors.

Example : Tamil Nadu has already created a guidance bureau for investment promotion, which

could be extended to include global partnerships and diplomatic coordination.

b) Para diplomacy Desk in MEA :

The MEA should establish a Para diplomacy and Subnational Diplomacy Division, tasked with:

- Providing guidelines to states.
- Facilitating MoUs with foreign governments.
- Maintaining a national database of state-level engagements.

This will enhance synergy between national foreign policy goals and state-level initiatives.

8.2 Capacity Building :

a) Training State Officials in Foreign Affairs :

Mid-career training programs should be developed for IAS and state cadre officers in collaboration with institutions like the Foreign Service Institute (FSI), Indian Council of World Affairs (ICWA), and IIMs.

Modules could include :

- International trade diplomacy
- SDG diplomacy
- Cultural soft power
- Protocol management

b) Partnerships with Academia and Think Tanks :

States should partner with institutions like RIS, Observer Research Foundation (ORF), and JNU's Centre for International Politics to develop tailor-made research and policy frameworks. Example: Rajasthan could collaborate with TERI for climate diplomacy and energy transition partnerships.

8.3 Legal and Policy Reforms :

a) Strengthening the Inter-State Council (ISC) :

The ISC should be restructured to include foreign policy consultation for states, especially concerning trade, cross-border environmental issues, and diaspora affairs. This will enhance cooperative federalism through structured dialogue.

b) State-Level Foreign Policy Frameworks :

Encourage states to draft their own International Engagement Policies aligned with national objectives.

Example : Karnataka's 2023 policy for Global Economic Engagement sets a precedent that can be replicated by others.

c) Clarify Constitutional Provisions :

While foreign affairs is a Union List subject, Article 258 and 73 allow flexibility. A legal clarity mechanism can allow states to :

- Sign MoUs
- Host consulates
- Engage in global trade and climate forums under Union oversight

8.4 Diaspora and Cultural Leverage :

a) State-Diaspora Digital Platforms :

Develop state-specific diaspora portals for connecting with overseas citizens, offering :

- Investment opportunities
- Cultural events
- Volunteer programs
- Newsletters and real-time updates

Example : Kerala's "Loka Kerala Sabha" model can be replicated to institutionalize diaspora engagement.

b) Cultural Festivals Abroad :

States should receive MEA support to host annual cultural diplomacy festivals in collaboration with Indian missions abroad. These can showcase :

- Folk traditions
- Cuisine
- Handicrafts
- Tourism opportunities

Example : Rajasthan International Cultural Week in cities like Dubai or Paris.

c) Global Brand Ambassadors :

Appoint notable NRIs or foreign dignitaries with state ties as honorary ambassadors for tourism and trade promotion.

8.5 Sectoral Focus for Competitive Advantage

a) Sectoral Focus Based on Comparative Advantage :

Each state should identify key sectors aligned with its natural strengths and promote them globally through targeted partnerships:

- **Rajasthan** :

- *Focus* : Renewable energy and climate technologies
- *Paradiplomacy Potential* : Partnerships with the European Union and UAE

- **Gujarat** :
- *Focus* : Ports, logistics, and maritime diplomacy
- *Paradiplomacy Potential* : Engagement with African nations
- **Punjab**:
- *Focus* : Agritech and food exports
- *Paradiplomacy Potential* : Outreach to Canada and the UK
- **Tamil Nadu** :
- *Focus* : Electric vehicles and textiles
- *Paradiplomacy Potential* : Collaborations with Japan and South Korea
- **Telangana** :
- *Focus* : Information technology, startups, and artificial intelligence
- *Paradiplomacy Potential* : Links with Silicon Valley and Singapore
- **Kerala** :
- *Focus* : Tourism and healthcare
- *Paradiplomacy Potential* : Engagement with the Middle East and Southeast Asia

b) Integration into Export Promotion Policies :

State-level export strategies should embed international collaboration by :

- Participating in global **trade fairs**
- Organizing and attending **FDI summits**
- Establishing **bilateral cooperation** with countries that align with sectoral goals
- Creating **country-specific export roadmaps** tied to state priorities

c) Public-Private Collaboration for Global Exposure :

To elevate international competitiveness, states should collaborate with major corporates and industry bodies by :

- Encouraging **MNCs and Indian conglomerates** to co-develop exposure platforms for MSMEs
- Setting up **global supplier networks** for local manufacturers.
- Launching **joint R&D hubs** with international partners.
- Facilitating access to **overseas startup accelerators** and incubators.

This multi-pronged approach ensures that Indian states become not only engines of domestic growth but also active contributors to India's global presence, in line with Vision 2047.

9. CONCLUSION :

As India moves toward its centenary in 2047, achieving its vision of becoming a developed and globally influential nation will require active participation from its states. In a multipolar world,

subnational actors are increasingly vital to international engagement. Indian states—with distinct cultural identities, economic capabilities, and strategic locations—must be empowered as key partners in foreign policy.

States should be seen not just as administrative units but as dynamic diplomatic actors contributing to trade, investment, climate action, diaspora outreach, and cultural diplomacy. Successful examples—Rajasthan's renewable energy diplomacy, Kerala's diaspora networks, and Gujarat's trade engagement—demonstrate this potential.

To institutionalize paradiplomacy, India must implement legal reforms, establish dedicated state-level international cooperation cells, enhance Centre–State coordination, and invest in capacity building for state officials. Strengthening diaspora ties and promoting state-specific strengths globally will further elevate India's soft power and economic reach.

A decentralized, bottom-up diplomatic strategy—grounded in cooperative federalism—will enable India to project a unified yet diverse global presence. Empowering states is not just desirable but essential to shaping a stronger, more inclusive India on the world stage by 2047.

REFERENCES :

GOVERNMENT & INSTITUTIONAL SOURCES :

1. Government of India. (2023). *Annual report 2022-23: Department for Promotion of Industry and Internal Trade (DPIIT)*. Ministry of Commerce and Industry.
2. https://dpiit.gov.in
3. Ministry of External Affairs. (2021). *Handbook on India's foreign policy and diplomatic practice*. States Division, MEA.
4. https://mea.gov.in
5. NITI Aayog. (2022). *Export preparedness index 2022*. Government of India.
6. https://niti.gov.in
7. Ministry of New and Renewable Energy. (2023). *State-wise renewable energy capacity report*. MNRE.
8. https://mnre.gov.in

ACADEMIC & POLICY PAPERS :

1. Duchacek, I. D. (1990). *Perforated sovereignties: Towards a typology of new actors in international relations*. Journal of International Affairs, 44(1), 1-33.
2. Tavares, R. (2016). *Paradiplomacy: Cities and states as global players*. Oxford University Press.

3. Sridharan, K. (2018). *Federalism and foreign relations in India: The emerging role of states*. Asian Survey, 58(4), 705-730. https://doi.org/10.1525/as.2018.58.4.705
4. Kumar, R. (2020). *Cooperative federalism in India: NITI Aayog and beyond*. Economic & Political Weekly, 55(12), 34-42.
5. Chatterjee, S. (2021). *Subnational diplomacy and India's G20 presidency*. ORF Occasional Paper. Observer Research Foundation.
6. https://www.orfonline.org
7. Jain, R. K. (2022). *Indian states as foreign policy actors: The case of Gujarat and West Bengal*. India Quarterly, 78(2), 211-228. https://doi.org/10.1177/097492842210910

CASE STUDIES & REPORTS :

- Government of Gujarat. (2023). *Vibrant Gujarat Summit 2022: Outcomes and MoUs*. Industries & Mines Department.
2. https://vibrantgujarat.com
3. Rajasthan Foundation. (2022). *Invest Rajasthan summit report*. Department of Industries.
4. https://invest.rajasthan.gov.in
5. C40 Cities. (2023). *Maharashtra's climate action plan*. C40 Knowledge Hub.
6. https://www.c40.org
7. International Solar Alliance. (2023). *Case study: Rajasthan's solar parks*. ISA Reports.
8. https://isolaralliance.org
9. World Bank. (2021). *India's subnational competitiveness: Lessons from Karnataka and Tamil Nadu*. World Bank Group.
10. https://www.worldbank.org

shahzeen.ghaffar1993@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 165–168

यामिनी कथा – रिश्तों में बिखरती नारी अस्मिता

डॉ. नीहारिका उमाकांत देशमुख
सहायक प्राध्यापक
जीवनदीप कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, गोवेली, ता. कल्याण, जिला ठाणे.

प्रस्तावना –

सूर्यबाला जी ने अपने उपन्यासों में मध्यमवर्गीय जीवन की पारिवारिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का बड़ी सूक्ष्मता से चित्रण किया है। भारतीय समाज में नारी जीवन की जटिलता को, नारी की संवेदनाओं को उनके साहित्य में गहराई से प्रस्तुत किया है। वे नारी को अपनी विपरीत परिस्थिति का सामना हिम्मत से करते हुए, संघर्ष करने को प्रेरित करती दिखाई देती है। यामिनी कथा उपन्यास में एक आधुनिक स्त्री की संवेदनात्मक जटीलता, मानसिक द्वंद्व और आत्म संघर्ष की मर्मस्पर्शी कथा है। इसमें यामिनी के मन की अथाह गहराई उसकी गंभीरता और अनगिनत संवेदनाओं को प्रस्तुत कर आधुनिक नारी के जटिल त्रासदी भरे जीवन को अभिव्यक्त करने का सशक्त मर्मस्पर्शी प्रयास लेखिका ने किया है।

यामिनी एक अतिशय संवेदनशील नारी है, संवेदनशील होने से उसका जीवन पूरी तरह बदल जाता है। असल में जिंदगी में सुख की संभावनाएं होते हुए भी अपनी संवेदनाओं के कारण वह निरंतर पीड़ा दुःख और अकेलेपन का सामना करने को मजबूर है। अपनी इच्छाओं के पूर्ति के लिए वह हर संभव कोशिश करते कभी समझौते तो कभी अपने को और कभी दूसरे को छलती हुई आकांक्षाओं, अपेक्षाओं से मुठभेड़ करती सदैव संघर्षरत रही, परंतु वह अपनी ही मानसिकता के भंवर में निरंतर डूबते चले जाती है। यामिनी के संघर्ष कथा का बड़ा ही करुण रूप लेखिका ने प्रस्तुत किया है। उसके आंतरिक और बाह्य संघर्ष का हृदय–विदारक चित्र लेखिका ने महीन परंतु ठोस रंग–रेखाओं से खींचा है। स्त्री जीवन के वे अनदेखे पहलु और यथार्थ जिन्हें जानने और समझने की आवश्यकता समझी ही नहीं गयी। यामिनी इन्ही मार्मिक स्थितियों को उजागर करती है। यामिनी का अतीत और वर्तमान अपनी–अपनी उपस्थिति में लगभग समान नये नाम और नये चेहरों के साथ अपने को बार–बार दोहराता उसे अपराध–बोध के दलदल में घसीट लेता है। यामिनी की जीवन यात्रा के दो पड़ाव है– विश्वास और निखिल। पहली यात्रा 'तलाश' में शेष रह गई और दूसरी यात्रा सम्पूर्णता की तलाश में स्थिर। यामिनी के दुःख का स्वरूप अनेक स्तरीय है। यामिनी कई भूमिकाओं को निभाते चली जाती है – पत्नी, बहू, माँ, विधवा, प्रेयसी, पुनर्विवाहिता, नवोढ़ा पत्नी आदि की भूमिका उसके व्यक्तित्व को बॉट देता है। यामिनी के दुःख की शुरुआत उसके असफल विवाह से होती है।

पत्नी की भूमिका –

अपने पहले पति विश्वास से यामिनी को प्रेम, विश्वास, अपनापन नहीं मिला जिसे वह चाहती है वह तन के साथ मन के जुड़ाव को जरूरी समझती है। विश्वास मर्चेट नेवी में नौकरी करता है इसलिए महीनों जहाज पर रहता है, जहां से जिंदगी के मौज मजे करता और छुट्टियों में घर आता, तब पत्नी से यंत्रवत संबंध स्थापित कर लौट जाता। विश्वास अपनी मर्जी के मुताबिक स्वतंत्र जीवन जीने का आदि है, उसे पत्नी के प्रति आदर, समर्पण, प्रेम इत्यादि भावनाओं का कोई महत्व नहीं। जबकि यामिनी तन के साथ मन के समर्पण को महत्व देती है। वह सोचती है प्रेम और आत्मीयता के बिना देह संबंध का क्या अर्थ? वैवाहिक संबंधों में एक तरफा प्रेम का क्या अर्थ है? यदि सामने वाले में उसे पूरेपन से समेट लेने का भाव न हो क्या शरीर ही सब कुछ है मन कुछ नहीं? लेखिका ने यामिनी की भावनाओं को उसके संवेदनात्मक दंशों को अनेक प्रसंगों में संवादों के माध्यम से स्पष्ट किया है। विश्वास का यामिनी के प्रति अपनापन तब बढने लगा जब उनका बेटा पुतुल जन्म लेता है। पुतुल के प्रति वात्सल्य की भावना उसे यामिनी के करीब ले आती है। लेकिन तब तक देर हो चुकी होती है। विश्वास को कैंसर हो जाता है, यही से यामिनी का नियति से दारुण संघर्ष शुरू हो जाता है। पहले विश्वास के साथ सतही सम्बन्ध की पीड़ा, पुतुल के जन्म से विश्वास के व्यवहार में आये सकारात्मक बदलाव का क्षणिक आनन्द और आनन्द न भोगने के लिए अभिशप्त यामिनी के आंतरिक और बाह्य संघर्ष। वह विश्वास को बचाने का हर संभव प्रयास करती है लेकिन असफल होती है।

युवा विधवा, बहू और समर्पित माँ की भूमिका :

वैधव्य का दुःख झेलती यामिनी अंदर–बाहर के अभाव, आर्थिक संकट को झेलती निसहाय, अपने और बेटे पुतुल के भविष्य के लिए संघर्ष करते दिखाई देती है। यहाँ लेखिका ने विधवा स्त्री को होने वाली समस्याओं को पाठको के समक्ष प्रभावी ढंग से रखा है। युवा विधवा स्त्री के प्रति समाज का दृष्टिकोण प्रायः अच्छा नही होता, और रुढ़िवादी सास भी वैधव्य का दोष बहू की बदकिस्मती को ही देती है। यामिनी की सास भी उसे ही दोष देती है– "तेरा ही दुर्भाग्य था कि मेरा बेटा मुझसे छिन गया, वरना उसमे ऐसी कौन सी बुराई थी?" यहाँ यामिनी यह भी नही कह पाती कि "मै भले ही अधर्मी होऊ,परन्तु तुम तो पुण्यवान हो, तुम्हारे पुन्य बेटे की मौत के आड़े क्यों नही आये?" यामिनी की सास उसके चरित्र पर शंका कर कटाक्ष करती है, जिससे यामिनी परेशान हो जाती

है।

माँ, पुनार्विवाहिता, निखिल की नवोढ़ा पत्नी की भूमिका :

इन हालातों से परेशान अपने अंधकारमय जीवन में उसे निखिल के रूप में आशा की एक किरन मिल जाती है जिससे वह अपने और पुतुल के भविष्य को सवांरना चाहती है, यामिनी के सामने निखिल शादी का प्रस्ताव रखता है। निखिल का उदार और सौम्य स्वभाव उसे पसंद आता है जिसे यामिनी के अतीत से कोई लेना –देना नहीं बल्कि वह वर्तमान में जीना चाहता है। मानसिक और आर्थिक परेशानियों से जूझती और पुतुल के भविष्य को लेकर चिंतित यामिनी, साथ ही निखिल के माध्यम से विश्वास की कमी को पूरा कर लेने की दबी हुई ख्वाहिश, आत्मसुरक्षा तथा अच्छे भविष्य की कामना से सभ्य, उदार और प्रगतिशील विचार वाले निखिल से पुनर्विवाहित कर लेती है। उसे विश्वास है कि निखिल पुतुल के साथ न्याय करेगा, और पुतुल के जीवन में पिता की कमी दूर हो जाएगी।

रिश्तों के भँवर में उलझती यामिनी :

यामिनी और निखिल दोनों की सामंजस्यता के बावजूद उनका जीवन सुखमय नही हो पाता। पुतुल की सहमती से ही यामिनी विवाह करती है पर पुतुल के उदासीन और तटस्थ व्यवहार से नकार भाव ही व्यक्त होता दिखाई देता है। निखिल यामिनी के साथ पुतुल को भी अपनाता है, पुतुल की उदासीनता, निखिल और चुनमुन के बीच संवादहीनता, चुनमुन के जन्म के बाद स्थितियाँ और बदल जाती है। चुनमुन के जन्म के बाद वास्तविकता का कटीला रूप सामने खड़ा हो जाता है। किशोरवय पुतुल का अपनी माँ को एक नये पुरुष के साथ देखना, तथा माँ का भी चुनमुन के प्रति लगाव उसे बेचौन कर देता है। निखिल का चुनमुन के प्रति अधिक जुडाव पुतुल को जाने–अनजाने ही निखिल से दूर कर देता है। पुतुल और निखिल का रिश्ता औपचारिक होकर रह जाता है, और उनके बीच दूरियां बढ़ने लगती है। यही से यामिनी की चिंता बढ़ने लगती है। यामिनी पूरी तरह से रिश्तों के भँवर में उलझती चली जाती है। एक तरफ निरंतर दूर और उदास होते पुतुल के प्रति खिंचाव है तो दूसरी तरफ चुनमून के प्रति लगाव और माँ की जिम्मेदारी। तीसरी ओर निखिल से प्रेम और सुख पाने की आकांक्षा और विश्वास से जुड़ी अतीत की दुःखद स्मृतियाँ और चौथी ओर पहले विवाह के सुख की आस लिए आतुर निखिल। इस चक्रव्यूह में फंसी यामिनी कभी चुनमुन के प्रति प्रेम, तो कभी पुतुल और निखिल के प्रति प्रेम और अपनी निष्ठा जताती हुई बुरी तरह थक जाती है। इन सब के बीच सामंजस्य बिठाते यामिनी पूरी तरह टूट कर बिखर जाती है, उसे इन स्थितियों का कोई अंत दिखाई नहीं देता। वह निखिल और पुतुल दोनों को एक साथ पाना चाहती है लेकिन अपनी ही संवेदनाओं में घिरी वह दोनों से दूर होते चली जाती है।

निखिल का व्यक्तित्व विश्वास से बिल्कुल अलग होने पर भी यामिनी को सुख नही मिल पाता, बल्कि दुःख की अनेक लहरों में वह डूबते चली जाती है। यामिनी का मन विधवा स्त्री, पहले पति से उत्त्पन्न बेटे की माँ (पुतुल), प्रेयसी, नवोढ़ा पत्नी, पुनर्विवाहित तथा पहली बार विवाहित पति (निखिल) की इच्छाओं को पूरा करने का असफल नाटक करने वाली पत्नी, दूसरे पति से उत्त्पन्न पुत्र की माँ इस तरह कई भूमिकाएं यामिनी को एक साथ करनी पड़ती है। रिश्तो और संवेदनाओ के जाल में उलझी यामिनी तडपती, लहूलुहान नारी है।

"प्रतुल 'माथुर' और निखिल 'सेठी' ये कभी न मिलने वाले समानांतर संबंध थे, जो जब तक ही जुड़े रहे जब तक यामिनी इन्हें अथक श्रम और सतर्कता से संभाले रही। ..... और फिर भी अंत में बिखर ही गए सारी

सतर्कता के बावजूद। निखिल का ये आरोप कि 'उन एक्के दुक्के बिरले क्षणों में भी जिन पर पति का पूरा–पूरा अधिकार होना चाहिए था, लेकिन मुझे वे सब टुकड़ों में भीख की तरह मिले।" इन पंग्तियो के माध्यम से यामिनी की मनरूस्थिति को समझा जा सकता है।

अपराध बोध और अकेलापन :

निखिल और चुनमुन के संबंधो के त्रिकोण का यथार्थ उसके सामने खड़ा है। पुतुल, निखिल और चुनमुन के बीच सामंजस्य तथा ईमानदार बने रहने का प्रयत्न, परिवार के प्रति अपने उत्तरदायित्व की भावना उसे अपराध–बोध के दलदल में धकेल देता है। निखिल चुनमुन तक सीमित है। पुतुल अपने मृत पिता की स्मृतियों में ठहर जाता है, और जीवित माँ के प्रति संवेदनहीन। वह यामिनी के तटस्थ और उदासीन हो जाता है तथा अपने पिता की तरह मरीन इंजीनियर बनकर उन्ही के रस्ते चल देता है। इन सब के बीच यामिनी अपनी पीड़ा और अपराध–बोध के साथ अकेले खड़ी है। निरंतर अपने को सिद्ध करते अकेले रह जाने को अभिशप्त, एकतरफा कोशिश के साथ जहाँ उम्मीद के सारे रास्ते बंद हो जाते है। यामिनी ने विधवा जीवन की रुढियों को तोड़कर पुनर्विवाह का निर्णय लिया फिर भी उसके जीवन को सही दिशा नही मिल पाई। यहाँ लेखिका यामिनी के जरिये यह बताना चाहती है कि रुढियों से मुक्ति भी स्त्री जीवन के लिए कितने द्वंद्व और जटिल यथार्थ लेकर आती है। यही यथार्थ आज आधुनिक स्त्री के जीवन का है। भारतीय स्त्री की मानसिक बुनावट में भावुकता के अनंत सागर में डूबती– तैरती यामिनी अपनी ही संवेदनाओं और अपराध बोध के भंवर में फंस अकेली रह जाती है। जीवन और रिश्तों की भट्टी में अपना सौ प्रतिशत देने के बावजूद यामिनी को कुछ हासिल नही होता सिवाय आंसू, द्विधा मनःस्थिति, तनाव और मात्र माध्यम बने रह जाने की पीड़ा।

यामिनी का चिंतनशील और अनुभूति पूर्ण हृदय उसे अंदर ही अंदर परेशान करते रहता इसीलिए वह बहुत दुःखी है। हर समय वह रिश्तों के बीच सामंजस्य बनाए रखने के प्रयास में समझौता करते दिखाई देती है। इस दुःख का कोई अंत या समाधान उसके जीते जी नहीं है। लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से स्त्री के खंडित व्यक्तित्व के यातनामय संसार को मनोवैज्ञानिक ढंग से वर्णित किया है। यह कथा यामिनी के जीवन की असफल कथा हो सकती है लेकिन स्त्री जाति का एक ठोस प्रमाणिक अनुभव है। यामिनी की इन शापित यात्राओं में स्त्री–जीवन की दारुण मनःस्थितियों के यथार्थ दर्शन किये है। साथ ही यह संकेत भी है कि स्त्री की मुक्ति के लिए परिवेश को उदार होना होगा। स्वयं स्त्री को भावना, बुद्धि और विवेक की एक संतुलित संवेदना और दृष्टि विकसित करनी होगी तभी इन परिस्थितियों से मुक्ति मिल पायेगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

१. सूर्यबाला, (२०११) 'यामिनी कथा', दिल्ली ज्ञान गंगा प्रकाशक।

२. डा. दामोदर खडसे, (२०१७) 'सूर्यबाला का सृजन संसार', कानपुर, अमन प्रकाशन।

३. डा. वेद प्रकाश अमिताभ, (२०१२) 'शब्द : शब्द मानुष गंध' दिल्ली, ज्ञान गंगा प्रकाशन।

Dr. Neeharika Deshmukh, Asst. Prof. deshmukhneeharika2023@gmail.com

Add : c/o B. P. Chavan, 582 shree Aashirwad Co Operative Housing Society, Neharu Nagar, Kurla (East) Mumbai -40024

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 169–173

Industrial Revolution and Treatment of Children in selected novels of Charles Dicken's

Pankaj kumar
Research scholar, Department of English, Jai Prakash University, Chapra
Kumar Pankaj, Supervisor
Assistant Professor (English), M.M College, Gopaljunj, Bihar.

Abstract :

This paper examines the representation of child labour, poverty, and social exploitation in Charles Dickens's *Oliver Twist* and *The Old Curiosity Shop*. It explores how Dickens exposes the brutal consequences of the Industrial Revolution on children and marginalized communities. The study highlights the economic pressures that forced children—particularly orphans and those from impoverished households—into harsh labour, often under dangerous and dehumanizing conditions. Through characters such as Oliver, Nell, and Kit, Dickens vividly portrays the emotional, physical, and moral suffering endured by Victorian children while simultaneously advocating for systemic reform. Drawing upon historical accounts and critical scholarship, the paper argues that Dickens's sympathetic depiction of exploited children functions not merely as literary expression but also as a powerful social commentary. Ultimately, the study demonstrates that Dickens's fiction serves as both a moral critique of nineteenth-century society and a call for compassion, responsibility, and protection for vulnerable children

Introduction :

Economic development in Britain surged with the Industrial Revolution, which began in the mid-eighteenth century. However, this economic growth also produced severe social problems, one of the most pressing being the alarming rise in child labour. Working-class families lived in such destitute conditions that every member of the household—including women and very young children—was compelled to work in order to survive. Many families believed that having more children meant having more wage-earners; as a result, child labour became an inseparable part of industrial life.

Despite legislation attempting to curb the practice, the exploitation of children continued on

a large scale. As Cunningham observes, "children often started to work under the age of ten, and the Industrial Revolution period began to regain the reputation it had until recent years as a black moment in the history of childhood" (87).

Most child labourers, especially orphans, worked for food and shelter rather than wages. They lived in workhouses, where harsh discipline prevailed. Children were even contracted or sold to employers for small sums of money. Dickens captures this stark reality in *Oliver Twist*, particularly in the episode where Oliver requests more food and the authorities immediately post a public notice offering "five pounds" to anyone who would take the boy off their hands (Dickens, *Oliver Twist* 17). This incident illustrates the commodification of children and the institutional cruelty that governed their lives.

The Industrial Revolution greatly intensified such exploitation by providing endless opportunities for cheap labour. Educational opportunities were minimal, making work the only option for poor children. Employers preferred child workers because they could be paid meagre wages and were forced to toil in unsafe environments—factories with poor lighting, no ventilation, hazardous machinery, and no protective equipment (Cunningham 92).

Although industrialization brought economic growth, it also created unexpected human costs, particularly the mass destruction of childhood. Children suffered physical injuries, illness, overwork, and even death. Many were orphans with no guardians to defend their rights. Reports of these horrific conditions generated widespread public sympathy. Dickens's novels played a crucial role in raising awareness and influencing public opinion. Historian accounts indicate that children as young as five or six "could be made to work twelve to sixteen hours a day, six days a week" ("Images of Child Labour" 43).

Dickens's profound concern for exploited children stemmed partly from his own traumatic childhood experiences, which parallel those of Oliver Twist. As Forster notes, Dickens's early life "explains the recurring misery" he portrays in the lives of abandoned and impoverished orphans (Forster 148). His child characters are therefore both artistic creations and representations of real social suffering. As Rosenberg argues, Dickens's greatest characters possess "verisimilitudinous representation," making them appear to readers as living individuals rather than fictional constructs (Rosenberg 55).

In *Oliver Twist*, the titular character is repeatedly subjected to exploitation: nearly sold to Gamfield as a chimney sweeper, hired as a funeral mute by Mr. Sowerberry, and later coerced into a criminal life by Fagin's gang. Oliver is forced to pick oakum at a young age, a task emblematic of the degrading work imposed on Victorian children (Dickens, *Oliver Twist* 29). These episodes reflect

the broader plight of helpless orphans in nineteenth-century England.

Similarly, *The Old Curiosity Shop* portrays child suffering through the character of Nell Trent. Nell's life can be divided into three stages: her troubled existence with her grandfather, her journey as a wandering homeless girl, and her tragic early death. Her brother's accusation—"you keep [Nell] cooped up here… pretending affection for her that you may work her to death"—captures how children were burdened to sustain failing families (Dickens, *Old Curiosity Shop* 22). After her grandfather's gambling ruins them, Nell is driven into homelessness, yet she continues to care for him, declaring, "We must go on, indeed" (147).

Despite his focus on harsh realities, Dickens also emphasizes the moral strength and emotional warmth of poor families. In Chapter Fifteen of *The Old Curiosity Shop*, Nell encounters a household that, though materially poor, lives in "comfort and content" (95). Scenes like this demonstrate Dickens's belief that poverty does not eliminate dignity or humanity. The reflection of the poor children life also finds its way in *David Copperfield.* It is Dickens' basically autobiographic book. David Copperfield, this novel is measured to be his own semi-autobiography. As being a journalist his majority of works was available in serialised form. It was published in twenty monthly instalments from May 1849, to November 1850. In its preface Dickens says that David is his favourite child.

Autobiographical basics are noticeable especially in those chapters where the author depicts David´s life in the facility of Murdstone and Grinby. He remembers these days with great hostility. Because the novel is very extensive, the variety of the topics connected with society is quite different. It is not always that it only deals with the children. He also criticizes institutions, along with the prison system and justice in general. My emphasis is on the topic of school education that we find in the form of Salem house in *David Copperfield*. As to the children and all the mistreatments they have to suffer, Dickens is very personal towards child abuse as he roughly criticizes child abuse and all sorts of cruelties. He suggests kindness and understanding towards children. He discards physical punishments and cruelty as useless and powerfully disapproves of child labour. He argues that instead of working for hours children should acquire proper education. Dickens considers education as an important mean through which any person not only children but anyone can have better future and better society. So he supports general education for everyone. Last but not the least, Dickens also criticizes institutions or fairly the way the institutions and systems function. He thinks that overriding justice system should be replaced by a new and more human one. He also focuses on the imperfect workhouse system.

It is a novel based on his early life experiences. David is small boy going through difficulties of living in poor conditions. He is an honest and passive and is not living with his parents. David's

father dies before his birth. He is surrounded by adults who control his fate, for better or for worse. David comes slightly from higher family. Therefore, his living conditions and life was quite happy and nice until Mr. Murdstone came in his life. He sends him to work in a factory at the age of ten. Mr. Murdstone is a cruel parent who abuses his powerful position over David, which makes his life miserable. He runs away to live with his great aunt. There is goes to school, become a law clerk, court reporter, and finally a novelist. This novel also gives a picture of the Victorian methods of educating and bringing up mainly by means of corporal punishments. Education was important for David; since he posses strong desire to be educated. His desire for education can be clearly seen in chapter eleven when he started to work in workhouse;

No words can express the secret agony of my soul as I sunk into this companionship; compared these henceforth everyday associates with those of my happier childhood - not to say with Steerforth, Traddles and the rest of those boys; and felt my hopes of growing up to be a learned and distinguished man, crushed in my bosom.

In this way his longing desire is suppressed which pushes him to marginal side. The children had to work in the old unhealthy buildings. David describes about workhouse as, "Crazy old house with panelled rooms, discoloured with the dirt and smoke of a hundred years, decaying floors and staircase, squeaking and scuffling old grey rats down in the cellars, simply a dirt and rotten place."

It was quite common that children of similar age worked in such factories, in such conditions and took care of themselves. David was not an exception. The children in Victorian England had to face many difficulties during their lives. He had to spend several hours a day in the warehouse for only six shillings a week and live on his own. His escape to London makes him different as he becomes respectable by his deeds. He starts the new period of his life. Although he is respected but his reputation does not favour him when Mr Spenlow learned about David's love towards Dora. David and Dora would have never got married, because David was supposed only as a young man coming from the low class, not a perfect to be husband. He was discarded on the ground that he did not have enough money. This proves that the poor people had no freedom and they are bullied by upper members of the society.

Apart from David, the family of Dan Peggotty in *David Copperfield* is showed as a typical Victorian family belonging to the marginal groups. They lived in the wrack of a boat near the sea, humid place with bad hygiene and only little comfort. Although they lived in miserable condition but their orderliness, cleanliness gives different picture of their life. They become respectable by their habit.

Through such narratives, Dickens exposes the systemic forces that robbed children of their innocence, safety, and future. His fiction ultimately stands as a forceful indictment of Victorian

society and an appeal for compassion and reform.

Works Cited :

1. Cunningham, Hugh. *The New Woman and the Victorian Novel*. Macmillan Press, 1978.
2. Dickens, Charles. *Oliver Twist*. Chapman and Hall, 1838.
3. *The Old Curiosity Shop*. Chapman and Hall, 1841.
4. *David Copperfield*. Bradbury and Evans, 1850.
5. Forster, E. M. "Introduction." *Oliver Twist*, by Charles Dickens, Penguin Classics, 2003, pp. 7–24.
6. "Images of Child Labour." *Child Labour and the Global Village: Photography for Social Change*, 15 Jan. 2008, p. 43.
7. Rosenberg, Edgar. *From Shylock to Svengali: Jewish Stereotypes in English Fiction*. Stanford UP, 1960.

Pankajswaraj111@gmail.com

Mo. 7321807666

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 174–176

हिन्दी ग्रामीण कहानी प्रेरणा और प्रारंभ

डॉ जे. सेन्दामरै
असोसिऐट प्रो. हिन्दी विभाग,
सीतालक्ष्मी रामस्वामी महाविद्यालय, तिरुच्चि–620002 तमिलनाडु।

स्वातर्त्योत्तर हिन्दी ग्रामीण कहानियों में अंकित ग्रामजीवन की यथार्थता, विविधता को सूक्ष्मता के साथ स्पष्ट कर पाठक को गाँवों के कोने–कोने की गन्ध से लोगों के आपसी सम्बन्ध, स्थानिक विशेषताएँ आदि में मानवीय संवेदनाएँ भर कर उन्हें रंगीन तस्वीरों की भाँति पेश किया गया है, जिसमें धूल–थक्कड़, से भरी जिन्दगी है तथा आधुनिक जीवन का खोखलापन भी है। गाँव की उदासी और वीरानी है, तो आशा, उत्कंठा और उत्साह भी है। नवजागरण की अंगड़ाईयाँ है और नव–परिवर्तित गाँवों के हृदयों की धड़कने भी। इस तरह ही इन कहानियों में किसानों का सुख–दुःख, मानवीयता, अन्तर्बहिर्गत संवेदनाओं का निखार है, जमींदारों की कठोरता, निर्दयता, पाश्विकता भी परिलक्षित होती है। सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति है। नारी के प्रति आत्मीयता है उसकी हीन अवस्था भी है और जड़परम्पराओं का खण्डन है, शहर–ग्रामों की विषमता और सांस्कृतिक टकराहट है। नयी–पुरानी पीढीघ का वैचारिक द्वन्द्व है। पारिवारिक जीवन की दुःखद समस्याओं की प्रभावशाली अभिव्यक्ति है और उनका उचित समाधान भी है, तथा सामाजिक दायित्व का आदर्श भी है। आजादी के बाद की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति ही ग्रामीण कहानी की मूल प्रेरणा है। स्वतंत्रता तक हिन्दी के कहानीकार अपनी कहानियों में नगर तथा मध्यवर्ग के सुख–दुखों के स्वर ही मुखरित करते थे। साथ ही स्वाधीनता के साथ जुड़े हुए अनेक मोहभगों से भी रचनाकारों के दिलपर घोर आघात हुए जिससे कहानीकार ऊब गये थे। उन्हें कहानी के लिए एक नये परिदृष्य की आवश्यकता थी अतः उनकी आँखों नयी दिशा की खोज करने लगी। इस वक्त उनकी आँखों के सामने आया भारतीय ग्रामीण समाज।

'उपन्यास की विषय–वस्तु और लेखन प्रर्क्रिया में एक प्रकार की स्थिरता अथवा गतिहीनता की स्थिति को देखकर कुछ लेखकों ने अपने लेखन की पुरानी परिपाटी बदली और नागरिक जीवन की भूमिका को छोड़कर दूरवर्ती और विलक्षण रीति–नीति वाली जातियों और स्थितियों के चित्रण को अपनाया। उनके लिए वह एक नव्यतम प्रयोग था। 'नये कहानीकारों ने भी यह महसुस किया कि नगरों का जीवन उलझन भरा, कुण्ठाग्रस्त और सहानुभूतिहीन है, जब कि ग्रामीण जीवन अधिक आत्मीय, सहज और सरल। फलस्वरूप गाँवों के सन्दर्भ में ढेर सारी कहानियां लिखी गयी। स्वतंत्रता के बाद गांधीजी ने साहित्यकारों से देहात की और लौटने का आग्रह किया था। उनकी अपेक्षा थी कि वे (साहित्यकार) गांवों में जाय, ग्रामीण जीवन का अध्ययन करें, जीवनदायी साहित्य निर्माण करें। गाँधीजी के इस आग्रह का परिणाम ग्रामीण कहानी की निमिति के लिए उपयुक्त हुआ। 'स्वतंत्रता

के बाद का प्रथम दशक, स्वतंत्रता संग्राम के सिलसिले में लगाये गये। गाँव की और चलों के सशक्त नारों से प्रभावित और उनकी अभिव्यक्ति–जैसा लगता है, क्योंकि स्वतंत्रता होते साहित्यकार अपने गाँव को, अपने आंचल को अपनी उपेक्षित धरती को हाथों हाथ उठा लेते है। ग्राम छोड़कर शहर आये हुए नये कहानीकारों ने अनुभव किया कि वे जिन परिवारों से और जिस ग्रामीण वातावरण से आये हैं, वे अधिक मोहक और अनुभूति के अंग है। .....परिणामतः गाँव से आये शहरी कथाकार फिर गाँव की और लौटे और नये भाव जगत को उपलब्ध किया।

नये बदलते राजनीतिक और आर्थिक प्रभावों ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण योग दिया। इसलिए इस खेमें की कहानियां में गाँव के जीवन का आन्तरिक एवं बाह्य चित्र मिलता है। इन कहानीकारों द्वारा ग्राम कथाओं का निर्माण होने का अन्य भी एक कारण था कि ग्रामीण कहानियाँ लिखनेवाले कहानीकारों की पहली जमात शहर के मध्यवर्ग से सम्बन्धित नहीं थी तो गाँव के कृषक परिवारों से सम्बन्धित थी। आजादी के बाद ग्रामोत्थान की दृष्टि से भी सरकार द्वारा ग्रामीण समाज का अधिक बोलबाला शुरू हुआ। ग्रामीण क्षेत्र में जमींदारी उन्मूलन, सामुदायिक विकास योजनाओं का प्रारम्भ, ग्रामपंचायतों का नया कारोबार, चुनाव आदि की नयी चहल–पहल प्रारम्भ होती है जिससे कहानीकार प्रभावित हुए बगैर नहीं रह सके। यह समाज जीवन की अनेक समस्याओं से तत्कालीन अनेक कहानीकार प्रभावित होते हैं और उन्हें अपनी कहानियों में अभिव्यंजित करने के लिए ग्राम की तरफ अग्रसर होते हैं। देहातों की व्यापक गरीबी, बेरोजगरी, बेकारी और परम्पराओं का निर्मूलन करने के लिए भी कहानीकार ग्रामों के वास्तविक जीवन की ओर लौटे, जहाँ समाजकार्य के लिए भी बहुत अवसर था। शिल्प की दृष्टि से भी देखा जाय तो पुरानी कहानी परिवर्तित युग की भावनाओं को आत्मसात करने के लिए असमर्थ प्रतीत हो रही थी, इस वक्त वह अपना पुराना रूप संवारने में असफल हो गयी। नयी भूमि, नये विचार, नयी कल्पना से प्रेरित कहानीकारों की दृष्टि में भी परिवर्तन पाया गया और पुरानी कहानी के विरोध में नयी कहानी पनप गयी। इस वक्त गांव के साथ एक नयी ताजगी, सामाजिक विकास की नयी सच्चाई तथा उसी के अपनुरूप भाषा तथा शिल्प की ऐसी प्रबल शक्तियाँ आयीं, जिन्होंने कथा की सारी पुरानी, किताबी अर्जित भाव–सम्पदा को अच्छादित कर लिया। अपनी ग्रामीण अनुभूतियों को विशिष्ट शैली में अभिव्यक्त करने के लिए भी अनेक कहानीकार ग्रामीण कहानी लिखने के लिए प्रेरित हुए।

स्वतंत्रता के बाद छिड़े हुए 'आंचलिक कहानी' के आन्दोलन ने अनेकों को प्रभावित किया। कालविशेष की साहित्य लहर से कोई साहित्यकारों को आकर्षित किया और अनेक आंचलिक कहानीकारों ने जिनका लगाव गांव से था प्रेमचंद के द्वारा गाँव के अनछुए धरातलों को अपनी कहानी का उपजीव्य बनाया। कुछ लोगों ने पुरानी स्मृतियों के आधार पर, कुछ ने फैशन के रूप में, तो कुछ ने छुट्टियों में देखें गाँव का चित्रण करना प्रारम्भ किया।

इन सारे प्रभावों के कारण हिन्दी कहानी में एक नया दौर प्रारम्भ होता है जिसमें कहानी नगर–बोध की नकली रचनाधर्मिता को चुनौती देती है और खेतों, खलिहानों, कुओं तथा गाँव के बियाबान तथा देहाती वातावरण को अपना विषय बनाती हैं। इस काल की कहानी अपने को नगर–बोध–जड़ता से मुक्त करती है और उसमें नयी सृजनात्मक तथा जिन्दगी की निश्छल धड़कने देखी सुनी जा सकती है। ग्रामीण कहानी की निर्मिति के लिए इस वक्त का वातावरण पूरी तरह अनुकुल होने के कारण उस वक्त ढेर सारी ग्रामीण कहानियों का निर्माण हो सका।

शिवप्रसादसिंह, मार्कण्डेय, रेणु, अमरकान्त, शेखर जोशी, भैरवप्रसाद गुप्त, शानी, शैलेश मटियानी, केशवप्रसाद मिश्र, लक्ष्मीनारायणलाल, मधुकर गंगाधर जैसे अनेक युवा लेखकों ने नये परिवेश की खोज के हेतु

ग्रामीण समाज के यथार्थ को चित्रित किया जिनकी ओर पहले कहानीकारों का ध्यान पूरी तरह नहीं गया था। इस तरह जैसे कि प्रारम्भ में कहा गया है, ग्रामीण कहानी स्वातंर्त्योत्तर काल की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की उपज है। इन परिस्थितियों से उद्‌भूत सारी ग्रामीण कहानियों को परखने के बाद एक बात स्पष्ट हो जाती है कि कुछ कहानियाँ देहाती जीवन की आत्मा को प्रतिबिम्बित करने में असफल रही हैं, कारण बहुत से कहानीकारों की समूची चेतना का निर्माण नगरों में हुआ था और गाँवों की आत्म को ये पहचानते ही नहीं थे इसलिए भगद्‌ड़ के इन कथाकारों ने खेतों मेड़ों पर या गाँव के चौराहों पर खड़े होकर नोट्स लिए–ग्रामीण फसलों के, त्योहारों के और बोलियों के–उन्हीं बाहरी बातों के चित्रण को उन्होंने अपना लक्ष्य माना।

फलस्वरूप ग्रामीण जीवनमूल्यों की लौकिक सच्चाइयों से भोक्ते हुए बिना, कहानी में ग्रामीण सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति की गहराई असम्भव हो जाती है। सन् 1950 ई. के आस–पास ग्राम–जीवन की विशाल पृष्ठभूमि पर आधारित ग्रामीण साहित्य की निर्मिति का प्रारंभ हुआ और बाद में वह आंचलिक नाम से परिचित हुआ। आजादी के पश्चात् हिन्दी कथा–क्षेत्र में ग्रामीण जीवन का जो व्यापक और सूक्ष्म अंकन हुआ था उसकी ओर संकेत करते हुए मार्कण्डेय कहते हैं 'गॉव से आनेवाले खेतिहार किसानों के बौद्धिक तथा कलात्मक उद्देश्य ने युद्धोत्तर काल के संकुचित एवं घुटनशील वातावरण को ताजगी और विस्तार ही नहीं दिया, वरन् नयी सामाजिक एवं राजनैतिक अवस्थाओं के कारण वह स्वतः महत्वपूर्ण हो उठा, इतना महत्वपूर्ण कि प्रेमचंद जैसे लेखक की ग्राम–कथा ने अपनी जगह बना ली। इन लेखकों ने अपनी गहनतर ग्रहण–शीलता और रागबोध के कारण ग्राम–कथानकों के पूरे परिवेश को नयी प्रतीत–योजना, नये–भावबोध, नये बिम्बसंगठन, नवीन सांकेतिकता और शब्दयोजना से जीवंत बना दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि स्वातंर्त्यपूर्व काल की ग्राम–कहानी की अपेक्षा स्वातंर्त्योत्तर काल की ग्रामीण कहानी भाव और कला दोनों दृष्टियों से प्रभावशाली प्रतीत होती है। यहाँ तक आते–आते 'ग्रामकथा' नाम भी हिन्दी कहानी क्षेत्र में प्रचलित हो चुका था। ग्रामीण कहानी के आन्दोलन का प्रारम्भ बिन्दु शिवप्रसाद सिंह की 'दादी मां' कहानी में पाया जाता है। सन् 1951 ई. के 'प्रतीक' में प्रकाशित उनकी कहानियों से ग्रामीण कहानियों की प्रवृत्तियों के दर्शन होते है। तात्पर्य, ग्रामजीवन के कुशल कथा शिल्पियों ने ग्रामीण हिन्दी कहानी सरिता को सजीवता के साथ हिन्दी साहित्य सागर को जोड़ने का प्रयत्न किया है। पुरानेपन में प्रगतिशील मूल्यों की स्थापना कर हिन्दी कहानी की जागृकता को स्पष्ट किया है, और हिन्दी कहानी के विकास में प्रशंसनीय योगदान दिया है। आधुनिक हिन्दी ग्रामीण कहानी को साहित्यिक आन्दोलन का रूप देकर परवर्ती कहानीकारों का मार्ग प्रशस्त किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. हिन्दी की ग्रामीण कहानियां : डॉ. कृष्णा पाटील।

Dr. J. Senthamarai, Associate Prof, Hindi Dept.
Seethalakshmi Ramaswami College, Trichy 6200002 Tamilnadu
Mobile No.9443764823
Mail Id -sentha2011@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 177–184

हरिराम मीणा का व्यक्तित्व व कृतित्व

प्रीति राजू राठेड़
मुंबई।

प्रस्तावना :

मानव जिस परिसर में जन्म लेता है उसके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर उसका प्रभाव अवश्य पड़ता है। अतः किसी भी रचनाकार के साहित्य को जानने व समझने से पहले उसके जीवन–अनुभव, परिवार, शिक्षा दीक्षा, साहित्य लेखन की रुचि के ओर उनका बढ़ाव, आदि का ज्ञान होना तर्कसंगत होता है। प्रत्येक रचनाकार के साहित्य पर उसके व्यक्तिगत संस्कार, काल विशेष, परिवेश रुचि–अभिरुचि और रचनाकार की तज्जनित प्रकृति का प्रभाव साहित्य को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करता है। साथ ही किसी अन्य का प्रभाव भी हमें रचनाकार के साहित्य में देखने को मिलता है।

हमें साहित्यकार के साहित्य के जरिए उनकी पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का अनुभव प्राप्त होता है। जो उनके साहित्य को समझने में सहायक होता है। साहित्यकार अपने जीवन में घटित घटनाएं, समस्याएं, संघर्ष आदि को अपने लेखनी के अनुसार अपनी रचना में प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि उसकी रचनाओं में उसकी परिस्थितियों तथा अनुभवों का यथार्थ चित्रण मिलता है। साहित्यकार जो भोक्ता और देखता है, इस आधारानुसार अपना कलम आगे बढ़ाता है।

श्री हरिराम मीणा ने अपने जीवन में आदिवासियों की समस्याओं, संघर्षों, को निकट से देखा है। उनके लेखन का मुख्य उद्देश्य आदिवासी जीवन, उनकी समस्याओं, उनके संघर्षों, चुनौतियों को उकेरते हुए एवं उनके जीवन में आवश्यक सुधार और बेहतर संभावनाओं आदि की प्रस्तुत करता रहा है।

1.1.1 जन्म परिचय एवं परिवेश : आदिवासी विमर्श में उल्लेखनीय स्थान रखने वाले हरिराम मीणा का जन्म 1 मई सन 1952 को राजस्थान राज्य के सवाई माधोपुर जिले के वामनवास गांव में रहने वाले आदिवासी किसान परिवार में हुआ।

1.1.2 माता–पिता : इनके माता–पिता, दोनों अभिभावक ने हरिराम मीणा को शिक्षा दिलाने की उत्सुकता दिखाई। हरिराम जी के पिता को केवल अक्षर ज्ञान था और मां को अक्षर ज्ञान बिलकुल न था अर्थात वह अशिक्षित थी।

1.1.3 शिक्षा–दीक्षा : श्री हरीराम जी की प्रारंभिक शिक्षा अपने गांव वामनवास एवं निकटवर्ती कस्बा गंगापुर सिटी में रहकर ग्रहण की। उसके उपरांत उन्होंने अपनी उच्च शिक्षा राजस्थान कॉलेज एवं राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से क्रमशः स्नातक एवं स्नातकोत्तर डिग्री राजनीति विज्ञान में प्राप्त की। लेखक ने हायर सेकेंडरी गंगापुर

सिटी से और राजकीय महाविघ्द्यालय करौली से कला संकाय प्रथम वर्ष में कॉलेज टॉप किया। उनके अध्ययन का विशेष माध्यम भारतीय दर्शन, परंपरा–संस्कृति, साहित्य एवं लोक से जुड़ा रहा।

1.1.4 व्यवसाय : हरिराम जी ने सरकारी वजीफा की एवज में समाज कल्याण विभाग में डेढ महीना चपरासी का काम किया। बैंक में तीन माह के लिए अस्थायी बाबूगिरी, उसी स्तर के पद पर ढाई दिन की पक्की नौकरी पंजाब नेशनल बैंक में उन्होंने की। ए.जी. ऑफिस में ऑडिटर के पद के लिए हरिराम जी का चयन हुआ, मगर वे गए नहीं चूंकि तभी उन्हें रिजर्व बैंक में क्लर्क कम कॉइन नोट एग्जामिनर का बुलावा आ गया। वहां वह करीब चार साल के लिए कार्यरत रहे। इसी दौरान हरिराम जी को शास्त्रीय संगीत का शौक हुआ। नौकरी करते हुए उन्हें प्रतियोगी परीक्षाएं भी जारी रखी। राजस्थान विश्वविद्यालय से राजनीति शास्त्र में स्नातकोत्तर डिग्री के साथ भारतीय पुलिस सेवा में वे कार्यरत रहे जहाँ से पुलिस महानिरीक्षक के पद से सेवानिवृत्त हुए।

लेखक में रूचि कब, कहां से आरंभ हुई? और उन पर किसका प्रभाव पड़ा?

उनके अध्ययन का विशेष माध्यम भारतीय दर्शन, परंपरा–संस्कृति, साहित्य व लोक से जुड़ा हुआ रहा। बालपन से ही उन्हें पढ़ने–लिखने में अधिक रुचि रही है। वे बचपन से ही आदिवासी साहित्य एवं लोक साहित्य की जानकारी हेतु हमेशा बहुत आतुर रहे हैं। आदिवासी जन का हरिराम जी पर प्रभाव पड़ने पर उनकी दृष्टि स्थानीय आदिवासी जन्म समुदायों, के समाज, संस्कृति और परंपरा, आस्था को जानने की ओर गई। हरिराम जी के साहित्यिक कार्य में आदिवासी मुद्दों को लेकर घर चिंता एवं गहन चिंतन रहा है आदिवासी समाज से जुड़े हुए विषय पर भी लगातार सृजन कार्य किया जा रहे हैं।

रूचि अभिरूचि :

हरिराम मीणा जी की मूल रूप से कवित्ता कर्म में रुचि रही है इसके अलावा शास्त्रीय संगीत में उनकी गति रही है।

- इन्होंने धारावाहिकों में जयपुर दर्शन के लिए विशिष्ट भूमिका अदा की है।
- उन्होंने जन्म के मानवाधिकार के लिए कार्य किया है।

उन्होंने सरकारी हिंदी जगत और बुद्धिजीवी के समक्ष आदिवासी दुनिया के सवालों का ईमानदारी और प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है।

हरिराम मीणा जी रचनात्मक लेखन की दृष्टि से कवि, कथाकार, उपन्यासकार, संस्मरणकार, यात्रावृतांतकार, विमर्शकार और संपादक के रूप में अपनी अनेक भूमिका निभा रहे हैं। इन्होंने विभिन्न पत्रिकाओं का भी संपादन किया। इस प्रकार उनकी रचनात्मक सक्रियता आदिवासी यथार्थ की अभिव्यक्ति से आगे बढ़ते हुए समग्र मनुष्यता के गंभीर विश्लेषण तक विस्तृत हो जाती है।

सम्मान और पुरस्कार : श्री हरीराम मीणा सेवानिवृत्त आईजीपी पुलिस एवं साहित्यकार का योगदान हम भूल नहीं सकते। उन्हें सामाजिक सेवा और साहित्यिक रचना के आधार पर अनेक सम्मान व पुरस्कार प्राप्त हुए। जिन्हें हम कुछ निम्नलिखित भागों में विभाजित कर देख सकते है।

प्रशासनिक सेवा में योगदान पुरस्कार : श्री हरिराम मीणा एक बहुमुखी और बहुआयामी के व्यक्ति है। इन्हें भारतीय पुलिस सेवा के अंतर्गत पुलिस अधिकारी के रूप में भारतीय पुलिस पदक 1997 उत्कृष्ट सेवा के लिए राष्ट्रपति मेडल 2012 से सम्मानित किया जा चुका है राम जी बोर्ड ऑफ मैनेजमेंट जनजातीय विश्वविद्यालय

के सदस्य के रूप में भी कार्यरत है। माननीय राज्यपाल राजस्थान के प्रतिनिधि के रूप में निदेशक समिति फॉर स्टडीज एंड थे एरियाज ऑफ ट्रेडीशन एंड हुमन डिग्निटी इनकी महत्वपूर्ण सुझाव और सेवाएं वर्तमान में लिए जा रहे हैं।

पर्यावरण एवं सामाजिक क्षेत्र में योगदान से संबंधित सम्मान और पुरस्कार :

पर्यावरण के क्षेत्र में उन्हें सर्वप्रथम वन्य जीव संरक्षण के लिए वर्ष 1999 में पद्म श्री सांखला अवार्ड, नेचर क्लब ऑफ इंडिया द्वारा सम्मानित किया गया। इसके साथ–साथ हरिराम जी को सामाजिक योगदान के अंतर्गत दलित चेतना के क्षेत्र में कार्य करने की वजह से वर्ष 2000 में डॉक्टर आंबेडकर 'राष्ट्रीय अवार्ड' मिल चुका है।

साहित्य, संस्कृति और भाषा के क्षेत्र में योगदान का सम्मान एवं पुरस्कार –

श्री हरीराम मीणा के पहले कविता संग्रह श्हां चांद मेरा है पर ही इन्हें वर्ष 2003 में राजस्थान साहित्य अकादमी का 'सर्वोच्च मीरा पुरस्कार' प्रदान किया गया। उन्हें साहित्य श्री सम्मान राष्ट्रभाषा हिंदी समिति डूंगरगढ़ द्वारा वर्ष 2005 में प्राप्त हो चुका है। पांचवा सिद्ध फाउंडेशन का साहेब पुरस्कार भी इन्हें वर्ष 2007 में मिल चुका है इसी के साथ इन्हें अत्यंत प्रतिष्ठित महापंडित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार वर्ष 2007 में केंद्रीय हिंदी संस्थान द्वारा दिया गया। राष्ट्रपति भवन में श्री हरिराम मीणा जी को उनके खोजी साहित्य एवं हिंदी भाषा को अवदान हेतु दिनांक 16 तो 2009 को सम्मानित किया गया राजस्थान के मूल निवासी रचनाकारों को के. के. बिड़ला फाउंडेशन की ओर से दिया जाने वाला पुरस्कार भी ने प्रदान किया गया। श्री हरियाणा मीना जी को भोपाल में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में रचनात्मक योगदान के लिए पुरस्कृत भी किया गया है। उनके साथ विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में हैदराबाद विश्वविद्यालय के दलित आदिवासी अध्ययन एवं अनुवाद केंद्र ने श्री हरियाणा मीना जी को आमंत्रित किया जहां उन्होंने आदिवासी विमर्श से संबंधित कुछ विशेष पांच व्याख्यान दिए और वही व्याख्या ना आदिवासी विमर्श नाम से छप चुके हैं। इसी प्रकार उन्हें जयपुर लिटरेरी फेस्टिवल में भी विशेष रूप से आमंत्रित किया गया जहां पर उन्होंने अपनी रचना का पाठ प्रस्तुत किया। अंततः अखिल भारतीय आदिवासी साहित्यिक मंच के मीणा की वर्तमान में दिल्ली अध्यक्ष के रूप में सक्रिय कार्यरत है।

निष्कर्ष :–

हरिराम मीणा जी आदिवासी समाज के वरिष्ठ बुद्धिजीवी कवि चिंतक विचारक के रूप में प्रतिष्ठित है संवेदनशील व्यक्तित्व से भरपूर व्यक्ति किसी भी अपराध को रोकने वाले पैसे में भले ही नौकरी करता हो परंतु जब रचनाकार की बात हो तब उनका मन कमल भावना और संवेदनाओं की और अग्रसर होते दिखाई पड़ता है। सर्वप्रथम हमारे लिए यह जन्नती आवश्यक है कि हरियाणा मीणा का साहित्य सृजन के प्रति लगाव क्यों और कैसे जागृत हुआ। इस विषय में हरिराम जी लिखते हैं कि हर वर्ग या जाति का साहित्य लेकिन आदिवासियों के ऊपर साहित्य क्यों नहीं लिखा गया क्यों इन लोगों को दूर रखा गया अर्थात दबाया गया इस तरह अनेक सवाल भी उठाते हैं। वह इस तरह भी लिखते हैं कि हमारे ऊपर कोई गहरा आदिवासी साहित्यकार लिखिएगा यह कभी संभव नहीं होगा हमारे बारे में हमें ही रचना करनी होगी। इसी तरह के अनेक कारणों से भी साहित्य की ओर बढ़े।

1.2 हरिराम मीणा का कृतित्व :

प्रस्तावना : हरिराम मीणा जी ने सर्वप्रथम साहित्य विधाओं में से काव्य विधा में लेखन को अपनाया उनका

यह सफर कॉलेज के दिनों से शुरू होने लगा था और जगह पुलिस की नौकरी में आ चुके थे। श्री राम जी ने कुछ कविताएं लिखनी शुरू कर दी जयपुर में राजस्थान के वह जिस कॉलेज में पढ़ते थे। उनकी हिंदी शिक्षक को जब पता चला कि हरिराम जी कविता भी लिखते हैं तब उनकी प्रतिक्रिया यह थी अरे पुलिस में होकर कविताएं कहां से करने लग गए। राम जी का जवाब इस तरह रहा जब इंसानों में से ही कभी बनते हैं तो प्लीज वाले इंसान नहीं है बाद में उन्होंने मेरी कविताएं सूनी पड़ी थी।

पुलिस सेवा में रहते हुए भी उनका लगाओ साहित्य से कभी छोटा नहीं इस प्रकार उनका साहित्य की विभिन्न नविधाओं के प्रति जुड़ाव परिलक्षित होने लगा ऐसे ही आगे चलकर उन्होंने साहित्य में अपना एक स्थान बना लिया। श्री हरिराम मीणा का नाम अब 21 वीं शताब्दी के दूसरे दशक के महत्वपूर्ण आदिवासी लेखकों में गिना जाता है। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा आदिवासी समस्याओं को अभिव्यक्ति किया है इनकी अब तक 15 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। जिनको हम दो स्तरों में विभाजित कर देख सकते हैं–

1. विधा के आधार पर रचनाओं का वर्गीकरण
2. कालक्रमिक आधार पर रचनाओं का वर्गीकरण

1. विधा के आधार पर रचनाओं का वर्गीकरण

क) कविता संग्रह :

हाँ, चाँद मेरा है (कविता संकलन–1999) लेखक का प्रथम कविता संकलन है, जिसमें खासकर सन 1990 के दशक की कुल 67 कविताएँ सम्मिलित हैं। ये सभी रचनाएँ पुस्तकार में आने से पहले विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हो गयीं थी। इसमें सम्मिलित श्भीलणी कविता काफी चर्चित हुई। इस कृति पर कवि को राजस्थान साहित्य अकादमी का सर्वोच्च मीरां पुरस्कार वर्ष 2003 में दिया गया। यह पुस्तक पेपर बैंक में भी छापी गयी है।

2. साईबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक (यात्रा वृत्तान्त–2006)

इस पुस्तक में लेखक ने हैदराबाद से विशाखापत्तनम, भुवनेश्वर, पूरी, कोणार्क, कोलकाता होते हुए अंडमान द्वीप समूह तक और फिर चेन्नई होते हुए हैदराबाद तक की वापसी की यात्रा का विवरण है। खास सामग्री अंडमान के जारवा, ओंग, सेटेनेली एवं ग्रेट अंडमानी आदिम समुदायों पर सम्मिलित की गयी है।

3. रोया नहीं था यक्ष (प्रबंध काव्य–2003)

इस कृति में कालिदास की ख्यातिप्राप्त कृति 'मेघदूत' के मिथकों का गहन अध्ययन करते हुए उनको आधुनिक संदर्भ में पुर्नव्याख्यायित किया है। यक्ष को दलित–दमित–शोषित मानवता का नायक और यक्षिणी को नारी चेतना की वाहक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कुबेर को अर्थ की सत्ता का स्वामी सिद्ध करते हुए जनसाधारण के खलनायक के रूप में प्रस्तुत किया है। के इस कृति का दूसरा संस्करण भी आया है और साथ ही पेपरबेक में भी इसे प्रकाशित किया गया है। उल्लेखनीय है कि इसका ब्लर्ब प्रख्यात कवि केदारनाथ सिंह ने लिखा है।

4. सुबह के इंतजार में (कविता संकलन–2006)

यह कवि का दूसरा संकलन है, जिसमें वर्ष 2000 से 2006 के मध्य यत्र तत्र प्रकाशित कविताओं को सम्मिलित किया गया है। दो खण्डों में विभक्त इस कृति के प्रथम भाग में आदिवासी जीवन पर केन्द्रित तथा दूसरे

भाग में यत्र तत्र के पर्यवेक्षण से सृजित रचनाएँ पढ़ने को मिलती हैं।

5. जंगल जंगल जलियाँवाला (यात्रा वृत्तान्त-2008)

लेखक का यह दूसरा यात्रावृत्त है, जिसमें ब्रिटिश कालीन आदिवासी प्रतिरोध, संघर्ष व बलिदान की तीन घटनाओं को केंद्र में रखा गया है। उस स्थलों के भ्रमण सहित पर्याप्त मात्र में ऐतिहासिक सामग्री का संकलन करते हुए यह कार्य संपन्न हुआ है। ध्यातव्य है की लेखक ने उपनिवेशवादी व देशी सामंती सत्ताधिपतियों द्वारा किये गए शोषण व अत्याचारों के विरुद्ध देश के विभिन्न हिस्सों में हुए आदिवासी संघर्षों पर विशेष शोध कार्य किया है। उसी का एक भाग इस कृति में यात्रावृत्तान्तिक शैली में प्रकाशित है। इस पुस्तक पर लेखक को केंद्रीय हिंदी संस्थान का महापंडित राहुल सांकृत्यायन सम्मान–2007 दिया गया।

6. धूणी तपे तीर (उपन्यास-2008)

हरिराम मीणा को एक कथाकार के रूप में ख्याति दिलाने वाली यह कृति अत्यंत चर्चित रही है। इसके आधा दर्जन संस्करण अब तक छप चुके हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय सहित देश के करीब तीन दर्जन से अधिक विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में यह पुस्तक सम्मिलित है। इस कृति पर विभिन्न विश्वविद्यालयों के लगभग 200 शोधार्थी एम.फिल. कर चुके हैं और काफी का कार्य प्रगति पर है। इस उपन्यास के लिए लेखक को बिड़ला फाऊँदेशन का प्रतिष्ठित 'बिहारी सम्मान' मिल चुका है।

इस उपन्यास का अंग्रेजी अनुवाद वर्ष 2016 में प्रकाशित हो चुका है, जिसका शीर्षक है When Arrows Were Heated up"

7. आदिवासी दुनिया (विमर्श-2013)

लेखक के साहित्यिक कर्म में आदिवासी मुद्दों को लेकर घोर चिंता एवं गहन चिंतन रहा है। आदिवासी समाज से जुड़े हुए विषयों पर वे लगातार शोध व सृजन कार्य किये जा रहे हैं। देश भर के आदिवासी लेखकों को के साहित्यिक अवदान पर उनकी दृष्टि रहती आई है। इस कृति में आदिवासी समाज से संबंधित चुनिंदा मुद्दों यथा आदिवासी मिथक, ऐतिहासिक संघर्ष, विकास, विस्थापन, पुनर्वास, नक्सलवाद, संस्कृति, साहित्य, शिक्षा, भाषा, मीडिया, फिल्म वगैरा पर शोधपूर्ण लेख सम्मिलित किये गए हैं। इस पुस्तक के कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं अकादमिक क्षेत्र में यह कृति संदर्भ ग्रंथ के रूप में मान्यता प्राप्त है।

8. आदिवासी अंचलों की यात्राएँ (यात्रावृत्त-2016)

हरिराम मीणा का यह तीसरा यात्रा वृत्तान्त है। इसमें भारत के पूर्वोत्तर, पूर्वी भाग, मध्यांचल, पश्चिमी क्षेत्र, दक्षिणी भू–भाग से लेकर अंडमान तक फैले हुए आदिवासी समुदायों के जीवन के विभिन्न पक्षों का आँखों देखा हाल और उसके साथ गंभीर अध्ययन एवं चिंतन के आधार पर करीब डेढ़ दर्जन आदिम समुदायों की विस्तृत और महत्वपूर्ण जानकारी दी गयी है। इनमें अंडमान व नीलगिरि हिल्स के आदिम समुदायों सहित भारत के मुख्य आदिवासी समुदायों यथा बैगा, बंजारा, भील, गोड, मीणा, मुंडा आदि को शामिल किया गया है।

9. आदिवासी जलियाँवाला एवं अन्य कविताएँ (कविता संग्रह-2019)

कवि के रूप में ही हरि राम मीणा ने अपनी साहित्यिक यात्रा का आरंभ किया है और यह यात्रा निरंतर जारी भी है। यह इनकी काव्य की चौथी और कविता संकलन की तीसरी पुस्तक है, जिसमें सन 2006 के बाद लिखी गयी रचनाएँ सम्मिलित हैं। इस संग्रह में एक पंक्ति की सबसे छोटी कविता से लेकर आदिवासी

जलियाँवाला अर्थात मनगढ पहाड़ी की आदिवासी शहादत पर केन्द्रित 24 पृष्ठीय लंबी रचना तक पढ़ने को मिलती हैं।

10. डांग (उपन्यास–2019)

लेखक का यह दूसरा उपन्यास है। उल्लेखनीय है कि हरिराम मीणा ने पुलिस अफसर की हैसियत से लगातार करीब बारह बरस राजस्थान के भरतपुर संभाग में अपनी सेवाएँ प्रदान की हैं। इस दौरान फील्ड अफसर के रूप में उनका लंबा और व्यापक अनुभव रहा है, जिसमें दश्युप्रभावित 'डांग' इलाका और वहाँ की दश्यु समस्या मुख्य है। डाकू समस्या के इतिहास से लेकर वर्तमान तक को समेटते हुए उस अंचल की भौगिलिकता, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक गतिविधियों को इस औपन्यासिक कृति में अभिव्यक्त किया है।

11. आदिवासी दर्शन और समाज (आदिवासी विमर्श–2020)

आदिवासी विमर्श की दृष्टि से लेखक की यह दूसरी कृति है जिसमें उनका गहन शोथ, अध्ययन, चिंतन के साथ निबंधात्मक शिल्प का परिचय मिलता है। चार खण्ड और बीस अध्यायों में फैली हुई सामग्री का संकलन यहाँ मिलता है। जिसमें आदिवासी दर्शन, मिथक, ज्ञान परंपरा, गण–चिह्न, इतिहास, प्रथा–परंपराएँ, आदिम गणतंत्र, आदिवासी अलगाव का इतिहास और वर्तमान, प्रतिरोध की परंपरा, आदिम सौंदर्य बोध, स्त्री की दशा, मीडिया व फिल्मों का दृष्टिकोण, वैश्वीकरण, विकास, राजनैतिक नेतृत्व और कतिपय आदिम प्रजातियों के विलुप्तीकरण तक आधिकारिक सामग्री प्रस्तुत की गयी है। पुस्तक के परिशिष्टों में मानवविज्ञान की दृष्टि से तैयार भारत के आदिवासियों की समग्र सूची, आदिम गणचिह्नों की विशेषताएं, आदिवासी संघर्षों की तालिका आदि के रूप में संग्रहणीय सामग्री दी हुई है। आदिवासी विषयों के अध्ययन व शोध की दृष्टि से यह कृति भी संदर्भ ग्रंथ का महत्त्व रखती है।

12. खाकी कलम (पुलिस के संस्मरण–2020)

जैसा कि पता है, हरिराम मीणा ने पुलिस विभाग में अपनी सेवाएँ दी हैं। पुलिस का उनका लंबा अनुभव है। वे इन अनुभवों को एक संवेदनशील कवि, कथाकार व विमर्शकार के रूप में देखने–परखने की क्षमता रखते हैं। वे अखबारों में कॉलम भी लिखते रहे हैं। पुलिस के संस्मरणों का यह संग्रह ऐसे ही छोटे–छोटे लेखों से मिलकर तैयार हुआ है, जो सच्ची घटनाओं एवं निकट के अनुभवों पर आधारित हैं और आम पाठक के लिए अभिनव और अनूठे सिद्ध हो सकने की क्षमता रखते हैं।

13. समकालीन आदिवासी कविता (संपादित–2013)

जैसा कि पहले कहा गया है कि लेखक मूलतः कवि रहे हैं। उनकी रूचि कविता में होना स्वाभाविक है। दूसरे आदिवासी विषयों के वे विशेषज्ञ माने जाते हैं। उन्होंने आदिवासी कविताओं का संकलन किया है, जिसमें आदिवासी और गैर–आदिवासी दोनों किस्म के रचनाकारों को सम्मिलित किया है। ये कविगण भारत के विभिन्न अंचलों का प्रतिनिधित्व करते हैं। आदिवासी कविता पर शोध काफ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए यह कृति उपयोगी सिद्ध हुई है।

14. आदिवासी विमर्श (2014)

हरिराम मीणा द्वारा हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में दिए गए विशेष व्याख्यानों का संकलन है। आदिवासी विमर्श की इस पुस्तक का संपादन वहाँ के प्रोफेसर वी. कृष्णा एवं डॉ०

भीमसिंह ने किया है। इसमें आदिवासी शब्द की व्याख्या सहित स्वतंत्रता संग्राम में आदिवासियों के योगदान, आदिवासी संस्कृति, साहित्य, विस्थापन एवं नक्सलवाद जैसे विषयों पर चर्चा की गयी है।

15. ब्लेक होल में स्त्री (उपन्यास) 2023

नारी की सबसे बड़ी त्रासदी उसकी देह की वस्तु की तरह से खरीद–फरोख्त और उसका यौन शोषण रहा है। इसके विभिन्न रूप हमें सार्वभौमिक व सर्वकालिक मिलते हैं। भारतीय संदर्भ में कथित सतयुग की इंद्रलोकी अप्सराओं एवं प्राचीन गणिकाओं से लेकर देवदासी, तवायफ, वेश्या, कॉल गर्ल वगैरा तक इसका विस्तार देखा जा सकता है। बेड़िया बस्ती के एक चकलाघर से पुलिस अफसर के रूप में लेखक स्वयं द्वारा मुक्त करायी गयी एक किशोरी की सत्य घटना को केंद्र में रखकर इस समस्या का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है।

कविताएँ, कहानियां, यात्रा वृत्त, चिन्तनपरक लेख, साक्षात्कार, उपन्यास अंश आदि विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र पत्रिकाओं यथा राष्ट्रीय सहारा, हिन्दुस्तान, जनसत्ता, नई दुनिया, दैनिक भास्कर, राजस्थान पत्रिका, पहल, हंस, कथादेश, वागर्थ, समकालीन भारतीय साहित्य, इन्द्रप्रस्थ भारती, कथन, वर्तमान साहित्य, समकालीन सृजन वसुधा, अक्सर तथा दूरदर्शन व आकाशवाणी आदि के माध्यम से प्रकाशित एवं प्रसारित होते रहे हैं। ऐसे ही जन संचार माध्यमों से उनकी पुस्तकों की समीक्षाएँ प्रकाशित व प्रसारित होती रही हैं।

संपादकीय कर्म :

- आदिवासी केन्द्रित पत्रिका 'अरावली उद्घोष' का सह सम्पादन।
- 'युद्धरत आम आदमी', 'दस्तक' एवं 'अकार' के आदिवासी विशेषांकों के सम्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका।
- समकालीन आदिवासी कविता का संपादन।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया :

- 'गश्त पर' सीरियल में भूमिका।
- 'रूबरू' सीरियल के लिये शोथ कार्य.
- 'धूणी तपे तीर' पर बनी डॉक्यूमेंट्री 'जंगल में जलियांवाला' को जयपुर इण्टरनेशनल फिल्म फेस्टीवल में सर्वोच्च अवार्ड (2011) दिया गया।
- दूरदर्शन व आकाशवाणी से रचनाएं, साक्षात्कार, वार्ता आदि प्रसारित।

सहित्यि/अकादमिक भीगीदारी :

- सातवें विश्व हिन्दी सम्मेलन (सूरीनाम) में राजस्थान राज्य के लेखकों के आठ सदस्यीय दल के सदस्य के रूप में शिरकत की।
- विश्व के प्रतिष्ठित 'जयपुर लिटरेरी फेस्टीवल' में निरन्तर भागीदारी।
- राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर के लगभग 150 साहित्यिक/अकादमिक आयोजनों में अब तक भागीदारी।

हरिराम मीणा पर शोध–कार्य :

- अब तक तीन शोधार्थियों को पी.एच.डी. और 200 से ऊपर एम. फिल. आदि हो चुके हैं।

पाठ्यक्रमों में पुस्तकें :

- दिल्ली विश्वविद्यालय, केंद्रीय विश्वविद्यालय हैदराबाद, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय

अमरकंटक सहित देश के करीब चार दर्जन विश्वविद्यालयों में इनकी पुस्तकें स्नातक, स्नातकोत्तर व शोध कार्यों के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित हैं।

भ्रमण :

- विदेश नेपाल 1992, हालैण्ड 2003, सूरीनाम 2003
- देश के आदिवासी क्षेत्र सिक्किम, आसाम, पश्चिमी बंगाल, हिमाचल प्रदेश, झारखण्ड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र, ओडिशा, आन्ध्रप्रदेश, तेलंगाना, गोवा, कर्नाटक, तमिलनाडु, अण्डमान।

संस्थान :

- अध्यक्ष, अखिल भारतीय आदिवासी साहित्यिक मंच।
- निदेशक, 'अलख' (परम्परा एवं माव गरिमा के क्षेत्र में कार्यरत गैर सरकारी संगठन)
- पूर्व सदस्य, कार्यकारिणी, राजस्थान साहित्य अकादमी।
- सदस्य, थिंकर्स कम्यूनिकेशन (डॉक्यूमेंट्री एवं सीरियल मेकर्स)
- विजिटिंग प्रोफेसर (2012), हैदराबाद विश्वविद्यालय।
- महामहिम राज्यपाल, राजस्थान द्वारा मनोनीत पूर्व सदस्य, मेनेजमेंट बोर्ड, राजीव गांधी जनजातीय विश्वविद्यालय।
- सदस्य, मुख्यमंत्री परामर्शदात्री समिति, गोविंद गुरु राजस्थान जनजातीय विश्वविद्यालय, बाँसवाड़ा।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 185–188

విశ్వనాథ కథా సాహిత్య వైభవం

డాక్టర్. అనిత మార్గరెట్ నేలటూరి

ఎమ్.ఎ., ఎమ్.ఫిల్., పిహెచ్.డి.,

తెలుగు శాఖాధ్యక్షులు, యస్.ఆర్.ఆర్. & సి.వి.ఆర్. ప్రభుత్వ డిగ్రీ కళాశాల (స్వ), విజయవాడ-520004. ఆంధ్రప్రదేశ్

తెలుగు సాహిత్యాన్ని పరిపుష్టం చేసిన సాహిత్య ప్రక్రియలలో కథానిక ప్రత్యేక స్థానం పొందింది. ఇది 20వ శతాబ్దంలో పాశ్చాత్య సాహిత్య ప్రభావంతో ప్రవేశించి బలపడిన ప్రక్రియ. కథ ఎప్పుడు పుట్టింది అంటే తల్లి తన బిడ్డకు పాలిస్తూ మైమరపించడానికి చెప్పిన కథే మొదటిది. కన్న తల్లే మొదటి కథకురాలు, అంటే మానవుడు ఈ భూమి పై ఉన్నప్పటి నుండి కథ ఉంది. కథ సామాన్య ప్రజల జీవితాలను ప్రతిబింబిస్తూ సామాజిక పరిస్థితులలో మార్పుకు కారణమవుతుంది. మానవుడు తనలోని సహజ సిద్ధమైన కల్పన పరిశీలనాలోచనలతో ఉత్తేజితుడై ఆ అనుభవాలను ఎదుటి వారితో పంచుకోవాలనుకున్నప్పుడు కథ పుట్టుకు వస్తుంది. కథ సంక్షిప్తంగా, పరిమిత పాత్రలతో ఉండి, మనకు ఎదురయ్యే అనుభవాలను జోడించి చెప్పినపుడు పాఠకులకు ఆసక్తి కలుగుతుంది. కథలు చదవడం ద్వారా ఆయా ప్రాంతాల చరిత్ర, సంస్కృతి పరిచయం అవుతుంది. మానసిక పరివర్తన విశాల దృక్పథం మనకు కలిగించడానికి కథ సహాయపడుతుంది. భాష బలపడటానికి, విస్తృతమవడానికి కథ తన వంతు పాత్ర పోషిస్తుందనడంలో ఎలాంటి సందేహం లేదు.

ఆధునిక సాహిత్య ప్రక్రియలన్నిటిని అద్భుతంగా నిర్వహించిన ప్రజ్ఞాధురీణుడు విశ్వనాథ. తెలుగు సాహిత్యంలో మహోన్నతమైన మూర్తిమంతం ఆయనది. సమస్త సాహిత్య ప్రక్రియలన్నిటిని తన సృజనాత్మకతతో పావనం చేసిన ఉద్ధండుడు. తెలుగు భాష వైభవాన్ని ప్రపంచానికి చాటి చెప్పిన కవుల్లో అగ్రగణ్యుడు. అర్ధ శతాబ్ద సాహిత్య జీవితంలో తెలుగు సాహిత్యం పై తనదైన ముద్ర వేశారు.

తెలుగు సాహిత్య ప్రక్రియలలో కథానిక విశేష ప్రాచుర్యాన్ని పొందింది. పాఠకుల అభిరుచి మరియు పత్రికల ప్రోత్సాహం ఇందుకు కారణమయ్యింది. విశ్వనాథ వారి కథలు ఆనాటికి ఈనాటికి ప్రామాణికంగానే ఉన్నాయి. ఆయన కథల్లో తెలుగుదనం కొట్టొచ్చినట్లు కనబడుతుంది. విశ్వనాథ ఎంచుకున్న కథావస్తువులు కొన్ని సార్లు ఇతర దేశాలకు చెందినవైనప్పటికి అందులో కూడా ఏదో ఒక విషయం మన దేశానికి సంబంధించి ఉండటం గమనార్హం. విశ్వనాథ కథల్లో వస్తు వైవిధ్యం చాలా ఎక్కువగా ఉంటుంది. ఒక కథకు మరొక కథకు పోలికే ఉండదు. శైలి

కూడా కథావస్తువుని బట్టి మారిపోతుంది. విశ్వనాథ శైలితో సమానం విశ్వనాథ శైలే. అది చదివి ఆసందింపతగిందే కాని విపరింపతగింది కాదు. చరిత్ర, సంస్కృతి, తర్కం, వేదాంతం మొదలైన విషయాలెన్నో ఆయన కథల్లో చోటు చేసుకున్నాయి. ఇటువంటి బరువైన విషయాలను విశ్వనాథ తన సరళ, సుందరమైన శైలితో తేలికగా చెప్పగలిగాడు. వాక్యం ఎక్కడ సంక్షిప్తంగా ఉండాలో, ఎక్కడ వివరణాత్మకంగా ఉండాలో గ్రహించినవాడు కాబట్టే కొద్ది మాటలతోనే భావం స్ఫురింపజేసే శక్తి ఆయన సొత్తు. విశ్వనాథ తన కథలను మహా సులభంగా, సహజంగా ప్రారంభిస్తాడు. "ఉరిఖిలా నీగ్రో నాయకుడు" అంటాడు. అంతే కథ హాయిగా ప్రారంభమవుతుంది. అంతేకాదు, ఎన్నో విషయాలు ముందుగా స్ఫురిస్తాయి. ఇప్పుడు చెప్పబోయేది నీగ్రో జాతి కథ అని స్పష్టమవుతుంది. అతడి పేరు ఉరిఖిలా, అంతే కాదు అతడు నాయకుడు కూడా అనే విషయాన్ని పరిచయ వాక్యంలోనే సూటిగా చెప్తాడు.

ఆనాటి సమాజంలో పాతుకుపోయిన దురాచారాలు కట్టుబాట్లు, అసమానతలు తొలగించి స్వేచ్ఛ, సమానత్వం, స్వతంత్రత, పెంపొందించడానికి సమాజ శ్రేయస్సు కోరే కొందరు సంస్కరణోద్యమం ప్రబలటానికి కారకులయ్యారు. శ్రీ కందుకూరి వీరేశలింగం పంతులు, గురజాడ అప్పారావు, శ్రీపాద సుబ్రహ్మణ్య శాస్త్రి, గుడిపాటి వేంకటాచలం, అడవి బాపిరాజు, విశ్వనాథ సత్యనారాయణ పంటి రచయితలు విద్యాపంతులై సమాజంలోని మూఢాచారాలు తొలగించేందకు సాహిత్యాన్ని ఒక ఆయుధంగా ఎంచుకొని తమ రచనల ద్వారా ప్రజలను చైతన్యపరచే ప్రయత్నం చేశారు.

విశ్వనాథ సంస్కరణోద్యమ భావాలు ప్రచారం చేయడానికి కథా సాహిత్యాన్ని ఆయుధంగా వాడుకున్నాడు. తన రచనల ద్వారా ప్రజలలో చైతన్యాన్ని తీసుకువచ్చాడు. మొత్తం ముప్పై నాలుగు కథలు రాస్తే వాటిలో ఐదు కథలు సంస్కరణోద్యమ భావాలతో ఉన్నాయి. అవి పరిపూర్తి, తిరోధానము, ద్విజత, కపర్ధి, మాక్లీదుర్గంలో కుక్క. ఈ కథలలో ఏదో ఒక సామాజిక సమస్యను వస్తువుగా చేసుకొని ఈ కథలను చిత్రించాడు. ఈ కథలు సంస్కరణోద్యమాన్ని బలోపేతం చేసేందుకు ఎంతగానో దోహదపడ్డాయి అని చెప్పవచ్చు.

పరిపూర్తి కథ ప్రధానంగా అంధత్వంతో బాధపడుతూ అయినవారితోనూ, బయటి వారితోనూ అగచాట్లు ఎదుర్కొంటున్న యువతి చివరకు తన జీవితాన్ని ఎలా పరిపూర్ణం చేసుకుందో తెలియజేసేదే ఈ కథ నేపథ్యం. ఈ కథలో ఇరవై రెండు సంవత్సరాల వయస్సు గల అందగాడైన చంద్రశేఖరరావు బాగా సంపన్న కుటుంబానికి చెందిన వ్యక్తి. బియ్యే పూర్తి చేస్తాడు. అతనికి మంచి సంబంధాలు వస్తాయి. కాని అతడు అంగీకరించడు. ఒకరోజు అతడు ఒక పల్లెటూరుకు వెళ్లతాడు. అక్కడ తన స్నేహితుడు శంకర్రావు అతనిని భోజనానికి ఆహ్వానిస్తాడు. అక్కడ బాగా సల్లగా, అంధురాలైన

రాధను ఆమె తల్లి తిడుతున్న తిట్లను వింటాడు. ఆ తర్వాత ఆమెని కట్నకానుకల ప్రసక్తి లేకుండా వివాహం చేసుకుంటాడు. ఆమెకు మంచి జీవితాన్ని ప్రసాదిస్తాడు. ఇది ఈ కథ ఇతివృత్తం. ఈ కథలో చంద్రశేఖరరావు వంటి మనస్తత్వం గల మానవతావాదులు ఈ సమాజంలో చాలా తక్కువ మంది ఉంటారు. నేడు ఇలాంటి వారు సమాజానికి చాలా అవసరం అని, అందగాడు, చదువుకున్నవాడు, సంస్కారి అయిన చంద్రశేఖరరావు ద్వారా అంధురాలికి క్రొత్త జీవితాన్ని ఇచ్చినట్లు చిత్రించి తనలోని సంస్కరణ భావాన్ని ప్రకటించాడు విశ్వనాథ.

విశ్వనాథ కథల్లో స్వాతంత్ర్య కాంక్ష, విప్లవదీక్ష ప్రత్యక్షమవుతుంటాయనడానికి 'యో హిషీ ఖీమ్" అనే కథ ఉదాహరణగా నిలుస్తుంది. హి షిఖిమ్ నీగ్రో కవి తన దేశాన్ని తన జాతి సంస్కృతిని కీర్తిస్తూ గీతాలు రాస్తాడు. ఇది నీగ్రోల దేశాన్ని పరిపాలిస్తున్న పాశ్చాత్యులకు గిట్టదు. అతణ్ణి జైలుపాలు చేసి పత్రికలలో హి షిఖిమ్ దోషి అని వదంతులు వ్యాప్తి చేయడం మొదలుపెట్టారు. జైల్లో ఆ నీగ్రో కవికి క్షయ వ్యాధి పచ్చింది. ఖైదు నుండి బయటకు పచ్చిన తర్వాత మరణించాడు. చివరి రోజులలో అతడు రాసిన కవిత్వం నీగ్రోలకు జాతీయగీతం అయింది. పాలకులు నీగ్రోల ఆచార వ్యవహారాలను వ్యతిరేకించి వారి మీద పగ సాధించడం మొదలుపెట్టారు. ఇంతవరకు కథ చెప్పిన తరువాత వింతగా ఒక వాక్యాన్ని రాశాడు రచయిత. 'ఒక పెద్ద తటాకములో ఉన్న భయంకరమైన నీటి గుర్రాన్ని నీగ్రోలు పగ్గాలేసి బంధించి పారేస్తారు" అని చెప్పి కథ ముగించాడు. దీని అర్థం ఏమిటంటే తిరుగుబాటు చేసి నీగ్రోలు పాశ్చాత్యులను కట్టడి చేస్తారని అర్థం. తమ సంస్కృతిని, జాతీయతను నాశనం చేయడానికి ప్రయత్నిస్తున్న పాశ్చాత్యులే ఆ భయాంకర నీటి గుర్రాలని, పడినన్నాళ్ళు కష్టాలు పడి చివరకు ఒకనాడు ఆ భయంకర మృగాన్ని అమాయకులైన పల్లెటూరి నీగ్రోలే పగ్గాలేసి పడేయగలిగారు. ఈ కథ నీగ్రోలకు సంబంధించినదైనా నిజానికి ఇది మన కథేనేమోనని అనిపిస్తుంది. పాశ్చాత్యులు ఆయా దేశాలను పరిపాలించడమే కాకుండా అక్కడి సంస్కృతిని ఎలా నాశనం చేయడానికి ప్రయత్నిస్తారో బాగా వర్ణించాడు విశ్వనాథ.

విశ్వనాథ కథలు రసవత్కావ్యాలు "నీ రుణం తీర్చుకున్న" అనే కథ కరుణ రస పూరితం. ఒక బిడ్డ మరణించినపుడు కలిగే దు:ఖాన్ని అసమానంగా వర్ణించాడు. అయినా తృప్తి తీరక రససిద్ధులైన మహాకవులు వర్ణించే యిట్టి పట్టు నేనెవడను వర్ణించుటకు అని తన వినయాన్ని ప్రకటించాడు. నిజంగా విశ్వనాథ రససిద్ధుడైన మహాకవి అని చెప్పవచ్చు.

ఇంకా కొన్ని కథల ప్రారంభాలు చూసినట్లయితే "డయాంథస్ గ్రీకు యువకుడు" అని డయాంథస్ కథ ప్రారంబిస్తాడు. "భావనా సిద్ధి" అనే కథకు ప్రారంభం ఇలా ఉంది. "లక్ష్మణ స్వామియు నూర్మిళయు మేనత్త మేనమామ బిడ్డలు" అని, "పూర్వం సుధర్ముడనే రాజు ఉండేవాడు" ఈ వాక్యం "రాజు" అనే కథలో మొదటిది. ఇలా ఎలాంటి కథనైనా సూటిగా, స్పష్టంగా ప్రారంభిస్తాడు.

పాఠకులు ఉత్కంఠతో గడగడా చదవక తప్పని పరిస్థితి కల్పిస్తాడు విశ్వనాథ. 'కపర్ది' కథలో వేశ్య జీవితాన్ని బాగుపరచాలనే తపన కనిపిస్తుంది. "తిరోదానము" కథ అతి సున్నితమైన ప్రేమ కథ, వితంతు వివాహాన్ని ప్రోత్సహించే అభ్యుదయ భావాలున్న కథ. "మాక్లీ దుర్గంలో కుక్క" కథలో జంతువుల పట్ల భూతదయ చూపిస్తునే మానవ మనస్తత్వాలలో గల అస్థిరత, దుష్టత్వాన్ని కళ్ళకు కట్టినట్లు చూపిస్తాడు.

ఏకవీర, వేయి పడగలు వంటి ఉద్గ్రంథాలను రచించి ఖ్యాతి గటించిన విశ్వనాథ చిన్న కథలను కూడా తనదైన శైలిలో రాసి వాటికి ప్రాధాన్యతనివ్వడం ద్వారా తెలుగు సాహిత్యంలోని అన్ని ప్రక్రియలలో తనకున్న పట్టును నిరూపించాడు. అవి చిన్న కథలైనప్పటికీ పెద్ద భావాలను వ్యక్తపరచేలా కళాత్మకంగా చిత్రించాడు. సమాజ శ్రేయస్సు, పేదల, నిర్భాగ్యుల సాధక బాధకాలు పట్టించుకున్న అభ్యుదయ వాదిగా కనిపిస్తాడు. నవీనంగా ఆలోచిస్తూనే సాంప్రదాయ వాదిగా అనిపిస్తాడు. అందుకే ఆయన రచనలు సజీవ శిల్పాలుగా నేటికి తొణికిసలాడుతున్నాయి. విశ్వనాథతో పోల్చదగినవారు విశ్వనాథ మాత్రమే. అందుకే ఒకడు విశ్వనాథ, కాదంటే ఒకే ఒక్కడు విశ్వనాథ.

ఆధార గ్రంథాలు:

1. తెలుగు కథా సాహిత్యం – ఆధునిక దృక్పథాలు – ఆచార్య శరత్ జ్యోత్స్నరాణి.
2. తెలుగు సాహిత్య చరిత్ర – డా॥ ద్వా. నా. శాస్త్రి
3. తెలుగు సాహిత్య సమీక్ష – డా॥ జి. నాగయ్య
4. విశ్వనాథ చిన్నకథలు – విశ్వనాథ పబ్లికేషన్స్
5. విశ్వనాథ శారద – విశ్వనాథ స్మారక సమితి ప్రచురణ.

డాక్టర్. అనిత మార్గరెట్ నేలటూరి,
ఎమ్.ఎ., ఎమ్.ఫిల్., పిహెచ్.డి.,
తెలుగు శాఖాధ్యక్షులు
యస్.ఆర్.ఆర్. & సి.వి.ఆర్. ప్రభుత్వ డిగ్రీ కళాశాల (స్వ)
విజయవాడ, ఆంధ్రప్రదేశ్
చరవాణి : 86397 28322

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 189–192

मैला आंचल में राजनीतिक चेतना : नेतृत्व, भ्रष्टाचार और स्वतंत्रता–उत्तर भारत की राजनीति का विश्लेषण

डॉ० सीमा दुबे
सहायक आचार्य
तिरुपति कालेज, प्रताप नगर, जयपुर।

सारांश :

फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास मैला आंचल स्वतंत्रता–उत्तर भारतीय समाज के जटिल राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रूपांतरणों का एक जीवंत दस्तावेज है। यह उपन्यास ग्रामीण नेतृत्व, स्थानीय सत्ता–संरचना, चुनावी राजनीति, प्रशासनिक भ्रष्टाचार और जनता के संघर्षों के माध्यम से राजनीतिक चेतना के उदय का गहरा चित्र प्रस्तुत करता है। इस शोध–पत्र में 'मैला आंचल' में निहित नेतृत्व–विमर्श, राजनीतिक भ्रष्टाचार, सत्ता–संरचना तथा स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति में आए अंतर्विरोधों का विश्लेषण किया गया है। उपन्यास यह दिखाता है कि स्वतंत्रता के बाद भी ग्रामीण जनता शोषण, दलाल–तंत्र, फर्जी नेतृत्व और नौकरशाही की जकड़न से मुक्त नहीं हो पाई। यह अध्ययन साहित्य और समाजशास्त्र दोनों की पद्धतियों का समन्वित उपयोग करता है। निष्कर्ष यह कि रेणु का कथानक केवल साहित्यिक प्रस्तुति नहीं, बल्कि भारतीय लोकतंत्र की वास्तविक चुनौतियों का दस्तावेज है।

प्रमुख शब्द : मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, राजनीतिक चेतना, नेतृत्व, भ्रष्टाचार, स्वतंत्रता के बाद की राजनीति, ग्रामीण उत्तर भारत, सामाजिक यथार्थ, ग्राम पंचायत, सत्ता संघर्ष।

प्रस्तावना :

फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास मैला आंचल (1954) भारतीय साहित्य में आंचलिक उपन्यास की महत्वपूर्ण कृति है। यह उपन्यास बिहार के पूर्णिया जिले के ग्रामीण परिवेश का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करता है। इसे केवल ग्रामीण जीवन के चित्रण तक सीमित नहीं रखा जा सकताय इसमें राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं की गहन झलक भी मिलती है। विशेष रूप से स्वतंत्रता–उत्तर भारत के ग्रामीण राजनीति के विभिन्न आयामों नेतृत्व, भ्रष्टाचार और सामाजिक चेतना को रेणु ने सूक्ष्म दृष्टि से उकेरा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में लोकतंत्र की स्थापना से ग्रामीण भारत में नई राजनीतिक चेतना का उदय हुआ। किंतु यह चेतना जितनी उत्साहजनक थी, उतनी ही विडंबनाओं से भरी हुई भी। मैला आंचल इसी संक्रमणशील समाज और राजनीति का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करता है। उपन्यास में दिखाया गया राजनीतिक

वातावरण, नेतृत्व के बदलते स्वरूप, प्रशासन की मनमानी, दमनकारी नीतियाँ और राजनीतिक अवसरवाद स्वतंत्र भारत के आरंभिक दशकों के वास्तविक इतिहास के समानांतर चलते हैं।

प्रभाकर श्रोत्रिय इस संदर्भ में लिखते हैं– ”मैला आंचल आंचलिकता की उस परंपरा को समृद्ध करता है जो केवल भूगोल का विस्तार नहीं बल्कि लोकजीवन, भाषा और सांस्कृतिक अस्मिता का प्रामाणिक आख्यान है।“[1]

उपन्यास का राजनीतिक विमर्श मुख्यतः ग्रामीण सत्ता संरचना और उसमें शक्ति संघर्ष, भ्रष्टाचार तथा नेतृत्व के वैयक्तिक और सामाजिक आयामों के इर्द–गिर्द घूमता है। रेणु ने स्थानीय नेताओं, ग्रामीण समाज और प्रशासनिक तंत्र के आपसी संबंधों के माध्यम से यह दिखाया है कि किस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी राजनीति में भ्रष्टाचार, लालच और सत्ता संघर्ष ने ग्रामीण जीवन को प्रभावित किया।

राजनीतिक चेतना का स्वरूप : मैला आंचल में ग्रामीण राजनीति का चित्रण बहुत गहराई से किया गया है। यह चित्रण केवल सत्ता और प्रशासन तक सीमित नहीं है, बल्कि आम जनता की राजनीतिक समझ और चेतना का भी पता देता है।

उपन्यास में राजनीतिक चेतना का उद्‌भव उस दौर के औपनिवेशिक अनुभव से भी जुड़ा हुआ है। उदाहरण के तौर पर, रेणु लिखते हैं : ”औपनिवेशिक शासन की भयंकर दमन नीति। इस दमन नीति का देश के सुदूर गांवों तक में इतना आतंक है कि मिलेटरी आने की अफवाह मात्र से गांव वाले स्वतंत्रता सेनानी बालदेव को रस्सी से बांध लेते हैं अर्थात दमन की नीति के आतंक से जनमानस की मानसिक गुलामी भी गहरे में जड़े पकड़ लेती हैं। यह बात अलग है कि जब शासकों की ओर से बालदेव को सम्मान दिया जाता है तो गांव वालों के लिए वह पूज्य हो जाता है। यह सिक्के का दूसरा पहलू भी मानसिक गुलामी का ही दूसरा रूप है। जनमानस व जन को शारीरिक व मानसिक रूप से गुलाम बनाना यह ब्रिटिश औपनिवेशिक दमन नीति का उद्देश्य था।“[2] इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि राजनीतिक चेतना और स्वतंत्रता की समझ का विकास सीधे तौर पर लोगों के औपनिवेशिक अनुभव और उसके खिलाफ विद्रोह से जुड़ा हुआ है।

रेणु के उपन्यास में देखा जा सकता है कि स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण समाज में राजनीतिक चेतना धीरे–धीरे जाग रही थी। लोग अपनी समस्याओं, न्याय और सामाजिक समानता के प्रति सजग होने लगे थे। उपन्यास के पात्र ग्रामवासी, स्थानीय नेता और अन्य सामाजिक कार्यकर्ता राजनीतिक निर्णयों में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं, और अपनी व्यक्तिगत तथा सामूहिक हितों के लिए संघर्ष करते हैं।

उदाहरण के रूप में, पार्टी और राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय पात्रों का चित्रण इस बात को स्पष्ट करता है : ”कॉमरेड कालीचरण और कॉमरेड बासुदेव ! सुशलिंग पार्टी! रास्ते में कालीचरण बासुदेव को समझता है, यही पार्टी असल पार्टी है। गरम पार्टी है। किरान्ती दल का नाम नहीं सुना था? बम फोड़ दिया फाटक से मस्ताना Hkxr fl gA ; g xkuk ughal qsgks ogh i kVhZgS bl esa dksZy hMj ughaA l Hkh l kFkh gSa l Hkh y hMj gSaA"[3]

यह उद्धरण ग्रामीण राजनीतिक चेतना में सामूहिकता और नेतृत्व की समानता की भावना को उजागर करता है।

नेतृत्व और ग्रामीण सत्ता : मैला आंचल में नेतृत्व की समस्या प्रमुख रूप से उभरती है। स्वतंत्रता–उत्तर भारत में ग्रामीण नेतृत्व अक्सर व्यक्तिगत लाभ, जातिगत राजनीति और सत्ता की लालसा से प्रेरित होता है। उपन्यास में बालदेव जैसे अवसरवादी नेताओं का उदाहरण इसे स्पष्ट करता है : ”बालदेव जैसे अवसरवादी नेता

अहिंसा का नारा देकर जनता को प्रभावित करते हैं और अपने त्याग एवं बलिदान का मूल्य ब्याज–सहित वसूल करते हैं। बालदेव राशन की पर्चियां अपने परिचितों में ही बांटता है। बालदेव अहिंसा की आड़ लेकर लक्ष्मी तथा रामदास के अधिकारों के हनन करने वाले पत्र पर हस्ताक्षर करते हुए भी नहीं हिचकता। इस कार्य में यह कालीचरण के विरोध की भी प्रवाह नहीं करता। वह बावनदास के पत्रों को इसलिए नष्ट करने का प्रयत्न करता है कि इनके प्रकाशित हो जाने पर बावनदास देश–भक्त के रूप में सम्मानित हो जाएगा।"[4]

इस उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण नेतृत्व में ईमानदारी की कमी और अवसरवाद कैसे जनता के हितों को प्रभावित करता है। नेतृत्व की नैतिकता का अभाव सार्वजनिक संसाधनों के दुरुपयोग और सामाजिक रिश्तों में कमी पैदा करता है।

भ्रष्टाचार और सत्ता का दुरूपयोग : उपन्यास में भ्रष्टाचार का चित्रण अत्यंत वास्तविक और तीव्र है। सरकारी तंत्र और स्थानीय सत्ता में भ्रष्टाचार के विविध रूप दिखाई देते हैं। इससे ग्रामीण जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। "कालीचरण कहता है कि जब तक यह खबर 'लाल पताका' अखबार में न निकले तब तक वह इसे सत्य नहीं मान सकते। वह इसके विषय में कल ही सेक्रेटरी साहब से पूछेगा। सोशलिस्ट पार्टी के लोग चन्दे के पैसों को अपने काम में ले लेते हैं। सनिचरा ने मेम्बरी के पैसों से सोशलिस्ट काट कुर्ता बनवा लिया है।"[5]

यह उद्धरण स्थानीय स्तर पर सत्ता और संसाधनों के दुरुपयोग को दर्शाता है। उपन्यास में यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार राजनीतिक दलों और नेता–प्रतिनिधियों के व्यक्तिगत स्वार्थ विकास योजनाओं और सामाजिक न्याय के रास्ते में बाधक बन जाते हैं।

स्वतंत्रता–उत्तर भारत की राजनीतिक पृष्ठभूमि : उपन्यास की कथा स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद के समय को दर्शाती है। ग्रामीण समाज में राजनीतिक जागरूकता और सत्ता संघर्ष का उद्‌भव होता है। "..लेकिन प्यारे भाईयो, हमने भारत माता का नाम महात्मा जी का नाम लेना बन्द नहीं किया, तब मलेटरी ने हमको नाखून में सुई गढ़ाया, तिसपर भी हम इसबिस (चूं–चपड़) नहीं किया। आखिर हारकर जेहलखाना में डाल दिया। आप लोग तो जानते ही हैं कि सुराजी लोग जेहल को क्या समझते हैं– जेहल नहीं, ससुराल। यार हम बिहा करने जायेंगे। मगर जेहल में अंग्रेज सरकार हम लोगों को तरह–तरह की तकलीफ देने लगा। भात में कीड़ा मिला कर देता था। घात–पात की तरकारी देता था। बस हम लोगों ने भी अनसन शुरू कर दिया। पियारे भाईयों! पांच दिनों तक निरजला अनसन। उसके बाद कलक्टर, इसपी, सब आया, मांग पूरा कर दिया। खाने को दूध हलुआ दिया।"[6]

यह उद्धरण ग्रामीण संघर्ष और औपनिवेशिक शासन के प्रतिरोध को स्पष्ट करता है। यह बताता है कि कैसे सामूहिक प्रतिरोध औपनिवेशिक अत्याचार के सामने प्रभावी रणनीति बनकर उभरा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जनता नई उम्मीदों से भरी थी, लेकिन राजनीतिक नेतृत्व की वास्तविकता इन उम्मीदों से बिल्कुल विपरीत थी। देश में लोकतंत्र तो आया, लेकिन लोकतांत्रिक मूल्यों का धरातलीय विमर्श गहरे संकट में था।

रेणु ने उपन्यास में 'नेता', 'अफसर', 'दलालों' और 'स्थानीय प्रभुओं' की जो तस्वीर खींची है, वह स्वतंत्रता के तुरंत बाद राजनीति में आई गिरावट की सामाजिक व्याख्या प्रस्तुत करती है। उपन्यास में कई जगह दिखाया

गया है कि स्वतंत्रता केवल सत्ता परिवर्तन थी, न कि जन–कल्याणकारी व्यवस्था का विकास। ग्रामीण जनता अब भी दमन, शोषण और उपेक्षा का सामना कर रही थी।

डॉ. मैनेजर पांडेय लिखते हैं – "रेणु का ग्रामीण समाज अपने भीतर गहरे सामाजिक–सांस्कृतिक द्वंद्व को समेटे हुए है, जिसमें विकास के नए आयाम तो हैं परंतु विसंगतियाँ भी उतनी ही तीव्र हैं।"[7]

सामाजिक और आर्थिक पहलू : मैला आंचल में राजनीतिक चेतना केवल सत्ता और नेतृत्व तक सीमित नहीं है। यह ग्रामीण समाज की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों से भी गहराई से जुड़ी हुई है। "हाल क्या सुनाएगा। अब सुनना–सुनाना क्या है। रामकिसुन आश्रम में भी हरिजन भोजन होगा। बिलेकपी कल मर गया। सिवनाथ बाबू आये हैं पटना से। ससकांकजी प्रांती सभापति हो गये हैं, 'वह भी पटना में ही रहेंगे। सब आदमी अब पटना में ही रहेंगे। मेले लोग हमेशा यहीं रहते हैं। सुराज मिल गया, अब क्या है। छोटन बाबू का राज है। एक कौरी वैमत्न बिलेक मारकेटी के साथ कचेहरी में घूमते रहते हैं। हाकियों के यहाँ दाँत खिटकाते रहते हैं। सब चौपट हो गया।"[8]

यह उद्धरण ग्रामीण जीवन में राजनीतिक और सामाजिक असंतुलन को उजागर करता है। राजनीतिक घटनाएं और सत्ता परिवर्तन सीधे तौर पर गांवों के रोजमर्रा के जीवन, सामाजिक समूहों और आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित करते हैं।

उपन्यास का साहित्यिक महत्व : मैला आंचल केवल राजनीतिक विश्लेषण तक सीमित नहीं हैय यह ग्रामीण जीवन के समग्र यथार्थ का भी सटीक चित्रण प्रस्तुत करता है। राजनीतिक चेतना, भ्रष्टाचार और नेतृत्व की समस्याएँ उपन्यास की सामाजिक यथार्थवाद शैली का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

रेणु का लेखन शैली में संवेदनशीलता और सूक्ष्मता स्पष्ट दिखाई देती है। उन्होंने ग्रामीण भाषा, बोली और सांस्कृतिक परिवेश का समावेश कर उपन्यास को और प्रभावशाली बनाया है।

इसके अतिरिक्त, उपन्यास के पात्र और घटनाएँ वास्तविक जीवन के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संघर्षों का प्रतिबिंब हैं। यह उपन्यास पाठकों को न केवल मनोरंजन प्रदान करता है, बल्कि उन्हें सामाजिक और राजनीतिक जागरूकता की ओर भी ले जाता है।

निष्कर्ष : मैला आंचल में राजनीतिक चेतना, नेतृत्व और भ्रष्टाचार की झलक स्वतंत्रता–उत्तर भारत की ग्रामीण राजनीति के वास्तविक चित्रण के रूप में प्रस्तुत होती है। रेणु ने यह दिखाया है कि कैसे सत्ता, भ्रष्टाचार और जातिगत राजनीति ग्रामीण जीवन को प्रभावित करते हैं। उपन्यास राजनीतिक चेतना के महत्व, नेतृत्व की नैतिकता और भ्रष्टाचार के खिलाफ संघर्ष की आवश्यकता को स्पष्ट रूप से दर्शाता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. प्रभाकर श्रोत्रिय, आंचलिकता और हिंदी उपन्यास, 1982 : पृ. 145
2. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ. 11
3. वही पृ. 225 4. वही पृ. 166 5. वही पृ. 309 6. वही पृ. 22
7. डॉ. मैनेजर पांडेय, समाज और साहित्य, 1990 : पृ. 98
8. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ. 27

पता : 138 नंदपुरी बी. जगतपुरा, जयपुर।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11-12
पृष्ठ : 193–201

प्राथमिक स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का अध्ययन

डॉ. नवीनता रानी
एसोसिएट प्रोफेसर
जी0डी0एम0 इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन, मोदीनगर (गाजियाबाद)

शिक्षा जीवन–पर्यन्त गतिमान विकास की वह प्रक्रिया है जो व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करती है और व्यक्ति की वैयक्तिता का पूर्ण विकास करती है। शिक्षा प्राप्ति के लिए प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक प्रत्येक काल में शिक्षक सम्मानजनक स्थान पर प्रतिष्ठित रहा है। समय चक्र की गति के साथ–साथ शिक्षक की सामाजिक मान्यताओं एवं अपेक्षाओं में व्यापक परिवर्तन हुये हैं। शिक्षक ही वह शक्ति है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आने वाली संततियों पर अपना प्रभाव डालती है। शिक्षक ही राष्ट्रीय एवं भौगोलिक सीमाओं को लाँघ कर विश्व व्यवस्था तथा मानव जाति को उन्नति के पथ पर अग्रसर करता है। इस प्रकार मानव समाज एवं देश की उन्नति उत्तम शिक्षकों पर निर्भर है। बालक पर शिक्षक का पूर्ण प्रभाव होता है। अतः एक शिक्षक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह बालक पर अपना सर्वोत्तम प्रभाव डाले। इसलिए यह आवश्यक है कि वह सदैव उच्च आदर्शों एवं विचारों को मन, वचन तथा कर्म से व्यवहार में लाये, जिनका बालक पर सर्वोत्तम प्रभाव पड़ सके क्योंकि समाज एक शिक्षक से उच्च आदर्श तथा महान उत्तरदायित्व की अपेक्षा करता है। लेकिन कुछ कारणों से आज शिक्षक उच्च आदर्शों के पालन में अपने आपको असफल पा रहा है वर्तमान में वह अपने व्यवसाय से संतुष्ठ नहीं है। यदि शिक्षक अपने व्यवसाय से संतुष्ट नहीं है तो वह अपने शिष्यों में वांछित मूल्यों, आदतों, रूचियों, क्षमताओं एवं अंतनिर्हित गुणों का विकास करने के योग्य नहीं होगा तथा उसे अपने व्यवसायिक उत्तरदायित्वों के समुचित निर्वाह करने में कठिनाई होगी। अतः समुन्नत शिक्षा प्रक्रिया हेतु शिक्षक का अपने व्यवसाय से सुंतष्ट होना अति आवश्यक है। शिक्षक छात्रों तथा समाज दोनों की अपेक्षाओं को पूर्ण करने में स्वयं को असमर्थ पा रहा है। इसका मुख्य कारण उसकी व्यावसायिक असंतुष्टि भी हो सकती है।

व्यावसायिक संतुष्टि का सम्प्रत्यय –

व्यावसायिक संतुष्टि व्यक्ति की अपनी मनोवैज्ञानिक, पर्यावरण तथा भौतिक परिस्थितियों के प्रति सकारात्मक अनुभव है। व्यक्ति को किसी कार्य में आत्म संतुष्टि प्राप्त न होने पर उसके मन में कार्य के प्रति ऋणात्मक अभिवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, फलस्वरूप वह पूर्ण मनोयोग से उस कार्य का सम्पादन नहीं कर पाता है। वास्तव में व्यावसायिक संतुष्टि व्यक्ति विशेष की उस मनोवृत्ति को प्रदर्शित करती है, जो किसी कार्य विशेष

के उत्पादन के फलस्वरूप अभिव्यक्त होती है और प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कार्य के परिणाम को प्रभावित करती है।

व्यावसायिक संतुष्टि को प्रभावित करने वाले कारक –

प्राथमिक शिक्षकों में व्यावसायिक संतुष्टि को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते हैं–

1. **वित्तीय एवं सेवा सम्बन्धी सुरक्षा** – सम्मानजनक वेतन, समय पर भुगतान और नौकरी की सुरक्षा जैसा कारक शिक्षकों की संतुष्टि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
2. **पेशेवर विकास के अवसर** – व्यापक व्यावसायिक विकास कार्यक्रम, नई शिक्षण प्रौद्योगिकी एवं योजनाओं को सीखने का अवसर शिक्षकों की क्षमता और आत्मविश्वास को बढ़ाते हैं तथा शिक्षकों की अपनी बौद्धिक क्षमता की अभिव्यक्ति और विकास के अवसर भी आवश्यक हैं।
3. **सकारात्मक कार्य वातावरण** – अच्छा शैक्षिक एवं सामाजिक परिवेश और विद्यालय प्रमुखों द्वारा पर्याप्त समर्थन और मार्गदर्शन शिक्षक की संतुष्टि को बढ़ाते हैं।
4. **सम्बन्ध और संचार** – छात्रों और अभिभावकों के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित करना शिक्षक–छात्र संतुष्टि को बढ़ाता है, जिससे नौकरी से असंतोष और बर्नआउट को कम करने में सहायता प्राप्त होती है।
5. **व्यक्तिगत और व्यावसायिक विशेषतायें** – शिक्षकों में सांस्कृतिक विविधता के प्रति खुलापन और आत्म प्रभावकारिता जैसे गुण भी पेशेवर संतुष्टि को प्रभावित करते हैं। शिक्षकों की अपनी भावनाओं, लक्ष्यों और आदर्शों के मध्य सन्तुलन बनाये रखने की क्षमता भी आत्म संतुष्टि को प्रभावित करती है।

प्राथमिक शिक्षकों में व्यावसायिक संतुष्टि के प्रभाव –

प्राथमिक शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि उनके शिक्षण प्रदर्शन, छात्रों की सफलता और शैक्षिक गुणवत्ता को सीधे प्रभावित करती है जो सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार प्रभाव हो सकते हैं।

1. **सकारात्मक प्रभाव** – जब शिक्षक संतुष्ट होते हैं तो उनका निम्नलिखित सकारात्मक प्रभाव परिलक्षित होता है :–

क. **बेहतर प्रदर्शन और समर्पण** – संतुष्ट शिक्षक अधिक समर्पित और प्रभावी होते हैं, जिससे वे छात्रों को बहुत अच्छी तरह से पढ़ा पाते हैं।

ख. **छात्रों के लिए प्रेरक वातावरण** – जब शिक्षक अपने कार्य से सन्तुष्ट होते हैं, तो वे छात्रों के लिए एक अधिक आकर्षक और प्रेरक कक्षा का वातावरण बना पाते हैं।

ग. **उच्च गुणवत्तावाली शिक्षा** – शिक्षकों की संतुष्टि सीधे तौर पर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से जुड़ी हुयी है, जो छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है।

घ. **सकारात्मक मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य** – एक संतुष्ट शिक्षक अच्छे मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य का अनुभव करता है जो शिक्षण की प्रभावशीलता को बढ़ाता है।

2. **नकारात्मक प्रभाव** – एक असंतुष्ट शिक्षक कम प्रेरित होता है, जिससे शिक्षा की गुणवत्ता पर निम्नलिखित नकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं :–

क. **कम प्रदर्शन और प्रेरणा** – असंतुष्ट शिक्षक अपना पूर्ण समर्पण नहीं दे पाते हैं। इसलिए असंतुष्ट कम प्रेरित महसूस करते है, जिससे उनके कार्य में अलगाव की भावना बढ़ जाती है।

ख. **शिक्षण की प्रभावशीलता में कमी** – तनाव और असंतोष के कारण शिक्षक अपने कार्य को प्रभावी ढंग से करने में कम सक्षम हो सकते हैं।

ग. **उच्च तनाव स्तर** – असंतोष व्यावसायिक तनाव को बढ़ाता है, जिसका शिक्षकों की मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़त है।

घ. **उच्च शिक्षक टर्न ओवर** – व्यवसाय से असंतुष्ट शिक्षक नौकरी छोड़ सकते हैं, जिससे विद्यालय और छात्रों के लिए अस्थिता उत्पन्न हो जाती है।

होल्डवेव (1971) ने अपने अध्ययन में पाया कि आस्ट्रेलिया में महिला शिक्षिकायें पुरूष शिक्षकों की अपेक्षा शिक्षण कार्य से अधिक संतुष्ट थी जबकि कनाड़ा में यह स्थिति भिन्न पायी गयी। बर्नार्ड एवं कुलण्डीवाल (1976) ने निष्कर्ष प्राप्त किये कि महिला शिक्षिकायें पुरूष शिक्षकों की अपेक्षा तथा सहायता प्राप्त विद्यालयों के शिक्षक सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों की अपेक्षा अधिक संतुष्ट थे। हैवर्थ (1977) के अध्ययन का निष्कर्ष है कि अधिक आयु के अनुभवी तथा विवाहित युवा शिक्षक कम अनुभवी तथा अविवाहित युवा शिक्षकों की अपेक्षा अधिक संतुष्ट थे। गुप्ता (1980) के निष्कर्षानुसार वैवाहिक स्थिति, आयु एवं शिक्षण अनुभव का प्राथमिक शिक्षकों की व्यवसायिक संतुष्टि में सार्थक अन्तर नहीं था। खण्डेलवाल (1988) के अनुसार 10 वर्ष से कम अनुभव वाले पुरूष और महिला शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में सार्थक अन्तर नहीं था जबकि से 10 वर्ष से अधिक अनुभव वाले पुरूष और महिला शिक्षकों में सार्थक अन्तर पाया गया। रावत (1993) ने अपने अध्ययन में पाया कि सी0टी0ग्रेड के शिक्षक एल0टी0 ग्रेड के शिक्षकों की अपेक्षा अपने व्यवसाय से अधिक संतुष्ट थे। रेड्डी एवं बाबू (1995) ने पाया कि आवासीय विद्यालयों के शिक्षक एवं महिला शिक्षिकायें गैर आवासीय शिक्षकों एवं पुरूष शिक्षकों की अपेक्षा अधिक संतुष्ट थी। तोमर (1998) के निष्कर्ष अनुसार कला वर्ग के प्रवक्ता विज्ञान वर्ग के प्रवक्ताओं तथा माध्यमिक विद्यालयों के प्रवक्ता महाविद्यालयों के प्रवाक्ताओं की अपेक्षा अधिक संतुष्ट थे। द्विवेदी (2015) के अनुसार प्राथमिक शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में लिंग के आधार पर कोई अन्तर नहीं था और प्राथमिक शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि एवं स्वास्थ्य में धनात्मक सम्बन्ध पाया गया। जाखड़ एवं अन्य (2018) ने पंजाब के अध्ययन में पाया कि अनुसूचित जाति के शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि सामान्य शिक्षकों की अपेक्षा थी तथा महिला शिक्षिकायें पुरूष शिक्षकों की अपेक्षा अधिक संतुष्ट थी।

अध्ययन के उद्देश्य –

प्रस्तुत शोध प्राथमिक स्तर पर शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का अध्ययन निम्नलिखित उद्देश्यों तक सीमित किया गया है –

1. प्राथमिक स्तर पर कार्यरत पुरूष तथा महिला शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का अध्ययन करना।
2. दस वर्ष से कम तथा दस वर्ष से अधिक अनुभवी प्राथमिक शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. दस वर्ष से कम अनुभवी पुरूष एवं महिला प्राथमिक शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
4. दस वर्ष से अधिक अनुभवी पुरूष एवं महिला प्राथमिक शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

5. नगरीय एवं ग्रामीण प्राथमिक शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

6. सामान्य एवं उच्च योग्यता युक्त प्राथमिक शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अनुसंधान प्रविधि –

प्रस्तुत शोध अध्ययन केवल प्राथमिक स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि चर तक सीमित किया गया है। सोद्देशीय न्यादर्श विधि के द्वारा सहारनपुर जनपद के परिषदीय प्राथमिक स्तर पर कार्यरत 100 पुरूष तथा 100 महिला शिक्षिकों का चयन इस प्रकार किया गया है कि उनमें से 10 वर्ष से कम तथा 10 वर्ष से अधिक अनुभव युक्त क्रमशः 50 एवं 50 पुरूष और महिला शिक्षक, ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में कार्यरत क्रमशः 50–50 पुरूष–महिला शिक्षक और सामान्य एवं उच्च योग्यता युक्त भी क्रमशः 50–50 पुरूष और महिला शिक्षक हो। शोध समस्या को दृष्टिगत रखते हुये डॉ0 बी0सी0 मुथैया द्वारा निर्मित तथा मानकीकृत ''व्यावसायिक संतुष्टि मापन'' यन्त्र का प्रयोग किया गया जिसमें कुल 34 कथन है। प्रत्येक कथन के लिए चार उत्तरों में से एक पर प्रयोज्य को अपना सकारात्मक अथवा नकारात्मक अभिमत देने के लिये कहा गया। सकारात्मक तथा नकारात्मक कथनों का फलांकन करने के उपरान्त मध्यमान, मानक–विचलन तथा टी–मान सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग करके सम्बन्धित प्रयोज्य की व्यावसायिक संतुष्टि का निर्धारित किया गया।

परिकल्पनायें एवं उनका अर्थापन –

प्राथमिक स्तर पर कार्यरत शिक्षकों से एकत्रित, संकलित एवं परिगणित तथ्यों को उद्देश्यों के अनुसार सुव्यवस्थित करके निम्नलिखित छः परिकल्पनाओं का प्रतिस्थापन तथा अर्थापन किया गया है :–

1. **परिकल्पना प्रथम –** ''प्राथमिक स्तर पर कार्यरत पुरूष एवं महिला शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।'' सारिणी–1 से दृष्टिगोचर है कि प्राथमिक स्तर पर कार्यरत पुरूष शिक्षकों का मध्यमान 146.36 तथा महिला शिक्षिकाओं का मध्यमान 161.87 है एवं इन्हीं दोनों का मानक विचलन क्रमशः 21.74 तथा 28.53 है। पुरूष तथा महिला शिक्षकों का गणनात्मक टी–मान 198 मुक्तांश पर 4.332 है जो कि टी के सारिणीयन मान से 0.05 एवं 0.01 सार्थकता स्तर पर क्रमशः 1.97 एवं 2.60 से दोनों सार्थकता स्तरों पर अधिक है। अतः यह परिकल्पना निरस्त की जाती है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महिला शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि पुरूष शिक्षकों की अपेक्षा अधिक पायी गयी है।

सारिणी–1

प्राथमिक स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का आकंलन

क्र0 सं0	शिक्षकों का समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी–मान	सार्थकता स्तर
1.	पुरूष	100	146.36	21.74	4.332	सार्थक
2.	महिला	100	161.87	28.53		
3.	10 वर्ष से कम अनुभवी	100	149.12	27.66	3.621	सार्थक
4.	10 वर्ष से अधिक अनुभवी	100	165.16	35.98		

2. परिकल्पना द्वितीय – ''प्राथमिक स्तर पर कार्यरत दस वर्ष से कम अनुभव वाले शिक्षकों में 10 वर्ष से अधिक अनुभव के शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।'' उपरोक्त सारिणी से स्पष्ट है कि दस वर्ष से कम अनुभवशील प्राथमिक शिक्षकों का मध्यमान तथा मानक विचलन क्रमशः 149.12 एवं 27.66 है जबकि दस वर्ष से अधिक अनुभवी शिक्षकों का मध्यमान (165.16) तथा मानक विचलन (34.98) इनमें अधिक प्राप्त हुआ है। दस वर्ष से कम तथा दस वर्ष से अधिक अनुभवी शिक्षकों का परिगणित टी–मान 3.621 प्राप्त हुआ है जो कि टी–सारिणी के सार्थकता स्तर 0.05 तथा 0.01 दोनों स्तरों से अधिक है। इस प्रकार दोनों वर्गों के प्राथमिक शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में सार्थक अन्तर है। इसलिए यह शून्य परिकल्पना निरस्त की जाती है। परिणामस्वरूप दस वर्ष से अधिक अनुभवी प्राथमिक शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि दस वर्ष से कम अनुभवी शिक्षकों की अपेक्षा अधिक पायी गयी है।

3. परिकल्पना तृतीय – ''प्राथमिक स्तर पर कार्यरत दस वर्ष से कम अनुभवी पुरूष और महिला शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।'' सारिणी–2 अनुसार दस वर्ष से कम अनुभवशील पुरूष प्राथमिक शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का मध्यमान 56.42 और मानक विचलन 11.88 है जबकि इसी वर्ग की महिला प्राथमिक शिक्षिकाओं की व्यावसायिक संतुष्टि का मध्यमान 59.96 एवं 14.17 है। इन्हीं दोनों वर्गो के प्राथमिक शिक्षकों की संतुष्टि का टी–मान 1.356 है जोकि टी–सारिणी के दोनों 0.05 और 0.01 सार्थकता स्तरो से कम है अर्थात् दोनों वर्गो के शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में कोई सार्थक अंतर नहीं है। अतः तृतीय शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है शोध के अन्तर्गत यह जानकारी प्राप्त हुयी कि दस वर्ष से कम अनुभवी दोनों पुरूष और महिला शिक्षक अपने उच्चतम कैरियर के लिए प्रयासरत रहने के कारण अपने वर्तमान व्यवसाय से समान रूप से चिंतित रहने के कारण समान रूप से संतुष्टि का कम अनुभव करते हैं।

सारिणी–2

प्राथमिक स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का आकलन

क्र0 सं0	शिक्षकों का समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी–मान	सार्थकता स्तर
1.	दस वर्ष से कम अनुभवी पुरूष	50	56.42	11.88	1.356	सार्थक नहीं
2.	दस वर्ष से कम अनुभवी महिला	50	59.96	14.17		
3.	दस वर्ष से अधिक अनुभवी पुरूष	50	58.55	13.91	1.761	सार्थक नहीं
4.	दस वर्ष से अधिक अनुभवी महिला	50	63.87	16.24		

4. परिकल्पना चतुर्थ – ''प्राथमिक स्तर पर कार्यरत दस वर्ष से अधिक अनुभवी पुरूष और महिला शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।'' सारिणी–2 से स्पष्ट है कि दस वर्ष से अधिक अनुभवी पुरूष शिक्षकों का व्यावसायकि संतुष्टि मध्यमान 58.55 है जबकि इसी वर्ग की महिला शिक्षिकाओं का मध्यमान 63.87 है। इसी वर्ग के पुरूष और महिला शिक्षकों का मानक विचलन क्रमशः 13.91 एवं 16.24 है। दस वर्ष से अधिक अनुभवशील पुरूष और महिला प्राथमिक शिक्षकों का व्यावसायिक संतुष्टि का टी–मान 1.761 है जोकि टी के सारिणीयन दोनों सार्थकता स्तरों (0.05 एवं 0.01) पर उपलब्ध मानों से कम है। यह दर्शाता है कि प्राथमिक

स्तर पर कार्यरत दस वर्ष से अधिक अनुभवी पुरूष और महिला शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। अतः यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। सर्वेक्षण के अन्तर्गत यह स्पष्ट हुआ कि दस वर्ष से अधिक अनुभवी दोनों ही वर्ग के अधिकांश शिक्षक अपने वर्तमान व्यवसाय से समान रूप से संतुष्ट हैं क्योंकि उन्होंने उच्चतर कैरियर के लिए किये गये प्रयासों में निरन्तर असफलता के कारण अपने वर्तमान व्यवसाय के साथ ही सामंजस्य स्थापित कर लिया है।

5. परिकल्पना पंचम – ''प्राथमिक स्तर पर नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत शिक्षकों की व्यवसायिक संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।''सारिणी–3 से दृष्टव्य है कि प्राथमिक स्तर पर नगरीय क्षेत्रों में कार्यरत शिक्षकों के व्यावसायिक संतुष्टि का मध्यमान (145.86) तथा मानक विचलन (21.57) ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत प्राथमिक शिक्षकों के मध्यमान (137.22) एवं मानक विचलन (16.98) से अपेक्षाकृत अधिक है। इन्हीं दोनों वर्गो के शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का टी–मान 3.153 हैं, जोकि सार्थकता के दोनों स्तरों पर अधिक होने के कारण दोनों की व्यावसायिक संतुष्टि में सार्थक अन्तर पाया गया है, जिस कारण यह परिकल्पना निरस्त की जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिला शिक्षकों के लिए आवास से विद्यालय की दूरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त आवासीय सुविधायें उपलब्ध न होना, पारिवारिक समस्यायें आदि इसका मुख्य कारण पाया गया है।

सारिणी–3

प्राथमिक स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का आकंलन

क्र0 सं0	शिक्षकों का समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी–मान	सार्थकता स्तर
1.	नगरीय	100	145.86	21.57	3.153	सार्थक नहीं
2.	ग्रामीण	100	137.22	16.98		
3.	सामान्य योग्यता धारक	100	140.76	10.21	4.697	सार्थक नहीं
4.	उच्च योग्यता धारक	100	148.37	12.64		

6. परिकल्पना षष्ट्म – ''प्राथमिक स्तर पर कार्यरत सामान्य योग्यता धारक तथा उच्च योग्यता धारक शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।'' प्राथमिक स्तर पर शिक्षकों की न्यूनतम योग्यता 12वीं पास (50ः अकों के साथ) और दो वर्षीय प्रारम्भिक शिक्षक में डिप्लोमा (डी0एल0एड0 अथवा बी0टी0सी0) के साथ स्नातक डिग्री और सी.टी.ई.टी. अथवा टी0ई0टी0 पास को सामान्य योग्यता धारक शिक्षक, जबकि स्नातकोत्तर, बी0एड0,एम0एड0, पी0एव0डी0 तथा अन्य उच्च डिग्री प्राप्त शिक्षक को उच्च योग्यता धारक शिक्षक माना गया है। प्राथमिक स्तर पर कार्यरत सामान्य योग्यता धारक शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का मध्यमान 140.76 तथा मानक विचलन 10.21 है जबकि उच्च योग्यता धारक शिक्षकों का मध्यमान 148.76 एवं मानक विचलन 12.64 प्राप्त हुआ है। दोनों वर्गो की व्यावसायिक संतुष्टि का परिगणित टी–मान 4.697 है, जो कि टी–सारिणी के दोनों (0.05 एवं 0.01) स्तरों पर दिये गये मानों से सर्वाधिक है, जिस कारण दोनों वर्गो की व्यावसायिक संतुष्टि में सार्थक अन्तर अवलोकित है। अतः यह शून्य परिकल्पना निरस्त की जाती है। इसका मुख्य कारण है कि सामान्य योग्यता धारक शिक्षक अपने लिए इस व्यवसाय को प्राप्त करके पूर्ण सन्तुष्ट है, जबकि उच्च योग्यता धारक शिक्षक इस व्यवसाय को अपने लिये निम्न स्तर का मानकर निराशा के कारण पर्याप्त

असंतुष्ट पाये गये हैं।

उपरोक्त अध्ययन से निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि प्राथमिक स्तर पर कार्यरत महिला शिक्षकों की अपेक्षा पुरूष शिक्षकों में, दस वर्ष से अधिक अनुभव युक्त शिक्षकों की अपेक्षा दस वर्ष से कम अनुभव युक्त शिक्षकों में, ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत शिक्षकों की अपेक्षा नगरीय शिक्षकों में तथा उच्च योग्यता धारक शिक्षकों की अपेक्षा सामान्य योग्यता धारक शिक्षकों में अपने व्यवसाय से संतुष्टि अधिक पायी गयी है जबकि दस वर्ष से कम तथा दस वर्ष से अधिक अनुभवी महिला और पुरूष शिक्षकों में व्यावसायिक संतुष्टि समान रूप से पायी गयी है।

व्यावसायिक संतुष्टि व्यक्ति की अपनी मनोवैज्ञानिक, पर्यावरण तथा भैतिक परिस्थितियों के प्रति सकारात्मक अनुभव है। समाज में भौतिकवादी वृत्ति पनपते रहने का दुष्परिणाम यह है कि धनोपार्जन को श्रेष्ठता प्राप्त होती जा रही है। अतः इस भौतिकवादी समाज में सम्मानजनक जीवनयापन हेतु शिक्षकों के दृष्टिकोण में बदलाव अप्रत्याशित नहीं है। इस स्थिति के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी स्वयं समाज ही है। प्राचीन काल में शिक्षकों के प्रति आदर एवं सम्मान का वातावरण था, लेकिन वर्तमान में शिक्षकों के प्रति अनास्था, अनादर एवं अविश्वास की भावना प्रजवल्लित होती जा रही है। इसी कारण शिक्षकों में अपने व्यवसाय के प्रति असंतुष्टि की भावना गहरी होती जा रही है। अतः एक असंतुष्ट शिक्षक से छात्रों में मूल्यों, रूचियों, अभिवृत्तियों, आदतों एवं वैयक्तिक समंजनशीलता के सृजन एवं विकास की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

प्राथमिक शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि बढ़ाने के लिए सुझाव –

शिक्षक शिक्षा प्रक्रिया का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवयव है। विशिष्ट शैक्षिक पृष्ठभूमि एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त होते हुए भी व्यवसाय से असंतुष्ट शिक्षक शिक्षा के परम उद्देश्य की पूर्ति में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। अतः प्राथमिक स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि बढ़ाने के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तावित है :–

1. **वेतन वृद्धि** – शिक्षकों के मनोबल और संतुष्टि बढ़ाने के लिए वेतनमान में वृद्धि की जानी चाहिए तथा नियम समय पर भुगतान की व्यवस्था होनी चाहिए।
2. **सुदृढ़ कार्य वातावरण** – विद्यालयों में पर्याप्त एवं अच्छी तरह सुसज्जित कक्षायें, पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं का पर्याप्त निर्माण किया जाना चाहिए।
3. **लचीलापन** – शिक्षण के घंटे कम किये जाने चाहिए तथा कक्षा का आकार छोटा होना चाहिये, जिससे शिक्षक प्रत्येक छात्र पर अधिक ध्यान दे सके।
4. **प्रशिक्षण और संस्थान** – शिक्षकों को अतिरिक्त प्रशिक्षण और डिजिटल उपकरण जैसे इंटरनेट और मल्टीमीडिया तक पहुँच प्रदान की जानी चाहिए।
5. **सहकर्मी सहयोग** – व्यावसायिक शिक्षण समुदाय का निर्माण करके शिक्षकों को आपस में विचारों और अनुभवों को साझा करने की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए।
6. **नेट वर्किंग** – विशेषज्ञ प्रशिक्षकों और अनुभवी साथियों के साथ सार्थक वार्तालाप को प्रोत्साहित करना चाहिये।
7. **प्रशासनिक सहयोग** – विद्यालय प्रशासकों को एक सहायक और सकारात्मक कार्य स्थल बनाना चाहिए तथा शिक्षकों को उनके व्यक्तिगत लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता की जानी चाहिए।

8. **मानसिक स्वास्थ्य** – शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य तथा भावनात्मक संतुलन पर ध्यान देना चाहिये, जिससे कि वे क्रोध, भय एवं ईर्ष्या जैसी भावनाओं को नियन्त्रित कर सकें।
9. **सार्थक कार्य** – शिक्षकों को यह विश्वास कराना महत्वपूर्ण है कि उनका कार्य सार्थक है और वें छात्रों के जीवन में परिवर्तन ला रहे हैं।
10. **सम्मान और प्रतिष्ठा** – शिक्षकों को सामाजिक प्रतिष्ठा और सम्मान दिया जाना चाहिए।
11. **बौद्धिक विकास के अवसर** – शिक्षकों को अपनी बौद्धिक क्षमता को व्यक्त करने और उसे विकसित करने के लिए पर्याप्त अवसर प्राप्त होने चाहिए। उन्हें सार्थक निर्णय लेने की स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए।
12. **मनोवृत्ति का विकास** – सम्मानजनक जीवन यापन करने के लिए किया गया कोई भी कार्य सामाजिक या व्यवसाय दृष्टि से निम्न अथवा उच्च स्तर का नहीं होता। शिक्षक को भी चाहिए कि वह अपने मस्तिष्क में इसी मनोवृत्ति को विकसित करके मानसिक संतुष्टि प्राप्त करने का प्रयत्न करे और अपने कार्य पर पूर्ण निष्ठापूर्वक नियन्त्रण प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

प्राथमिक शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि बढ़ाने के लिए उपरोक्त प्रस्तावित सुझावों के परिपेक्ष्य में निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इन शिक्षकों की कार्यदशाओं एवं सुविधाओं में सुधार हेतु सरकार तथा समाज द्वारा प्रत्येक सम्भव प्रयास करने की आवश्यकता है तथा साथ ही साथ शिक्षकों द्वारा भी सामाजिक चकाचौंध एवं भौतिकता से सुरक्षित दूरी बनाये रखना आवश्यक है।

References :

1. Paule E. Lester, (1988), "Teacher's Job satisfaction: An Annotated Bibliography and Guide to Research," Garland Publishing.
2. Rawat, Savita, (1993), "A Study of The Expectation and Relationship of Job, Job Satisfaction and Value pattern of Secondary School Teachers in Relation to Sex, organization locality and level of Teacher," Ph.D. Thesis (Education), Rohilkhand University.
3. Panda, B.N.; Pradhan, N. and Senapathy, H.K. (1996), "Job Satisfaction of secondary school Teachers in Relation to Their Age, Sex and Management of School," India Journal of Applied Psychology, Vol.33, PP.94-100.
4. Seree, P. and Gupta, Asha, (1999)," The Effect of well being and school organizational Climate on Job Satisfaction ofTeachers in Private General Education Schools (PGES) of Thailand," Recent Researches in Education and Psychology, Vol.4, P.8-17.
5. Elizabeth, Holms, (2005), " Teacher well Being : Looking After yourself and your career in the Class Rooms," Routledge/Taylor and Francis.
6. Sung-Hyun Cha, (2008)," Explaining Teacher's Job satisfaction, Intent to leave and Actual Turn Over: A Structural Equation Modelling Approach," Florida State University.
7. Ravi, T.S. (2014)," Job Satisfaction of Teachers: Dimension, Attitude and Performance," Global

Vision Publishing House.
8. Naga Nath, Appasaheb yevile, (2018),"Primary Teacher's Job Satisfaction," Lulu Publishing.
9. Tammy, Gregersen and Sarah, Mercer, (2020), "Teachers well Being" Oxford University.
10. Mark, Solomons and Fran, Abrams, (2023),"What make Teacher unhappy and what can you do about it? Building a culture of Staff well Being," Routledge.

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
HOD Hindi, Tantia University
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834

Gina Shodh SANGAM

A Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना शोध संस्थान भिवानी के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज भिवानी से छपवाकर कार्यालय 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2321:8037